श्यामू की माँ

अर्थात्

माता की उदार शिक्षा का सरल,
सादा और सुन्दर संस्कृति-मय एक
करुण एवं मधुर कथात्मक चित्र

लेखक

पाण्डुरंग सदाशिव साने, एम० ए०

उर्फ

साने गुरूजी

अनुवादक

पं० गोपीवल्लभ उपाध्याय

संपादक 'वीणा' इंदूर

किताब महल, इलाहाबाद

१९५६

प्रस्तावना

पवित्र वस्तु के लिए प्रस्तावना की आवश्यकता ही क्या ? सुन्दर और सुगन्धित वस्तु का परिचय ही क्यो कराया जाय ? " श्यामू की माँ " नाम की यह पुस्तक सुन्दर, सुगन्धि-मय और सरस है या नही, सो तो मैं नहीं जानता; किन्तु यह पवित्र है, यह बात तो मैं विनय-पूर्वक अवश्य कह सकता हूं। मैंने अपने हृदय का सारा ही प्रेमभाव इसमें उँडेल दिया है। ये कहानियां लिखते समय मेरी आँखे सैकडों बार डबडवा आई थीं; और हृदय अनेक बार द्रवित हो कर उमड आया था। अपने हृदय मे माता के प्रति रहने वाली प्रेम, भक्ति और कृतज्ञता की अपार भावनाएँ ; यदि इस पुस्तक को पढ़ कर पाठकों के मन में उत्पन्न हो सके, तो यह पुस्तक कृतार्थ समझी जायगी। किन्तु इस पुस्तक को पढ़ कर यदि पाठकों के नत्र और उनके हृदय सूखे--कोरे ही रह जायँ, तो इस पुस्तक को त्याज्य, व्यर्थ और नीरस समझना चाहिए।

जेल मे रहते हुए ही मैंने ये स्मृतियां लिखी थी। वहां दिनभर काम करने और रात को जगन्माता, भारतमाता और जन्मदात्री माता के विचार मे निमग्न हो जाने का क्रम चल रहा था। वहा अनेक मित्रो को ये स्मृतिया बहुत पसंद आई। उन्हें ये पढ़ कर सुनाते समय वे भी रोये और मै भी रोया। बाहर भी मेरे जिन-जिन भाई-बहनों ने इन रात्रियो को पढा, उन्हें भी ऐसा ही अनुभव हुआ। बच्चों के मासिक-पत्र " शाला-पत्रक " (मराठी) में इसका कुछ अश प्रकाशित हुआ था। उसके संपादक के पास भी अनेक पत्र आये, जिनमें इन सरल, सहृदय और भावना-पूर्ण कहानियो की प्रशंसा की गई थी। इन्ही सब बातों से प्रेरित हो कर मैंने इसे पुस्तकाकार प्रकाशित करने का साहस किया है। जिन-जिन के हृदय में माता-विषयक कुछ भी भावनाएँ है; अथवा माता-पुत्र के उदार एवं पवित्र प्रेम के विषय मे जिन्हें कुछ अनुभव है ; उन सब अविकृत-रुचिवाले छोटे-बडे भाई-बहनों को यह " श्यामू की माँ " पुस्तक अवश्य पसंद आएगी,

और वे सब अवश्य इसे अपने हृदय में लगा कर ही रहेंगे, ऐसी मुझे सश्रद्ध आशा है।

इन बयालीस रात्रियों में से छत्तीस तो मैंने नाशिक की जेल में लिखी थीं; और उसके बाद नौ रात्रियाँ बाहर आकर लिखी। इस प्रकार कुल पतालीस रात्रियाँ हो गई थी। किन्तु किन्हीं खास कारणा से मुझे तीन रात्रियाँ उसमें से कम कर देनी पडी हैं। नाशिक-जेल में तारीख ९।२।३३ गुरुवारकी रात को ये रात्रियाँ लिखना आरंभ किया, और १३।२।३३ सोमवार को प्रातःकाल इन्हें समाप्त कर दिया। अर्थात् केवल पांच ही दिन में, दिनभर जेल में बतलाया हुआ सब काम यथा-नियम समाप्त कर, बचे हुए समय में ही रात को और प्रातःकाल में मैंने यह पुस्तक लिख कर तैयार की है। हृदय तो भरा हुआ रहना ही था; उसे फुर्ती से कागज पर स्याही से उंडेल देना मात्र ही शेष था। फिर भी साहित्यिकों से प्रार्थना है की इस पुस्तक के आधार पर ही कोई मेरा चरित्र लिख डालने का साहस न कर बैठे। जो भी ये सच्ची कहानियाँ हैं; किन्तु फिर भी इनमें क्वचित एक-आध व्यक्ति या कोई खास प्रसंग अथवा उद्गार काल्पनिक भी हो सकता है।

माता की महिमा इस पुस्तक का मुख्य सूत्र है। साथ ही संस्कृति-शील और पुरातन-शैली के परिवारकी साधारण, सरल और रम्य सस्कृति का चित्र भी इस में अंकित किया गया है। श्याम कि माता के संस्मरण सुनाते समय श्याम की बातें आना भी अनिवार्य था ही। बहुतों को यही प्रतीत होगा कि ये वास्तव में श्यामकी ही बातें हैं, परतु उन कहानियों में से अन्त में मातृप्रेम की धारा ही बहती दिखाई देगी। जैसे वृक्ष की समस्त शाखा-प्रशाखाओं का विस्तार उस पर लगने वाले दस-बीस फूल या फलों के ही लिए होता है, उसी प्रकार श्याम के सारेही जीवन-क्रम का वर्णन, उसमें से अन्त में प्रकट होने वाले अमृत-तुल्य मातृप्रेम के लिए ही है। माता के किसी एक उद्‌गार या शब्दविशेष को कह सुनाने के लिए ही कहीं-कहीं श्याम को अपने कार्यों और आसपास की परिस्थिति का परिचय कराना आवश्यक जान पड़ा है; और इसी पार्श्वभूमि पर वह माता के एकाध उद्‌गार को अंकित कर सका है। जिस प्रकार अनन्त नीले आकाश की

पार्श्वभूमि पर चंद्रमा शोभायमान होता है; उसी प्रकार श्याम की कथा की पार्श्वभूमि पर यह मातृ-प्रेम रूपी चंद्रमा चमक रहा है। इसके द्वारा श्याम अपनी महत्ता या ठसक नही बतलाना चाहता; बरन् उसे केवल अपनी माता की प्रेममयी-शिक्षा (सीख) प्रकट कर दिखाना ही अभीष्ट है। माता के प्रति पूर्ण-प्रेम प्रकट करने के लिए ही उसने आप को प्रकट किया है। उसका इस प्रकार प्रकट होना ही मानो उसकी माता का प्रकट दर्शन होना है।

इस पुस्तक की हस्त-लिखित प्रति को साठ-सत्तर व्यक्तियो ने पढा और उन्हे ये सब कथाएँ बहुत अच्छी लगी; यहां तक कि बिना पूछे ही उन लोगो ने इसके विषय मे मुझे खुले दिल से यह सम्मति दे डाली कि; 'माता-विषयक हमारी भक्ति और प्रीति इस हस्त-लिखित पुस्तक को पढ़ कर सौगुनी बढ़ गई।" इस प्रकार इस पुस्तक का उद्देश तो पूरा हो ही चुका है। ऐसी दशा में यदि समाज मे इसका विशेष प्रचार न भी हो; तो भी अभीष्ट कार्य पूरा हो जानेसे मुझे सतोष है। ये कहानियाँ लिखते समय मुझे जो अपार आनद लूटने को मिल रहा था, वही क्या कम लाभ था ? किन्तु फिर भी मैं यह आसक्ति-मय आशा रखे हुए हूं कि "श्यामू की माँ" घर-घर जायगी; और बालको की मनोमय-भूमि को सुन्दर बनाने वाली पाठशालाओ मे—कमसे कम मध्यम दर्जे की पाठशालाओं में तो वह अवश्य ही जायगी। वह कही जाय अथवा न जाय; किन्तु आज तो मेरे अनेक प्रेमी-मित्रों की सहायता के द्वारा "श्यामू की माँ" मेरे घर से सब से मिलने के लिए बाहर निकल ही रही है। जैसे उसने अपने पुत्र को पाल-पोस कर, उत्तम सस्कृति सिखा कर बडा किया, उसी प्रकार वह अन्य बाल-बच्चो को पढ़ाने के लिए बाहर निकली है। खुले हुए द्वार में हो कर तो वह भीतर प्रवेश करेगी ही; किन्तु बन्द किवाडों को भी वह खटखटा कर देखेगी। पर यदि सभी द्वार उसे बन्द मिले तो ? उस दशा में वह फिर मेरे घर लौट आएगी ! मेरे हृदय में तो वह है ही।

दासनवमी। शके १८५७
लीलासदन, सदाशिव पेठ,
पूना नं. २

पाण्डुरंग सदाशिव साने

प्रथम संस्करणसे

प्रकाशक का वक्तव्य

श्री. पांडुरंग सदाशिव साने ऊर्फ साने गुरुजी ने "श्यामची आई" नाम की पुस्तक लिख कर उसकी पहली आवृत्ति प्रकाशित की; और थोड़े ही दिनों मे सर्वत्र एक-स्वर से उसकी प्रशंसा की जाने लगी। साथ ही वह लोगों को बहुत पसंद भी हुई। इस पुस्तक में साने गुरुजी ने अपनी बाल्यावस्था (कुमारावस्था) की सात्त्विक-भावनाओं के क्रमागत विकास का अत्यत मार्मिक ढंग से और हृदय को हिलादेने वाली सहृदयता-पूर्ण वाणी में चित्रण किया है। इस (मूल मराठी) पुस्तक के लिए बम्बई विश्व-विद्यालय* एवं नागपूर विद्यापीठ § से मान्यता (स्वीकृति) मिल चुकी है। साथ ही मध्य-प्रदेश मे तो पाठ्य-पुस्तक के रूप में भी इस के लिए सिफारिश की गई है।

श्री. सानेजी ने अब इस पुस्तक के सर्वाधिकार 'अनाथ विद्यार्थी गृह' पूना (संस्था) को बेच दिये है। इस लिए अब इसकी आगे की आवृत्तिया एवं अन्य भाषाओं में इसका अनुवाद कर के प्रकाशित करने का अधिकार भी अब अ. वि. गृह (पूना) को ही प्राप्त है।

विद्यार्थियों के लिए संस्कृति-विकास की दृष्टि से यह पुस्तक बड़ी उपयोगी सिद्ध होगी, और इसी लिए भविष्य मे इस प्रकार की पुस्तको के प्रकाशन का कार्य विशेष परिमाण में करनेका इस संस्था नें संकल्प कर लिया है। इस लिए लेखकों से निवेदन है कि वे विद्यार्थियों के लिए उपयोगी उक्त प्रकार की पाठ्य-पुस्तकें लिख कर संस्था-द्वारा ही प्रकाशित कराएँ।

* बम्बई-स्वीकृति—नं. S-86 (e)-643-c ता. २७-५-१९३७ लडकों को इनाम देने और लाइब्रेरियों के लिए।

§ नागपूर-स्वीकृति—नं. १८०५ ता.२७।८।३६ सामान्य पठन के लिए टेक्स्ट। नं. १८०८ ता. २७।८।३६ स्कूलों की लाइब्रेरियों के लिए।

इस पुस्तक को हिन्दी भाषा–राष्ट्रभाषा में प्रकाशित करने का उद्देश्य भी यही है कि हिन्दी भाषा–भाषी समाज इसके द्वारा मूल महाराष्ट्र अर्थात् कोकण-प्रदेश की पारिवारिक एवं पुराण-प्रिय संस्कृति का परिचय प्राप्त कर उस (समाज) से भली-भाँति परिचित हो सके। क्योंकि इस समय देश में राष्ट्रीय-भावना को पुष्ट करने का एक-मात्र साधन यही हो सकता है कि प्रत्येक भारतीय यथा-संभव निकटवर्ती एवं दूरस्थ प्रान्तों की संस्कृति का अध्ययन कर उनके साथ तादात्म्य करने के लिए यत्नशील हो।

इस प्रकार भारतीय-संस्कृति के विभिन्न स्वरूपों का अध्ययन; जितना प्रत्यक्ष उस प्रदेश में जा कर रहने से शीघ्रता-पूर्वक और पूर्णरूप में हो सकता है, उतना अन्य साधनों से नहीं। फिर भी यह कार्य सर्व-साधारण के लिए सुलभ न होने से, उन्हें अंशत: उस (संस्कृति) का परिचय कराने अथवा उसकी झलक दिखा कर एक कल्पित-चित्र अपने सामने खड़ा करा सकने के लिए यह पुस्तक बहुत उपयोगी सिद्ध होगी। और हमारा विश्वास है कि मराठी की तरह यह पुस्तक भी राष्ट्रभाषा में प्रकाशित होने से समग्र भारत में लोकप्रिय हुए बिना नहीं रहेगी।

अ. वि. गृह, पूणें.
ता. १०।११।३९

वि. गं. केतकर

अनुवादक का निवेदन

श्री. साने गुरुजी जैसे मराठी भाषा के सर्वमान्य ग्रंथकार की सर्व-प्रिय एवं सर्वश्रेष्ठ कृति-रूप इस पुस्तक के साथ; मुझ जैसे अल्पज्ञ एवं अनधिकारी की ओर से कुछ लिखा जाना धृष्टता मात्र ही हो सकता है। अतएव मैं सक्षेप में केवल इतना ही निवेदन करना चाहता हूं कि, यदि यथार्थ में हिन्दी भाषा-भाषी समाज ने इस पुस्तक को समुचित अपनाया, और इस "श्यामू की माँ" को अपने घर मे प्रविष्ट होने दे कर अपने बाल-बच्चों को इसकी शिक्षा सुनने और समझने का अवसर दिया, तो वह आदर्श पारिवारिक-भावना, सच्ची भारतीय संस्कृति एवं भावी आदर्श नागरिक-जीवन निर्माण कर सकने मे अवश्य सफल होगा और इस प्रकार नई पीढी को बनाने का पवित्र कार्य सम्पादन कर सकेगा।

पुस्तक क्या है, माता की ममता और उसके सात्विक एवं आत्मीय-प्रेम का करुण-रस पूर्ण जीता-जागता चित्र है। और इसे लिख कर श्री. साने गुरुजी ने देश तथा समाज पर अनंत उपकार किया है। सहृदय-व्यक्तियों को मातृश्राद्ध करने का–माता की स्मृति मे अश्रुजल से तर्पण करने; अथवा अविरल अश्रु-धारा से उसके चरणोका अभिषेक कर के मन का समस्त विकार धो डालने, और इस मानवीय अंतःकरण को विमल बना कर मातृमंदिर का स्वरूप प्रदान करने के लिए, उन्होने एक महान् पवित्र और अद्भुत साधन सुलभ कर दिया है। उनकी इस अमर-रचना के लिए समाज को उनका कृतज्ञ होना चाहिए।

बाल्यावस्था से अब तक निरन्तर महाराष्ट्र-समाज के निकट संपर्क में रहने से; इन पक्तियों के लेखक पर भी उस समाज की विशेष संस्कृति का पूरा–पूरा प्रभाव पड़ा है। और इसी लिए यदि गर्वोक्ति न हो तो वह यह कहने का दुस्साहस कर सकता है कि; उसने अत्यंत स्वाभाविक-रूप मे इस पुस्तक-द्वारा उस समाज के अंतरंग-स्वरूप को हृदयंगम करने मे सफलता पाई है। उसका विश्वास है कि कोई भी सहृदय भारतीय इस पुस्तक को पढ़ कर; मूल लेखक के कथनानुसार दस-बीस

बार माता की स्मृति में अश्रु बहाये बिना, द्रवित हुए बिना नहीं रह सकता। क्योंकि अनुवाद करते समय उसे प्रत्येक घटना के वर्णन पर, किम्बहुना प्रतिदिन दो-चार बार अवश्य अश्रु-विमोचन करना पड़ा है। श्याम की ही तरह उसे भी अपनी ममता-मयी माता के अभाव में जीवन शून्य प्रतीत होता रहा है; और इस पुस्तक को हिन्दी-समाज के सम्मुख उपस्थित करने का सौभाग्य प्रदान करने के लिए वह अनाथ विद्यार्थी गृह' के संचालको को हार्दिक धन्यवाद देता है, कि जिनकी कृपा से उसे इस कृतिद्वारा सच्चा मातृश्राद्ध कर सकने का सुयोग मिल सका।

अनुवाद मे मूल-पुस्तक की सरसता कोई कुशल लेखक ही ला सकता है। उसमें भी फिर श्री. साने गुरुजी जैसें सहृदय व्यक्ति की आतरिक भावनाओं को यथातथ्य हिन्दी-भाषा मे अंकित कर सकना तो और भी कठिन—महान् दुष्कर कार्य है। फिर भी श्री प. शंकररावजी दाते ने, जोकि इस अकिंचन के प्रति एक अत्यन्त आत्मीय-भाव रखते है—यह सेवा मुझ ही से लेना उचित समझ कर इसका शीघ्र अनुवाद कर देने की अनुमति प्रदान की। तदनुसार मैं इस कार्य मे गत् अप्रैल मास मे संलग्न हो गया था; किन्तु कई आकस्मिक कारणोंसे बीच मे ही आधा कार्य छोड कर मुझे रुक जाना पड़ा; और पूरे छह मास पश्चात् आज यह वस्तु आप के सन्मुख रख सकने का अवसर आ सका। इस प्रमाद के लिए मैं अपने को अक्षम्य अपराधी समझता हू। क्योंकि ऐसी उत्तम वस्तु केवल मेरी ही शिथिलता के कारण इतने विलंब से हिंदी भाषा -भाषी भारतीय-समाज के सम्मुख आ सकी है।

मैं अच्छी तरह जानता हूं कि "श्यामची आई" का यह हिंदी अनुवाद अवश्य त्रुटिपूर्ण होगा, फिर भी विवेकशील पाठक इसकी मूल-भावनाको, मातृभक्ति के उज्ज्वल स्वरूप को ग्रहण कर, असार भाग को त्याग देने की दृष्टि से इसे पढने की कृपा करेंगे।

अन्त में अ. वि. गृह के संचालकों को उनकी इस राष्ट्रभाषा-प्रेम के लिए हार्दिक धन्यवाद देना मैं अपना परम कर्तव्य समझता हूं।

विजयादशमी १९९५
'कल्पवृक्ष' कार्यालय उज्जैन

गोपीवल्लभ उपाध्याय

अनुक्रमणिका

—※※—

श्यामू की माँ

१ आरंभ

मनुष्य का बडप्पन प्राय: उसके माता-पिता पर ही अवलंबित होता है; और उसके भावी-जीवन की बुराई-भलाई के आधार भी प्राय: माता पिता ही होते हैं। इसी प्रकार उसके अच्छे बुरेपन की नीव भी बचपन में ही रची जाती है। पलने में झूलते या माता की गोद में खेलते हुए ही उसके भावी जीवन-विकास के बीज बोये जाते है। मै बडप्पन का अर्थ इस रूप मे नही करता कि, अपना नाम कुछ समय तक ससार के इनेगिने व्यक्तियों की जीभ पर खेलता रहे। क्योंकि हिमालय की उपत्यकाओं या खाइयो में ऐसे अनेक प्रचण्ड एव गगनचुंबी वृक्ष हो सकते है, जिनका नाम तक ससार मे कोई नहीं जानता। अथवा सघन वन के किसी कोने मे भी कोई ऐसा सुगन्धित पुष्प खिला हो, जिसपर किसी की दृष्टि तक न पड सकी हो! इसी प्रकार समुद्र के उदर मे भी ऐसे सुंदर, गोल और आबदार मोती हो सकते हैं, जिनकी भनक भी ससार के कान पर न पडी हो: एव पृथ्वी के गर्भ में भी तारे की तरह चमकनेवाले ऐसे तेजस्वी हीरे हो सकते हैं, जिनका मानवजाति को अबतक दर्शन भी न हुआ हो। अथवा ऊपर आकाश मे भी ऐसे अनन्त तारे हो सकते हैं, जो बड़े से बडे दूरबीन द्वारा भी अबतक नही देखे जा सके हों। अर्थात् मैं बडप्पन का अर्थ ससार मे प्रसिद्ध हो जाने के रूप मे नहीं करता। मेरी समझ से तो बड़ा वही है, जो यह अनुभव करता है कि 'मै निर्दोष हो रहा हू—धीरे-धीरे उन्नति कर रहा हूं'। इस प्रकार बडा बनने की प्रवृत्ति प्रत्येक व्यक्ति के हृदय मे उसके माता-पिता ही उत्पन्न करते हैं। माता-पिता की ओर से मिली हुई यह एक ईश्वरीय देन ही होती है। माता-पिता ही जाने या अनजाने मे बच्चे को छोटा या बड़ा बनाते रहते हैं।

मनुष्य का जन्म होने के पहले ही उसकी शिक्षा आरंभ हो जाती है। किम्बहुना माता के उदर मे जीव के गर्भ-रूप से आनेके पहले ही उसकी शिक्षा की तैयारी शुरू हो जाती है। गर्भधारणा के पहले माता-पिता ने अपने जीवन में जो अथवा जैसे विचार किये होंगे; अथवा जिन भावनाओं को स्थान दिया होगा या जो कर्म किये होंगे; उन्हीं सब पर से नवजात बालक की शिक्षा की पुस्तकें तैयार होती जायँगी। किन्तु इसका यह आशय कदापि नहीं है कि बच्चे को केवल उसके माता-पिता ही सबकुछ सिखलाते हैं। क्योंकि आसपास की सारी दुनिया और सजीव या निर्जीव सृष्टि भी उसे बहुत कुछ शिक्षा देती रहती है। किन्तु उस आसपास की सृष्टि से क्या सीखा जाय और कैसे सीखा जाय, यह माता-पिता ही बतलाते हैं। अर्थात् बच्चे की शिक्षा में अधिक से अधिक भाग उसके माता-पिता का ही होता है; और उसमें भी माता का भाग अधिक होता है। क्योंकि मूलतः माता के उदर में ही जीव रहता और मातासे एकरूप होकर ही वह जन्म लेता है। मानों, वह उसीका होकर ससार मे आता है। जन्म लेने के बाद भी माता के ही पास बचपन मे उसका अधिक समय व्यतीत होता है। वह माता के पास रहकर ही हँसता-रोता या खाता-पीता और खेलता-कूदता है। वह माता की ही गोद या छाया में सोता-सुलाता है। अर्थात् माता के पास ही उसका अधिकतर उठना-बैठना होता है। इसी लिए उसे सच्ची शिक्षा देनेवाली माता ही होती है।

माता देह-दान के ही साथ साथ मन भी देती है। जन्म देनेवाली भी वही और ज्ञान देनेवाली भी वही होती है। बचपन मे बालक पर जो संस्कार पड़ते हैं, वे दृढ़तम हो जाते हैं। क्योंकि उस अवस्था में बच्चे का मन एकदम खाली (निर्विकार) रहता है। जिस प्रकार किसी भिखारी या चार दिन के भूखे को जो कुछ भी मिल जाय, उसे तत्काल ही उस पर टूट पड़ने की इच्छा होती है, उसी प्रकार बच्चे का मन भी अपने आसपास जो कुछ होता है, उसमें के अच्छे-बुरे की परख किये बिना ही पेटार्थी (भुखमरे) की तरह वह अन्धाधुन्द संग्रह करता चला जाता है। यहां तक कि यदि बिल्कुल छोटे दो-चार महिने के बच्चे को भी बाहर आँगन मे लिटाया जाय, तो आसपास के हरे-पीले वृक्षों का उसके

मन ही नहीं बरन् शरीर पर भी इतना प्रभाव पड़ता है, कि उसके मल (दस्त) का रंग तक हरा हो जाता है; यह जानकार स्त्रियों का कहना है। सारांश, बाल्यावस्था में मन अत्यधिक संस्कार-ग्राही होता है। वह मिट्टी के लौंदे या मोम के गोले की तरह मृदु एवं कोमल होने से उसे जो भी आकार देना चाहें; दिया जा सकता है।

जैसे माता यदि तैल की कोई वस्तु खा ले; तो बच्चे को खांसी होने का भय रहता है और वह यदि गन्ने या आम का रस पी ले, तो बच्चे को सर्दी लग जाती है। उसी प्रकार यदि माता बालक के सामने वस्तुओं की तोड़-फोड करे या किसी से गाली-गलौज अथवा मारपीट या झगड़ा-झझट करे, तो इससे भी बच्चे के मन को खांसी हो सकती है—उसके चित्त पर बुरा प्रभाव पड़ सकता है। किन्तु इस बात को माताएँ भूल जाती हैं। माता की बोलचाल, उसका हँसना या क्रुद्ध होना आदि बच्चे के आसपास होनेवाली उस (माता) की समस्त क्रियाएँ बच्चे के मन, बुद्धि और हृदय के लिए दूध के समान होती हैं। दूध पिलाते समय यदि माता के नेत्र क्रोध या ईर्ष्या के कारण लाल हो रहे हों तो अवश्य बच्चे का मन भी क्रोधी होगा।

इस प्रकार बच्चे की शिक्षा माता-पिता एवं सगे-सम्बन्धियों तथा आसपास की सजीव-निर्जीव सृष्टि पर अवलबित होती हैं। इसलिए बालक के सामने बहुत सावधानी से बरतना चाहिए। उसके आसपास का वातावरण एकदम स्वच्छ (निर्मल) रखना चाहिये। सूर्य-चंद्रमा को पता हो या न हो, किन्तु उनकी किरणों से कमल अवश्य खिलते हैं। ठीक इन सूर्य-चंद्र की किरणों के समान ही मनुष्य का व्यवहार भी है। माता-पिता के सम्पूर्ण कार्यकलाप यदि निर्मल, सतेज और तमोहीन होंगे, तो बच्चों के मन भी कमल की तरह रसपूर्ण, सुगन्धित, रमणीय और पवित्र बन सकेंगे। अन्यथा वे कृमियुक्त, रोगी, निस्तेज, और गंधहीन, रस-रहित एवं अपवित्र हुए बिना नही रह सकते।

बच्चे का जीवन बिगाड़ने जैसा दूसरा पाप नहीं हो सकता। जैसे कि निर्मल झरने के पानी को गँदला कर देना घोर पाप माना जाता है। बच्चों के आसपास रहनेवालों को यह बात याद रखनी चाहिए। वेद मे वसिष्ठ ऋषि

वरुण देवता से कहते है कि "हे वरुण देव! यदि मेरे हाथों से कोई बुरा काम हुआ हो तो उसके लिए मेरे बड़े बूढे माता-पितादि को उत्तरदायी समझे।"

'अस्ति ज्यायान् कनीयस उपारे'

कनिष्ठ (छोटे) के पास ज्येष्ठ (बडा) होता है। इस लिए ज्येष्ठ को अपनी जिम्मेदारी समझ कर बरतना चाहिए। माता-पिता, अड़ौसी-पड़ौसी और गुरु एवं बड़े-बूढ़ों को सदैव ही छोटे बच्चे के विकास का प्रश्न आँखो के सामने रखकर सब व्यवहार करना चाहिए।

श्यामू को उसके सौभाग्य से उदार एवं महान् माता मिली थी। वह प्रतिदिन अपनी माता को हृदय से धन्यवाद देता था। कभी-कभी दोबार अश्रु-बिंदुओं से वह उसका तर्पण भी करता था। आश्रमवासी मित्र श्यामू से उसकी जीवन-कथा पूछने का अनेक बार प्रयत्न करते, किन्तु वह किसी को उत्तर नहीं देता था। आश्रम के अन्य सब साथी अपने-अपने जीवन के अच्छेबुरे अनुभव एक-दूसरे को सुनाया करते थे। इस कारण अपने साथियों की जीवन-कथाएँ सुनते हुए अचानक ही कभी-कभी शामू की आँखे भर आतीं। उस समय सभव है उसे अपने जीवन की भी उसी प्रकार की स्मृतियाँ प्रत्यक्ष दिखाई देने लगती हो! किन्तु फिर भी उसके साथी लोग बारम्बार यही कहते सुने जाते कि "श्याम! तू औरो की तो सब बातें सुन लेता है, परतु अपने विषय में क्यो कुछ नही कहता?"

एक दिन इसी प्रकार आग्रह किया जा रहा था। अत मे श्यामू ने भरे हुए स्वर मे कहा "मुझे अपन पूर्व-जीवन की स्मृतियाँ अत्यत दुःख और शोकमयी जान पडती है। पिछले जीवन की अच्छी बातो के ही साथ-साथ बुरी बातों का भी स्मरण हो आता है। पुण्य के साथ ही पाप भी याद आ जाते हैं। मै अपने एक एक दुर्गुण को गहरा गड्ढा खोदकर गाडता जा रहा हूं। और वे शैतान फिर मेरी गर्दन पर सवार न हो जायँ; इस लिए मैं पूरा पूरा प्रयत्न करता हूं। मेरी हार्दिक इच्छा है कि जीवन निर्दोष और निर्मल हो जाय। यही मेरा ध्येय है और यही मेरा स्वप्न। तो फिर क्यों व्यर्थ के लिए तुम लोग मुझे अपने पिछले जीवन की सारी बातें सुनाने को लाचार करते हो?"

कब होगा जीवन मेरा यह दिव्य तारिका-सा निर्मल।
यही कामना मुझे रात-दिन व्यग्र कर रही है प्रतिपल॥

[किव्हा होईल जीवन माझे निर्मल तान्यापरी। हुर-हुर हीच एक अतरीं]

"किन्तु हमें तो तुम अपने जीवन की अच्छी बातें ही सुनाओ। क्याकि अच्छी बातों के चिंतन से मनुष्य अच्छा बनता है, यह बात तुम्हीने उस दिन कही थी।" छोटे-से गोविंद ने आग्रह किया।

इस पर माधव कहने लगा "किन्तु यदि हमें अच्छी ही बातो का स्मरण हो और वे ही कही जायें; तो इस बात का अभिमान होने लगेगा कि हम निर्दोष हैं।"

यह सुन श्याम् ने गभीर होकर कहा "मनुष्य को अपने पतन या गिरावट की बात कहते हुए जिस प्रकार शरम लगती है, उसी प्रकार उसे यह बतलाने मे भी लज्जा होती है कि मै कैसे उन्नत हुआ और अब भी ऊचा उठ रहा हू। मेरी तो परमात्मा से सदैव यही प्रार्थना रहती है कि आत्मश्लाघा का एक शब्द भी मेरे मुँह से न निकलने पावे।"

इस पर नारायण ने हँसते हुए कहा "किन्तु कभी इस बात का भी तो अहकार हो सकता है कि 'मै निरभिमानी हूं। मै आत्मश्लाघा करना नही चाहता' इस कथन मे ही आत्मश्लाघा की भावना आ जाती है।

श्यामू ने कहा "इस ससार मे जितनी भी सावधानी रखी जाय, थोडी ही है। पग-पग पर माया-मोहके फन्दे लगे हुए हैं। लुढकने के लिए बड़ी बडी खाइयां और करारे मौजूद है। फिर भी जहांतक बन सके साव-धानी रखी जाय। प्रयत्न किया जाय और ठीक तरह उद्योग करते हुए आत्म-वचना का अवसर न आने दिया जाय। अहंकार का रूप अत्यंत सूक्ष्म होता है; इस लिए उससे सदैव सावधान रहना चाहिए।"

यह सुन श्याम के प्रेमी मित्र राम ने कहा "तो क्या हम एक दूसरे के लिए पराये हैं। तू और हम क्या अभीतक एकरूप नहीं हुए? अपने इस आश्रम में किसी के लिए अब दुराव रखने जैसी कोई बात ही नहीं रह गई है। हम सब तो अब एक ही हैं। जो कुछ है उसके मालिक भी हम सब है। ऐशी दशा मे तू अपनी अनुभव-सम्पत्ति को

छिपाकर क्यों रखता है? तुझसे हमें कोई वाद-विवाद भी तो नहीं करना है? हमें अपनी बात सुनाने में काहे की ठसक हो सकती है? इसमें किस बात का गर्व हो सकता है? हम तो यह जानने के लिए उत्सुक हैं कि तेरे जीवन मे यह माधुर्य, सरलता, कोमलता, प्रेम और मृदु-हास्य, सेवावृत्ति एव निरहंकारता और किसी भी काम में लज्जा अनुभव न करने की भावना आदि बातें कहां से आ गई! हम भी बीमारों की सेवा करते हैं और तू भी करता है। किन्तु तू उनके लिए माता की तरह बन जाता है, जब कि हम वैसे क्यो नहीं बन पाते? तू केवल अपनी मधुर-मुसकान से ही दूसरों को अपना कर लेता है, किन्तु हम किसी के पास चार-चार घंटे बैठकर बातें करते रहने पर भी उसका मन अपनी ओर आकर्षित क्यों नहीं कर सकते! हमें बतला कि तूने यह जादू कहां और किससे सीखा? तेरे जीवन में यह सुगन्ध किसने मिला दी, यह कस्तूरी किसने उँडेल दी? श्याम! तुझे विदर्भ (बरार) की एक दंतकथा मालूम है?..."एक बार उस प्रदेश मे एक धनिक व्यापारी का विशाल भवन बन रहा था कि उधर से एक नैपाली कस्तूरी बेचनेवाला जा निकला। उस धनिक ने नैपाली से कस्तूरी का भाव पूछा। किन्तु उसने तिरस्कारपूर्वक जवाब दिया 'तुम दक्खन के दरिद्री क्या कस्तूरी लोगे? पूना जानेपर भले ही कुछ माल बिक जाय!' यह गर्वोक्ति सुन व्यापारी को एकदम क्रोध आ गया और उसने उसी क्षण नैपाली से कहा कि 'तेरे पास जितनी भी कस्तूरी है, वह सब तौल कर यहाँ रख दे; मैं अभी उसे इस मिट्टी-गारे मे मिला देता हूं। और तब तू उत्तर भारत मे जाकर कहना कि दक्षिण के लोग कस्तूरी की दीवारें बनवाते हैं!' और सच मुच ही उस व्यापारी ने वह सब कस्तूरी खरीद कर गारे में मिलवा दी। कहते हैं कि उस मकान की दीवारों से आज भी कस्तूरी की सुगंध निकलती है। इसी लिए श्यामू, तू हमें यह तो बतला कि, जब तेरे जीवन की दीवारें चुनी जा रही थी, तब उसमें यह कस्तूरी किसने उँडेल दी! हमारे जीवन मे तो न बास है न स्वास, न रूप न गन्ध! भला यह तो बतला, कि तेरे जीवन को इस प्रकार सुगन्धित किसने कर दिया! उसे इस रंग में किसने रँग दिया!"

अब तो श्यामू से न रहा गया और उसने गभीरता से किन्तु

गद्गद होकर कहा " मित्रो, यह सब मेरी माता का दिया हुआ उपकार है। मुझ में जो कुछ अच्छाई है, वह सब मेरी माता की है। माता ही मेरी गुरु है और वही कल्पतरु। उसने मुझे क्या नहीं दिया! उसीसे तो मुझे सब कुछ मिला है। प्रेम पूर्ण दृष्टि से देखना और प्रेम पूर्वक बोलना भी मुझे उसीने सिखाया। केवल मनुष्यप्राणी ही नहीं; बरन् पशु-पक्षी एवं फूल-पत्तियों तथा लता-वृक्षादि के साथ प्रेम करना भी उसीने सिखलाया। चोकर का चूरमा बना कर कैसे खाया जाता है और दरिद्रावस्था में भी स्वत्व और सत्व कैसे कायम रखा जा सकता है, यह भी मुझे माता ने ही सिखलाया है। किन्तु माता ने मुझे जो कुछ सिखाया उसका खर्वांश (अल्पांश) भी मैं प्रकट न कर सका। अभी तक मेरी मनोभूमि मे उसकी शिक्षा का बीज ही फूट रहा है। उसमें से पुष्ट और तेजस्वी अंकुर कब निकलता है यह देखना है। मेरी माता ने ही मेरे जीवन मे सुगन्ध का संचार किया है। इसी लिए मैं मन ही मन कहता रहता हू कि——

मम मानस में करके निवास। मां, तू संचारित कर सुवास॥

[मदंतरगी करुनी निवास। सुवास देई मम जीवनास]

वही इस जीवन को सुगन्ध-युक्त बनाकर इस पर रंग चढ़ानेवाली है। मै सचमुच कुछ भी नहीं हूं। सब कुछ उसीका है; उसी महान् माता का। मेरे लिए सब कुछ एकमात्र वह दयामयी माता ही है।"

इस प्रकार माता की महिमा सुनाते हुए श्यामू का गला भर आया, उसके नेत्रों से अविरल अश्रुधारा बह चली। भावावेश के कारण उसके नेत्र, हाथ और हाथो की उंगलियाँ काँपने लगी। कुछ देर तक सब शांत रहे; सर्वत्र ही नक्षत्रमाला जैसी पूर्ण शांति फैली हुई थी। इसके बाद भावना की बाढ़ कुछ कम हुई और तब श्यामू ने कहा "मित्रो, मेरे पास तुम्हें सुनाने लायक कोई बात नहीं है। अतएव मै केवल इतना ही बतलाऊंगा कि मेरी माता कैसी थी! माता का गुणगान करके मैं अपनी जिव्हा को पवित्र करूगा। मुझे माता की जो-जो बातें याद आती जायँगी वे सब सुनाऊंगा। उसीकी स्मृति ताजी करूंगा और प्रतिदिन मैं एक-एक घटना सुनाता जाऊंगा! यह ठीक होगा न?

सब ने एक साथ कहा "हा, बिलकुल ठीक होगा!"

राम ने कहा "हमने तो ईश्वर से एक ही आँख मांगी थी, पर उसने दो देने की कृपा की!"

गोविन्द ने कहा "अरे, अब तो प्रतिदिन सुधारस पान करने को मिलेगा, और नित्य ही हम पावन-गगा मे गोते लगा सकेंगे!"

२ सावित्री-व्रत

आश्रम की प्रार्थना समाप्त हो जाने के बाद सभी साथी लोग मडलाकार बैठे हुए थे। उन सब की दृष्टि श्यामू के मुखचद्र की ओर लगी हुई थी। वह भ्रातृ-सघ एक अपूर्व दृश्य उपस्थित कर रहा था। रेगिस्तान मे पानी की झिरी (हाथों से खुदी हुई कुइया) प्रायः अधिक पवित्र एव परम उपकारक जान पडती है। अँधेरे में प्रकाश की एक किरण भी बडी आशा बंधानेवाली होती है। आजकल के प्रेमरहित जीवन मे जब कि सब अपनी-अपनी निबेडने मे लगे हुए है, इस प्रकार का भ्रातृ सघ महान् आशाप्रद हो सकता है। उस भ्रातृ-सघ के प्रेम का प्रतिरूप कदाचित् ही कहीं देखने को मिल सकेगा। वह आश्रम भी एक प्रकार से उस गाँव के जीवन--मर्यादित-जीवन को--स्वच्छ रखनेवाली सजीव और पवित्र झिरी के ही समान था।

उस समय गॉव मे सर्वत्र शांति का साम्राज्य था। आकाश भी शांत था। केवल कुछ बैलों के गले की घंटी का मधुर शब्द दूर से सुनाई देता था। हवा अलबत्ता मनमाने ढंग से चल रही थी और वह त्रिभुवन-रूपी मंदिर की अविराम प्रदक्षिणा करती हुई अपनी प्रार्थना अखण्ड रूप से गुनगुना रही थी।

श्यामू ने इस प्रकार सुनाना आरभ किया :

मेरी माता का नैहर विशेष धनाढ्य न होते हुए भी सुखी था। वहॉ खाने-पीने की कोई कमी नहीं थी। वह उसी गॉव मे था। मेरे नाना बडे कर्मनिष्ठ एवं धर्मात्मा व्यक्ति थे। मेरी माता अपने सब भाई-

बहनों में बड़ी थी और उसपर मेरे नाना-नानी का विशेष प्रेम था। नैहर में उसे सब लोग 'प्रेमा' कहते थे, और सचमुच ही वह प्रेम-मयी सब के साथ प्रेम का व्यवहार भी करती थी। कोई उसे 'बाई' या 'बहन' भी कहते और वह यथार्थ में उनके लिए बहन जैसी ही थी। वह 'जीजी' या माता के रूप में ही थी। नैहर के नौकर-चाकर या धान-कूटने-वाली स्त्रियां बड़ी अवस्था में भी जब उसे 'बाई' या 'जीजी' के नाम से पुकारतीं, तब उसे ये शब्द कितने मीठे लगते थे, यह बतला सकना असभव है। इन नामों से पुकारने में जो आन्तरिक स्नेह था, उसे हृदय ही अनुभव कर सकता था।

मेरी माता के दो छोटे भाई और एक बहन भी थी। मेरी नानी अत्यत नियमित जीवन बितानेवाली कार्यदक्ष महिला थी। उसके घर के बर्तन आईने की तरह चमकते थे। मेरी माता का विवाह बचपन ही में हो गया था। ससुरालवाले श्रीमान् लोग थे, और वे सब गाँव में सरदार माने जाते थे; अथवा कम से कम वे तो अपने को सरदार ही समझते थे। माता के शरीर पर सोने-मोती के आभूषण शोभा देते थे। गले में हार, कठी, सतलड़ी आदि सब कुछ थे। वह सुख-सम्पन्न घर या हरे-भरे गोकुल में विचरती थी। ससुराल में उसका नाम यशोदा रखा गया था।* ससुराल में रहते हुए ही वह छोटी से बड़ी हुई थी वहाँ उसके लिए किसी भी बात की कमी नहीं थी। खाने-पीने और पहनने-ओढने के लिए सब कुछ अच्छा ही था। सयुक्त-परिवार होने से घर में कामकाज भी पूरा था। किन्तु उत्साह-युक्त परिस्थिति एव सहानुभूति के वातावरण में दिनरात काम करते रहने पर भी मनुष्य को उकताहट नहीं होती बल्कि और अधिक काम करने में उसे धन्यता के साथ-साथ आनन्द ही प्राप्त होता है।

मित्रो! मेरे पिता पूरे १७–१८ वर्ष के भी न हो पाये थे कि दैवयोग से उनपर गृहस्थी का सब भार आ पड़ा। क्योंकि मेरे दादाजी वृद्धावस्था के कारण थक चुके थे; अतएव पिताजी को ही सारा कारो-

---

* कन्या का विवाह हो जाने पर ससुराल में उसका दूसरा नाम रखने की प्रथा महाराष्ट्र में है। —अनु०।

बार देखना पडता था। लेन-देन का काम भी वही करते थे। हम अपने पिता को 'भाईजी' (भाऊ) कहते और दूसरे सब उन्हें 'भैयाजी' कहकर पुकारते थे। आसपास के गाँव के लोग हमें 'खोत' के नाम से संबोधन करते थे।"

माधव ने पूछा "क्यो भैया श्याम, खोत किसे कहते हैं?"

श्यामू ने कहा "खोत का मतलब है गाँव की निश्चित मालगुजारी वसूल करके सरकार के पास भेजनेवाले बिना वेतन के दलाल!"

इस पर राम ने पूछा "तो क्या खुद उनको कुछ भी नहीं मिलता?"

"अवश्य मिलता है। सरकारी लगान का लगभग चौथा हिस्सा खोत (मालगुजार) का होता है। वह गाँव की फसल की देखरेख करता और पैदावार का अन्दाज बाँधता है। इसे 'उपज का ऑक बाँधना' कहते हैं। ऐसे मालगुजार लोग कभी-कभी किसी खेत मे अच्छी पैदावार न होने पर भी उसे अच्छी मान लेते हैं! और यदि किसी किसान ने सरकारी लगान चुकाने में लाचारी दिखाई तो सरकारी मदद लेकर उसके घरद्वार पर जप्ती बैठा देते हैं। क्योंकि निश्चित समय पर यदि किसानों से लगान का रुपया वसूल न भी हो सका हो; तो खोत (मालगुजार) को अपने पास से सरकारी रुपया जमा करना पडता है।"

यह सुन माधव ने कहा "बरार और मध्य-प्रदेश में ये लोग मालगुजार कहलाते हैं, और दक्षिण मे खोत। क्यों यही बात है न?"

यह सुन गोविंद ने उत्कंठा से कहा "अरे बस चुप रहो! रहने दो तुम्हारी विद्वत्ता! हा श्याम भैया, तुम अपनी कहानी शुरू करो।"

श्यामू ने फिर कहना आरंभ किया:

हम लोग बड़वली गाँव के मालगुजार थे। उस गाँव मे हमारा एक बहुत बड़ा बाग था; जहां नहर में खूब पानी बहता था। बांध बनाकर दूर से पानी लाया गया था और वह ऊंचाई पर से जलप्रपात जैसा नीचे गिरता था। बगीचे में केला, सुपारी, अनन्नास आदि के पेड़ लगाये गये थे। अनेक प्रकार के कटहलों के वृक्ष भी थे। इसी प्रकार कलमी, दुफले आदि कटहल की कई विशेषताएँ उसमें थीं। तुम लोग कभी कोंकण-प्रदेश मे आओगे, तब वहाँ तुम्हें ये सब बातें प्रत्यक्ष दिखलाई जायँगी। वह

बगीचा ही हमारा सम्पूर्ण वैभव या भाग्य-चिन्ह समझा जाता था। किन्तु मित्रो! यथार्थ मे वह बाग हमारे लिए वैभव नहीं, वरन् पाप-रूप था। पाप क्षणभर के लिए हँसता और हमेशा के लिए रोता है। वह थोडी देर के लिए सिर उठाता और हमेशा के लिए मिट्टी में मिल जाता है। पाप के लिए थोड़ीसी देर का मान और उतना ही स्थान रहता है। ससार मे केवल सद्गुण ही शुक्र के तारे की तरह शांत, स्थिर और सदैव चमकते रहते हैं।

"मालगुजार जिसे भी चाहे काम के लिए बुला सकता है, और बुलाने पर उसे जाना ही चाहिए; नही तो उसके कोप-भाजन बनना पड़ता है। भले ही गाँव की गरीब एव मेहनती स्त्रियाँ अपने लिए बैंगन, मिर्ची, लौकी, तुरई, कद्दू, शकरकन्द या तरबूज आदि की बेलें क्यारियां बनाकर लगावें; परंतु इन सब पर मालगुजार की बराबर नजर रहेगी। किन्तु यथार्थ में यदि देखा जाय तो दूसरे के परिश्रम पर जीवित रहने से बढ़कर कोई पाप नही हो सकता। दूसरे को सताकर या दिनरात मेहनत लेकर भी तुच्छ समझने और अपने आप गद्दी-तकिये पर लोटते रहने जैसा अक्षम्य अपराध और नहीं हो सकता। मेरी माता के शरीर पर जो आभूषण थे, वे कहाँ से आये होंगे? वह आबदार मोतियों की नथ! गाँव की गरीब स्त्रियों के नेत्रों से बरसनेवाले मोती के समान आँसुओं से ही तो बनी हुई थी! उन गरीब लोगों के सोने जैसे बच्चों के मुख पर की हँसी, उनके शरीर के तेज और बल का अपहरण कर के ही तो मेरी माता के लिये सोने के आभूषण बनाये गये थे! ईश्वर को इस 'सत्य' का मेरी माता को परिचय करा देना अभीष्ट था और वह इस प्रकार उसे जाग्रत या सचेत कर देना चाहता था!

मेरे पिता भी यद्यपि स्वभावतः दुष्ट-प्रकृति के नही थे; किन्तु फिर भी उन्होंने अपने पूर्वजों की प्रथा को कायम रक्खा था। क्योकि उन्हे माल-गुजारों के मनमाने अधिकारों पर अभिमान होता था। किसीने यदि उनकी बात नहीं सुनी तो वे समझने लगते थे कि यह कुर्मी (किसान) मगरूर हो गया है। किसी भी मामूली-समाज के व्यक्ति को आधे नाम से तुच्छता-पूर्वक सबोधन करना तो उनके लिये हमेशा की रीति ही थी। क्योंकि ऐसा करते समय उनका ध्यान इस ओर कभी जाता ही न था कि इनको तुच्छ मानकर हम खुद इतरा रहे हैं; सत्तान्ध हो रहे हैं।

पिताजी के हाथ में नया-नया ही सब कारोबार आया था। अभी उन्हें विशेष अनुभव भी नहीं हुआ था। मालगुजार होने के जोश में कभी-कभी वे ऐसी बातें कह जाते, जो अनेक व्यक्तियों के जी दुखा देती थीं। कुछ पूर्वजों के भी पाप थे ही। मनुष्य मर जाता है, किन्तु पापपुण्य कभी नहीं मरते। इसी प्रकार संसार में कुछ भी व्यर्थ नहीं जाता। जो बोया जायगा वही उगेगा और जो लगाया जायगा वही फले-फूलेगा।

"एक बार की बात है। वह अमावस की रात थी। पिताजी बड-वली गाँव के लिए घर से चलकर सबेरे आठ बजे वहाँ जा पहुँचे थे। चलने से पूर्व घर के लोगों ने उन्हें मना किया कि आज अमावस है और साथ ही शनिवार भी, इस लिए आज गाँव को मत जाओ! किन्तु पिताजी ने कहा 'अरे, कहा की अमावस और कैसा शनिवार! जो कुछ होना है वह होगा ही। प्रत्येक दिन पवित्र और शुभ ही है। प्रत्येक दिन देवता के ही घर में आता है'। इसके बाद वे गाँव को चल दिये। दिनभर वहाँ रहे और दिन डूब जाने पर शाम को घर आने के लिए गाँव से चले।

उन्हें गाँव से चलते समय घरोपा (अपनायत) रखनेवाली एक बुढिया ने कहा 'भैया! यह श्याम का वक्त दैत्यों का होता हो। इस समय घर मत जाओ। आज अमावस की काली रात है। गाँव से निकलते ही अंधेरी हो जायगा और नाले तक पहुँचते-पहुँचते रात हो जायगी। इस लिए अब रात भर यहीं रह जाओ। सबेरे जलदी से उठकर ठंडे वक्त चले जाना।' किन्तु पिताजी ने उसकी बात पर ध्यान न देते हुए यही कहा 'अरी बुढिया, यह तो पैरोंतले का रास्ता है। रात भी हो गई तो क्या हुआ? मैं अभी फुर्ती से जाता हू और दूध दुहने के समय तक घर जा पहुँचूगा।'

पिताजी गाँव से चलदिये। साथ में नौकर भी था। एक ओर उस बुढ़िया के शब्द 'मत जाओ' कहते थे और दूसरी ओर फलनेवाले पाप उकसा रहे थे कि 'चल! यहां मत ठहर!' अत को गाँव के लोगों ने जब उन्हें बिदा किया तो एक व्यक्ति भीषण स्वर में हँसा। कुछ लोगों ने एक दूसरे की ओर देखा। किन्तु पिताजी नौकर को साथ लिये हुए चल ही दिये। अँधेरा बढ़ने लगा और आकाश में परमेश्वर के, सतों और सतियों के आँसू चमकने लगे।

बड़वली गॉव से लगभग डेढ कोस दूर एक नाला था। बर्सात में उसे पार करना कठिन होता था। वह एक गहरी घाटी में बहता था। उसके दोनो ओर सघन झाड़ी थी और उसमें कभी बाघ-भेडिये भी दिखाई दे जाते थे। इस कारण अनजान आदमी को तो दिन-धौले भी उसमें से निकलते हुए डर लगता था। किन्तु पिताजी निडर होकर चले जा रहे थे। वे भय का नाम तक न जानते थे। भूत-प्रेत या जीव-जंतु किसी का भी उन्हें भय नहीं था।

चलते चलते पिताजी उस घाटी के पास पहुँचे ही थे कि एकदम किसीने सीटी बजाई। पिताजी कुछ चौंके। पाप तो भीरु होता ही है। तत्काल ही शरीर पर गेरु (लाल-मिट्टी) लगाये हुए कुछ मांग (एक अछूत जाति के पुरुष) झाड़ी में से निकल पड़े। इसके बाद जैसे ही पिताजी की पीठ पर लाठी का वार हुआ कि वे एकदम नीचे बैठ गये। यह कांड देखते ही नौकर वहां से भाग निकला। पिताजी को नीचे गिरा दिया गया और एक मांग के हाथ मे छुरा चमकने लगा। लपक कर वह पिताजी की छाती पर चढ बैठा। वह गर्दन कटने का बिकट प्रसंग था। इधर करौंदी की झाडी मे झिल्ली झनूकार मचा रही थी। उधर पास ही की एक बाँबी मे से विकराल भुजंग फूत्कार करता हुआ सन्नाटे से निकल गया। किन्तु उस 'माग' का उधर ध्यान तक नहीं था। इतने ही मे एक बुढ़िया चिल्लाई 'अरे, बेचारे बामन को मार डाला! खोत (मालगुजार) को मार डाला रे दौडो!' इन शब्दो को सुनकर वह 'माग' कुछ सहमा!

" इधर पिताजी अत्यंत करुणामय वाणी मे उस घातक से विनय करने लगे 'अरे भाई! मुझे क्यों मारता है! मैंने तेरा क्या बिगाडा है! ले यह अंगूठी और यह छल्ले-जोड तथा ये सौ रुपये। बस अब तो मुझे छोड!'

किन्तु उस बुढिया की आवाज सुनकर कोई आता हुआ दिखाई दिया। किसी के आने की आहट पाते ही घातक वह अगूठी और छल्ले-जोड़ तथा सौ रुपये नकद लेकर चम्पत हो गया। वे लोग असल मे घातक नहीं थे और न उनका यह धन्धा ही था। वे तो केवल दरिद्रता के कारण ही इस घोर-कर्म मे प्रवृत्त हुए थे। किन्तु इस क्रूर-कर्म की

जड मे भी दया थी—प्रेम था। अपने बाल-बच्चों के प्रेमके कारण और उनके पेट की भूख मिटाने के लिए ही वे लोग यह हत्याकाण्ड करना चाहते थे। कुछ लोग कहते हैं कि संसार में कलह और स्पर्धा ही सत्य-रूप में है। किन्तु उस कलह की जड़ या स्पर्धा की भाग-दौड के मूल में भी प्रेम तो होता ही है। अंतर केवल इतना ही है की वह प्रेम संकुचित होता है। सृष्टि का अंतिम स्वरूप प्रेम है युद्ध नहीं, सहयोग है द्वेष या ईर्ष्याभाव नहीं।

अस्तु। पिताजी का साथ छोड़कर भागा हुआ नौकर सीधा हमारे पालगढ़ नामक गॉव मे आया और उसने घबराते-घबराते हमारे घर आकर सब हाल सुनाया। यह खबर सुनते ही घर के सब लोग और गॉव के अनेक व्यक्ति तत्काल उस नाले की ओर दौड़ पड़े। हमारे गाँव मे पुलिस का थाना था, इस लिए वहां भी खबर कर दी गई।

भीतर घर मे यह समाचार पहुँचते ही कोहराम् मच गया। सब के चेहरो का पानी उड गया। घर में दीपक जल रहे थे, किन्तु फिर भी सबके मुँह पर मुर्दनी छाई हुई थी। किसका खाना और कैसा पीना वहां तो प्राणों पर संकट था। उस समय हममे से किसीका भी जन्म नहीं हुआ था: किन्तु माता सबकुछ समझने लगी थी। स्त्रियॉ जल्दी ही दुनियादारी समझने लगती हैं। मेरी माता ने यह सब कथा हमे सुनाई थी। वह घर मे देवता के पास पहुँची। सकट का एकमात्र साथी वही तो था। वहां जाकर माता ने अंचल पसारते हुए कहा 'हे दीनबन्धु नारायण! तुम्हीं मेरे रक्षक हो! तुम्ही को मेरी चिंता है! माते जगदम्बे! मैं तेरी ही तो पुत्री हूँ, मुझे अपनी गोद मे ले! मेरे कुंकुम-सौभाग्य-सिन्दूर की रक्षा कर! मेरा चूड़ा अखंड बनाये रख। मेरा सौभाग्य... नहीं। माते! उनपर घातक का प्रहार न होने देना। ओह! मैं अब क्या करूं? कौनसा व्रत लूं! हे भगवान, मुझपर दया करो! तुम तो करुणा के सागर हो! वे कुशलपूर्वक घर आवें और मैं जी भरकर उनके दर्शन कर सकूं। तुम्हारे आशीर्वाद से हम आजीवन आनन्द-पूर्वक रहें; बही केवल यही भिक्षा मांगती हूं। इसके सिवाय मुझे और कुछ नहीं चाहिए। न इन आभूषणों की आवश्यकता है और न बहुमूल्य वस्त्रों की

किस लिए है वह मालगुजारी ! नहीं, मुझे कुछ नहीं चाहिये। मेरे लिए तो पतिदेव ही एकमात्र आभूषण हैं। बस, वही मुझे चाहिए । वही मुझे प्रदान करो। यही भिक्षा मुझे दो। ' इस प्रकार विनय करते करते माता रोने लगी।

माता ने देवता की अच्छी तरह अनुयय-विनय की। किन्तु केवल प्रार्थना से ही क्या हो सकता था ! प्रत्येक बात में त्याग की आवश्यकता होती है--व्रत की जरूरत पडती है। मेरी माता ने भी उसी रात को सावित्री का व्रत लिया। मित्रो ! जीवन के कठिन प्रसगों पर धैर्य दिलानेवाले अनेक दिव्य स्त्री-पुरुष-रूपी रत्न भारतीय इतिहास में भरे पड़े हैं। राम हैं, हरिश्चद्र हैं, सीता है, सावित्री है। भले ही तुम इतिहास लिखो या न लिखो; सावित्री अमर है। स्त्रियों को वह सदैव धैर्य देती रहेगी। मनुष्य का पवित्र और निर्मल निश्चय उसे मृत्यु से भी जूझने की शक्ति दे सकता है।

मेरी माता की सौभाग्य-रक्षा हुई। पिताजी कुशल-पूर्वक घर आ गये। उसी वर्ष से माता नियमित-रूप से सावित्री का व्रत करने लगी। प्रतिवर्ष ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा आते ही वह दो दिन पहले से उपवास आरंभ कर देती। यह व्रत ले लेने पर जीवनभर छोडा नहीं जा सकता। इसमें वटवृक्ष (बरगद) की पूजा की जाती है; और आकाश में व्याप्त होने की इच्छा रखनेवाले उस अक्षय-वट की पूजा करके अक्षय सौभाग्य प्राप्त किया जाता है। इस व्रत के द्वारा स्त्रियो के जीवन मे जाने या अनजाने अनेक प्रकार की भावनाएँ दृढ होती जाती हैं। यथा:—वटवृक्ष की तरह कुल की वृद्धि हो, वह संसार को छाया और आश्रय दान करे, वटवृक्ष ऊंचा, अत्यंत ऊंचा उठकर जैसे स्वयं ही उस परमात्मा के चरण छूना चाहता है, उसी प्रकार हमारे कुल को भी उन्नत होने, ऊपर उठने और जीवन सफल करने की इच्छा हो। जिस प्रकार वटवृक्ष की अनेक शाखाएँ और जटाएँ चारों ओर फैल जाती हैं, उसी प्रकार हमारे वश का भी विस्तार हो तथा वह बलशाली बने।

सावित्री-व्रत के दिन निकट आने लगते और मेरी माता सहसा गंभीर हो जाती थी। आज इसी व्रत सम्बन्धी एक घटना सुनाता हूं। अब-तक की तो यह सब भूमिका मात्र ही थी। उस समय मैं आठ-नौ वर्ष का

था। सावित्री-व्रत का आरंभ होने को था; किंतु मेरी माता उन दिनों शीत-ज्वर से पीड़ित थी। यह ज्वर उसे कई दिनों से लगातार कष्ट दे रहा था। इधर सावित्री-व्रत में तीन दिनों तक वटवृक्ष की नित्य १०८ वार प्रदक्षिणा करनी पड़ती है। किन्तु माता को उठकर खड़े होते ही चक्कर आने लगते थे।

मुझे माता ने 'श्यामू!' कहकर आवाज दी और तत्काल मैं उसके पास जा पहुँचा। मैंने उससे पूछा "क्या है माँ! तुझे क्या तकलीफ होती है! क्या तेरे पैर दबाऊ?"

माता ने कहा "नहीं बेटा, पैर दाबने से क्या होगा! और पैर भी कबतक दाबे जायँ। तू भी तो उकता गया होगा। परतु, क्या करूं बेटा! मेरा भी क्या वश है!"

माता के उन करुण-शब्दों को सुन मुझे बहुत दुःख हुआ। मैं रोने लगा। माता ने कहा "श्यामू! तू दिनभर काम कर के थक जाता है, यह मैं जानती हू। किन्तु फिर भी तुझे कल से तीन दिन के लिये एक काम और करना पड़ेगा! क्यों, कर देगा न बेटा?"

मैंने तत्काल पूछा "वह कौन सा काम है माँ? तेरी आज्ञा होने पर क्या मैंने कभी इन्कार किया है?"

माता ने गद्गद् होकर कहा "नहीं, बेटा! तूने आजतक कभी किसी काम से इन्कार नहीं किया। अच्छा, तो सुन! कल से सावित्री व्रत का आरंभ होगा; किन्तु मैं 'वटवृक्ष' की १०८ प्रदक्षिणा न कर सकूंगी, क्योंकि खड़ी होते ही मुझे चक्कर आने लगते है। फिर भी किसी तरह तेरा हाथ पकड़ कर बड के चबूतरे तक चलूंगी और पूजन करके जैसे-तैसे तीन बार प्रदक्षिणा दे लूंगी; बाकी १०५ प्रदक्षिणा तुझे करनी होगी।"

यों कहकर माता ने मेरा हाथ अपने हाथ में ले लिया; और अत्यंत प्रेमयुक्त किन्तु करुण-दृष्टि से वह मेरी ओर देखने लगी।

इसपर मैंने पूछा "माता, मेरी की हुई प्रदक्षिणा का फल तुझे कैसे मिलेगा?"

माता ने कहा "मिलेगा, बेटा! अवश्य मिलेगा! भगवान तो सब देखता है; वह सब कुछ जानता है। वह कहीं दूर नहीं चला गया है। बेटा, तू मुझसे भिन्न थोड़े ही है। मेरे ही पेट से तो तूने जन्म लिया है।

मेरे ही शरीर का तो तू एक अंश है। मेरा ही तो तू प्रतिरूप है। इस लिए तू जो प्रदक्षिणा करेगा, वह मेरी ही होगी। मैं दुर्बल, अशक्त और बीमार हू; यह बात भगवान अच्छी तरह जानता है।"

"परंतु वॅहा पूजा करनेवाली स्त्रियाँ तो मुझे प्रदक्षिणा करते देखकर हँसेगी! नहीं, मैं कभी वहॉ नहीं जाऊंगा। स्कूल मे जानेवाले लडके मुझे वहॉ देखकर चिढ़ाते हुए कहेंगे यह देखो, छोकरी आई। इस लिए मुझे तो शर्म लगती है। बस मै नहीं जाऊंगा वहाँ। साथ ही एक दिन के लिए मेरी गैरहाजिरी होने पर गुरुजी भी तो नाराज होंगे।" इस प्रकार मै अपनी लाचारी के अनेक कारण बतलाने लगा।

माता की मलिन मुखमुद्रा खिन्न हो गई। उसने फिर कहा, "श्यामू! माँ का बताया हुआ काम करने मे किस बात की शर्म? यह देवता की पूजा है न? यदि पूजा करते देख कर कोई हॅसा भी तो वही मूर्ख सिद्ध होगा। देवता का काम करने में कभी शर्माना नहीं चाहिए हॉ, पाप करते समय अवश्य मनुष्य को लज्जित होना चाहिए। श्यामू! उस दिन चूल्हे के पिछे रखा हुआ नारियल की गिरी (गोले) का टुकडा उठाकर तू खा गया और मैंने अपनी ऑखों से भी देख लिया; किन्तु कुछ नहीं कहा। सोचा, जाने भी दो; अभी यह बच्चा है। उस दिन तुझे शर्म नहीं आई और आज देवता के काम मे तुझे लज्जा होती है, क्यों? फिर तू 'भक्ति-विजय' ग्रंथ क्यों पढता है? वह 'पांडव-प्रताप' क्यों सुनाया करता है! तेरा प्यारा कृष्ण तो अर्जुन का सारथी बनता है; धर्मराज के यज्ञ मे जूँठन तक उठाता है और मेरी ऐसी हालत देखकर भी वटवृक्ष की प्रदक्षिणा करने में तुझे शर्म लगती है? अच्छी बात है, तू नहीं जाना चाहता तो मत जा! मै खुद ही वहां जाऊगी और वट की प्रदक्षिणा करूगी! अधिक से अधिक यही तो होगा की मै चक्कर खाकर गिर पडूगी; मर भी जाऊगी तो एक वार इस कष्ट से तो छूट जाऊंगी। भगवान के घर तो चली जाऊगी। परतु श्याम! मैं तुम्हारे लिए ही तो जी रही हूं..." यों कहते-कहते माता अचल से ऑसू पोंछने लगी।

माता के वे मर्मभेदी शब्द मेरे अतःकरण मे गहरे उतर गये। मेरा हृदय द्रवित हो उठा और सजल एवं पवित्र हो गया। अहा! माता के

कैसे कल्याणकारी शब्द थे "ईश्वर के काम करने मे मत शर्माओ, पाप करने मे लज्जित होओ।" आज भी वे शब्द मेरे कानो में गूज रहे है। इस समय ऐसे उपदेश की कितनी आवश्यकता है! देवता के काम में, देश के काम मे और भारतमाता के काम मे हमें शर्म लगती है; किन्तु निकम्मी पुस्तकें पढने, भ्रष्ट सिनेमा देखने, हुलास सूघने, बीडी-सिगरेट पीने, पान-सुपारी चबाने और चैनबाजी करने में हमे शर्म नही आती। पुण्यकार्य अथवा सत्कर्म करने मे लज्जा आती है; और असत्कर्म करने में हम गौरव अथवा संस्कृति का महत्त्व अनुभव करते है। यह अवस्था कितनी लज्जाजनक और निन्दनीय है!

मैं तत्काल ही माता के चरणो मे गिर पडा और अपने अपराध की क्षमा मांगते हुए बोला "माता, मै अवश्य वटवृक्ष की प्रदक्षिणा करने जाऊंगा। भले ही कोई मेरी हॅसी उडावे या मुझे व्यग-वाणी सुनावे; किन्तु मैं जाऊंगा, अवश्य जाऊंगा। पुण्डलीक भी तो माता-पिता की सेवा कर के ही बड़ा बना और देवता को बॉधकर घर ले आया था। इस लिए मॉ तेरा काम करके मुझे तेरा और देवता का प्यारा बनने का अवसर दे। स्कूल मे यदि गुरुजी रुष्ट हुए और उन्होने मुझे पीट भी दिया तो चिन्ता नही! मॉ, तुझे मेरी बातों पर क्रोध आ गया और बुरा लगा है; क्यों?"

माता ने कहा "नहीं बेटा, मै तुझ पर नाराज क्यो कर हो सकती हू? श्याम! मुझे तुझ पर क्रोध नहीं आ सकता!"

मित्रो, उस दिन से जब कभी मै घर पर रहता और वट-सावित्री का समय आ जाता तो अवश्य ही मैं वट की प्रदक्षिणा करने जाता था। अपनी माता के उस दिन के शब्द मैं कभी भूल नहीं सकता कि "पाप करने मे शर्माओ, किन्तु अच्छे काम करने में कभी लज्जित न होओ।"

३ बहन का ब्याह

आश्रम में सायंकाल का भोजन हो चुका था। इस भोजन के बाद प्रार्थना समय होने तक आश्रमवासी टहलने चले जाते थे। आश्रम के पास ही नदी भी थी। नदी का नाम था बहुला! उसके किनारे

पर महादेव का मंदिर था। देवालय से लगा हुआ पीपल का एक बहुत बडा पुरातन वृक्ष था, जिसके चारों ओर पक्का चबूतरा बना हुआ था। और उसपर गाँव के लोग कभी-कभी आकर बैठते थे।

गोविन्द और श्यामू टहलने गये और वे दोनों टेकड़ी पर जाकर बैठे। छोटा गोविन्द अलगोजा बहुत मधुर बजाता था। उसने अपनी बॉस की बॉसुरी जेब से निकाल कर बजाना आरंभ किया। कवि-हृदय श्यामू उसकी मधुर रागिनियां सुनने लगा। अचानक गोविन्द ठहर गया और उसने श्याम के मुँह की ओर देखा। श्याम के नेत्र बंद थे और उसके मुखमडल पर मधुर किन्तु दिव्य तेज झलक रहा था।

गोविन्द ने कहा "भैया, चलो आश्रम को लौट चलें। प्रार्थना का समय हो रहा है।" श्यामू नें आँखें खोलकर कहा "गोविन्द! बॉसुरी एक दिव्य वस्तु है कृष्ण की मुरली (बंसी) से पशुपक्षी तो क्या ककड-पत्थर-तक पिघल जाते थे। तूने स्त्रियो को गाते सुना है न :—

बहती है प्रशान्त यमुना कलनाद् लुब्ध होकर समीर।
तरुवर भी मुग्ध खड़े कैसे, फल-पत्र-पुष्प भी शांत धीर॥
गोपीजन वल्लभ के दर्शन-हित काम काज छोड़े सारे।
वृंदावन में बाजी बंसी, टुक ठहरो तो मोहन प्यारे॥*

गोविन्द! बचपन में कोकण प्रदेश मे रहते हुए छुट्टी के दिन वर्षाऋतु में कभी-कभी ग्वालो के साथ मैं भी जंगल में जाया करता था। उस समय गौएँ तथा उनके बछड़े चरते रहते और ग्वाले मस्त होकर अलगोंजा बजाया करते थे। मेरे काका (चचा) बहुत ही मीठे स्वर के अलगोजे बनाते थे। बाँसरी बाँस की एक छोटीसी नली होने पर भी उसमे कितनी अद्भुत शक्ति है, यह तो तू जानता ही है। आज कल ब्रॉस (पीतल) आदि की बनी हुई विदेशी कर्कश बाँसुरी लोग दो-दो

*** यमुनाबाई वाहे स्थिर नादें लुब्ध समीर रे।**
हालवीना तरूवर पुष्प फळ पान रे॥
गोपीनाथा आल्यें आल्यें सारूनीया काम रे।
वृंदावनीं वाजवीशी वेणू जरा थांब रे॥

रुपये देकर खरीदते हैं; किन्तु बेचारे ग्रामीण लोगों के लिए तो यह बाँस की अमूल्य बाँसुरीही मधुर, सुदर और सुलभ हो सकती है। बाँसरी हमारा राष्ट्रीय वाद्य हैं। भगवान श्रीकृष्णचंद्रने उसे प्रचलित किया और भारत के साढ़े सात लाख गाँवो मे वह आज भी बरबर बजाई जाती है। क्यो ठीक है न! अच्छा फिरसे एक बार वह गीत तू अपने अलगोंजे पर अलाप तो देखूं।"

"परतु वह देखो आश्रम की घटी बज रही है। चलो, प्रार्थना के लिए चले।" गोविन्द ने कहा।

"अच्छा, चलो! किन्तु क्यो गोविन्द! क्या कल मैं बहुत देरतक अपनी कथा कहता रहा? पर भाई, माता की थोडीसी पूर्वकथा भी तो कहनी चाहिए थी! आज मै शीघ्र ही समाप्त कर दूगा।" श्याम ने उत्तर दिया।

इसपर गोविंद ने कहा "नही भैया, कौन कहता है कि तुमने देर कर दी! केवल दस-बारह मिनट ही तो तुम बोले थे। व्यर्थ ही जान-बूझकर उन मधुर स्मृतियो को संक्षिप्त मत करो। उनमे बीच-बीच मे अनेक प्रकार के विचार-कल्पना एव भाव उदित होते हैं; और उनसे हमे जब लाभ ही होता है तो उस समय को व्यर्थ गया हुआ कैसे कह सकते हैं?"

इस प्रकार वार्तालाप करते हुए दोनो मित्र आश्रम मे आ पहुँचे। ऊपर छत पर प्रार्थना की तयारी हुई और सब आश्रमवासी आकर बैठ गये। गाँव से भी कुछ लोग आये थे। घटी बजी और प्रार्थना शुरू हुई।

"स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव"

इत्यादि श्लोको-द्वारा गीता-कथित स्थित-प्रज्ञ के लक्षण सुनाये गये। किन्तु अब तो यह प्रार्थना लगभग राष्ट्रीय-प्रार्थना की तरह प्रचार मे आ गई है।

प्रार्थना समाप्त होते ही श्यामू की कहानी सुनने को सब लोग अधीर हो उठे। अतएव उसने इस प्रकार कहना आरंभ किया:

मेरी माता का प्रेम हम सब भाइयों की अपेक्षा हमारी बहन पर अधिक था। बहन भी मानो माता की प्रतिमूर्ति ही थी। हम उसे 'जीजी' कहते थे। मेरी जीजी क्षमा, दया और कष्ट एवं सहनशीलता की मूर्ति थी। उसे पहली बार सुसराल मे बहुत कष्ट दिया गया. किन्तु

चुपचाप उसने वह सब सहन कर लिया, घर आकर कभी एक अक्षर तक न कहा। उसने अपने लड़के को कभी एक थप्पड तक नहीं लगाई। जब कभी उसे लडके पर क्रोध आता, तो वह उठकर अलग चली जाती और अपना क्रोध शात कर के आ जाती।

मेरी जीजी के विवाह के समय की बात है। उसके विवाह का योग कई दिनो तक न आ सका था। वह मगली लडकी थी, इस कारण बारम्बार रुकावट पडती थी। साथ ही ठहरौनी का प्रश्न भी बाधक हो रहा था। वैसे हमारे घर का नाम बहुत प्रसिद्ध था, किन्तु यथार्थ में 'नाम बड़े और दर्शन थोडे' वाली अवस्था थी। परिवार के कुछ लोग अवश्य यह चाहते थे कि पूर्वपरपरा की ही तरह ठाठ-बाट से रहा जाय; परन्तु कर्ज बढता ही चला जाता था। मेरी जीजी को सत्रह जगह ले जाना पड़ा। कही लडकी पसद आ गई तो ठहरौनी बाधक हो गई; और कहीं ये दोनो बाते जमी तो किसी तीसरी बात की रुकावट आगई। सचमुच ठहरौनी (हुडा) एक प्रकार से लडकी की गर्दन पर रखी हुई शिला के समान ही होती है। इस ठहरौनी की चिन्ता के कारण बेचारी लडकी के शरीर की पूर्ण वृद्धि तक नहीं होने पाती। यह चिन्ता उसके शरीर में भीतर ही भीतर सुलगती रहती है। बारम्बार उसके कानो से माता-पिता के ये चिंतायुक्त शब्द टकराते रहते है "कि लडकी पहाड की तरह बढती जा रही है। भगवान जल्दी से इसे ठीक ठिकाने लगा दे तो गगा नहाये। न जाने किसके घर के तिल चबाये है कि योग्य घर-वर का पता ही नहीं लगता!" इन शब्दो को सुनकर लड़कियों को अपना जीवन भारवत् जान पड़ता है। किन्तु हमारे देश के युवक ही बड़े अविचारी हैं! उनका ध्यान ही इस बुराई की ओर नहीं जाता!

इस दहेज की कुप्रथा को मिटाने के लिए बीस वर्ष पूर्व बगाल मे कुमारी स्नेहलता ने शरीर पर मिट्टी का तैल डाल कर अपने को जीवित जला दिया था। उस समय अवश्य थोड़ी देर के लिए युवकों में हलचल मची थी। और उन्होंने आन्दोलन खड़ा कर के सभाओ में प्रस्ताव भी पास किए थे। किन्तु वह आवेश दूर होते ही फिर सब बातें ठडी पड गई। दहेज के साथ ही आगे की शिक्षा या विदेश जाने के

लिए खर्चा, अगूठी एवं बहुमूल्य आभूषण, सोने की रिस्टवॉच, सायकल मोटर आदि की मांग भी अब खुल्लमखुल्ला की जाती है। किन्तु यथार्थ में यदि देखा जाय तो लडके या लडकी के नाम पर रुपया मागना सर्वथा निंदनीय ही है। कहां तो हमारा वह महान् उदार धर्म, जो गौ बक को बेचने का निषेध करता हो; और कहा उसके अनुयायी अपने लडके लडकियाँ तक को बेचने मे नही लजाते! कितना अधःपतन है! इससे बढकर दूसरा अधर्म और क्या हो सकता है? मुँह से धर्म की ठसक तो सब दिखाते हैं, किन्तु प्रत्यक्ष व्यवहार मे प्रायः सभी बगले झांकने लगते हैं। जिन युवको के हृदय उदार होने चाहिए, वे भी आज मुर्दार बने हुए हैं। किन्तु जब तक इन निंदनीय प्रथाओं के विरुद्ध विद्रोह मचाने का साहस उनमे नहीं होगा, तब तक कुछ भी नहीं हो सकता। अपनी बहनों के जीवन को संकटापन्न बना देनेवाली रूढियो और कुप्रथाओं को छोड़ने का जिनमें साहस नहीं है, उन्हे स्वतत्रता प्यारी है, यह कैसे माना जा सकता है? किन्तु छोडिये इन बातों को! मैं भावना के प्रवाह मे कहां से कहां बह गया।

इसपर एक साथी ने कहा "नही भाई, तुम किधर भी क्यों न बह जाओ, हमें तो उसमे से भी उपदेशरूपी मधुर मधु की ही प्राप्ति होगी। ऊबट जगल मे जाने पर भी तुम फल-फूल ही दिखलाओगे। जब तक तुम बोलते रहते हो, तब तक पुंगी (बीन) सुनकर डोलनेवाले सर्प की तरह हमारा अतरात्मा डोलता रहता है।"

तत्काल ही गोविन्द ने इसका समर्थन करते हुए कहा "तुम्हारी तो प्रत्येक बात ही हमें मीठी लगती है भैय्या! तुम्हीने तो उस दिन शाहुनगर-वासी नाटक मंडली के प्रसिद्ध नट गणपतराव की बात सुनाई थी कि 'हेम्लेट' नाटक का तो विज्ञापन किया गया और रंगम-मच पर आकर गणपतराव ने 'संत तुकाराम' नाटक का प्रसग छेड दिया! किन्तु दर्शकों ने कहा कि 'कोई हानि नहीं! गणपतराव का तो प्रत्येक वाक्य ही सुदर होता है।' ठीक यही बात तुम्हारे लिए भी कही जा सकती है। भले ही तुम कोई कहानी सुनाओ या प्रवचन दो; हमारे लिए तो दोनों ही आनदप्रद होंगे।"

"हां, तो फिर जीजी के विवाह का क्या हुआ?" राम ने पूछा।

श्यामू ने कहा; देखा! राम अपने मूल विषय पर ही मौजूद है। अच्छा तो सुनोः—कई दिनो तक घूमने-फिरने के बाद जैसे-तैसे जीजी का विवाह निश्चित हुआ। विवाह रत्नागिरी में होनेवाला था; इस लिए हम सब को पालगढ से रत्नागिरी जाना पडा। मै उस समय छह-सात वर्ष का था। ठीक तो याद नहीं है; किन्तु माता ही कभी-कभी उस घटना को सुनाया करती थी। मुझे वह तूफानी समुद्र और वे बैलगाड़ियाँ आदि सब अच्छी तरह स्मरण हैं। उस दिन ग्राम-वासी और हमारे घर के मिला कर कोई पचास-साठ व्यक्ति बैलगाडियो में रवाना हुए और सीधे 'हर्णै' बदर-गाह पर आ पहुँचे। उन दिनों स्टीमरो जहाजों की हालत बहुत खराब थी। साथ ही हर्णै बदरगाह पर धक्का (समुद्र के पानी का धक्का सहनेवाली दीवार) नहीं था। इस लिए नौकाएँ कमर से भी अधिक गहरे पानी म खडी रहती थी। वहाँ तक मल्लाहो के कन्धे पर चढ़कर जाना पड़ता और फिर उन नौकाओ में बैठकर स्टीमर तक पहुँचते थे।

यद्यपि हर्णै बदरगाह त्रासदायक था, किन्तु फिर भी वहां का दृश्य बड़ा सुन्दर था। इसका प्राचीन नाम 'सुवर्णदुर्ग' था। इस किले के विषय मे आज भी औरते गाया करती है कि:—

हर्णैच्या किल्ल्यावरी। तोफा मारिल्या दुहेरी।
चंद्र काढिला बाहेरी। इंग्रजांनीं।

अर्थात् चंद्रसेन राजा को अग्रेजो ने हर्णै के किले पर दुहेरी तोपें चला कर बाहर निकाल दिया। अस्तु। इस बदरगाह पर समुद्र के किनारे ही नारियल के सघन वन है। सामने ही उत्ताल तरगवाले समुद्र को देख-कर वे वृक्षमालाएँ प्रसन्नता से गर्दन मटकाती रहती है। समुद्र की गंभीर गर्जना छह-छह कोस तक सुनाई देती है। हर्णै बदरगाह पर 'दीपगृह' भी है। एक ऊची टेकडी पर लाल रग की बत्ती घूमती रहती है। और इस प्रकार वह मुँह से कुछ कहे बिना ही आने-जाने वाले जहाजों को खतरे की सूचना देती रहती है कि यहां चट्टाने हैं। सत-महात्मा भी इसी प्रकार ऊंची चट्टानपर खडे होकर संसार को मौन-रूप से मार्ग-दर्शन करते रहते है। अर्थात् सत-महात्मा भी भवसागर के दीपस्तंभ ही हैं।

इस दीपस्तम को देखते ही हमारे उन ग्रामवासी साथियो मे से एक ने किसी महात्मा का वचन सुनाया:—

संतकृपेचे हे दीप। करिती साधकां निष्पाप॥

अर्थात् सत-महात्माओ का कृपा-रूपी दीपक साधको को निष्पाप कर देता है। और यह बात यथार्थ ही थी। ग्रामीण-भक्त एव श्रद्धालुओं (वारकरी) को कितने ही महात्माओ के पद, भजन आदि कठस्थ रहते हैं और पढ़ी हुई जितनी बातें उनको याद रहती है, उतनी हमारे सुशिक्षितो को नहीं। उन्हें तो अंग्रेजी के कवियो से परिचय होता है और उन्हींके वचन याद रहते हैं। वे ज्ञानेश्वर या तुकाराम को नहीं जानते।

श्यामू ने कहा: वह लाल दिया रात को कितना सुन्दर दीखता है। यदि उस समय आकाश मे चन्द्रमा हो और समुद्र मे प्रेम का ज्वार आ रहा हो: तो उसके विशाल वक्षःस्थल पर हमें सैंकड़ों चद्रमा नाचते हुए दिखाई देंगे। उस समय ऐसा जान पड़ेगा मानो समुद्र अपने सुन्दर सुकुमार गौरवर्ण बाल-शिशु के सैंकड़ों चित्र खींच रहा है।

यह सुन एक छोटेसे लड़के ने पूछा "तो क्या चद्रमा समुद्र का पुत्र है?"

"हा, समुद्रमंथन के समय वह चौदह-रत्नो के साथ बाहर निकला था, ऐसा एक कथा मे उल्लेख मिलता है।" इस प्रकार नामदेव ने उत्तर दिया।

श्याम अपनी कथा सुनाने के आवेश मे था ही; अतः वह फिर कहने लगा : उस समय ऐसा भी प्रतीत होता था, मानों अपने पुत्र चंद्रमा को पहनाने के लिए समुद्र अनेक प्रकार के आभूषण लिए हुए उछल रहा है; अथवा चंद्रमा ही सैकडों रूप धारण कर लहरों से खेलने के लिए नीचे उतर आया है। उस समय सर्वत्र आनद ही आनंद छाया रहता है। हवा चलती रहती है और नारियल डोलते एव समुद्र में लहरों की दीवारें उठ-उठ कर दूर तक किनारे पर फैल जाती हैं। दीपक चमकता, चन्द्रमा अपनी शुभ्र-चद्रिका फैलाता और नावो मे यात्रियो का समूह चढ़ने लगता है। भीड के कारण हलचल-सी मच जाती है। उधर मल्लाह और खल्लासी लोगों की चिल्ल-पुकार मची रहती है।

किसी का सामान छूट जाता है तो किसी का बदल जाता है और किसी का खो जाता है। किसी का समुद्र की हवा से जी मिचलाता और किसी को उल्टी हो जाती है। और वह यदि किसी के शरीर पर हो गई तो वह गुस्से के मारे उबल उठता है। भारतवासियों की सारी अव्यवस्था, गडबड़ और उदासीनता एव सहानुभूति-शून्य वृत्ति का वहाँ प्रत्यक्ष परिचय मिल जाता है।

हम लोग भी नाव मे बैठे और वह चलने लगी। मल्लाह लोग पतवार चलाने लगे। छपाक्-छपाक् कर पानी-कटने का शब्द होने लगा। जोरो की हवा के कारण पानी के छीटे शरीर पर उड़ रहे थे, और खेवैया लोग "शाबास! जरा जोर से!" कहकर परस्पर उत्साह बढा रहे थे। नाव मे बहुत भीड़ होने से जगह की तंगी थी। मेरी माता गोद में बच्चे को लिए हुए एक ओर बैठी थी और साथ ही मेरी बुआ भी अपने बच्चे को गोद मे सुला रही थी। क्योंकि बुआ बीमार थी; अतएव उसके बच्चे को दूध नहीं मिल रहा था। वह ऊपर का दूध उसे पिलाती थी, किन्तु ऐसे दूध से बहुत छोटे बच्चो को सतोष नहीं होता। क्योंकि माँ के दूध का स्वाद कुछ और ही होता है। वह निरा दूध ही नहीं होता, बरन् उसमे प्रेम और वात्सल्य रूप अमृत भी होता है। इसी लिए वह दूध बच्चे को पुष्ट करता और तेजस्वी बनाता है। जिस देन (दान) में प्रेम होता है, उससे देने और लेनेवाले, दोनों को सुख होता है।

किनारे पर की गाडियो के बैलो के गले में बजनेवाली घंटियां की आवाज दूर चले जाने पर भी सुनाई दे रही थी। क्रमशः बदरगाह पर के दिये धुँधले दिखाई देने लगे और जहाज भी कुछ दूर खड़ा दिखाई दिया। प्रथमतः उसका ऊपर वाला लेम्प दिखाई पड़ा; किन्तु फिर भी वहां तक नाव के पहुँचने में आधा घटा लग ही गया। रास्ते में ही "अरे काटता क्यों है? उसमे ऐसा पीने को है ही क्या?" यों कह कर बुआ अपने बच्चे पर चिल्लाई; और इससे बच्चा जोरों से रोने लगा। वह किसी प्रकार भी चुप न हो सका। उधर नाव में भीड़ इतनी थी कि इधर-उधर हिलने तक की गुंजायश नहीं थी। किन्तु जब आसपास लोगों की भीड होती है, उस समय यदि बच्चा रोने लगता है तो बेचारी माता को

मृत्यु से भी अधिक कष्ट होता है। क्योंकि प्रत्येक माता यही चाहती है कि उसका बच्चा हँसे-खेले और सब लोग उसे प्यार करें; उसे उठावे, नचावें और प्रेम से चूमें। इसीमें माता के लिए परमानन्द होता है। यह सब देखकर उन्हें कृतार्थता प्रतीत होती है। किन्तु यदि बच्चा रोने लगे तो उसकी फजीहत हो जाती है। हँसते बच्चे को सभी गोद में लेना चाहते हैं. किन्तु रोते हुए को कौन उठाना चाहेगा? यथार्थ में रोते हुए को ही उठाने की विशेष आवश्यकता होती है; फिर भी लोग उसीसे घृणा करते है। सच ही है; संसार में सभी सुख के साथी है, दुख का कोई नही। दीन जनों का संसार में कोई सहायक नहीं होता। पतितों की सुधि कोई नहीं लेता। जिसे सहानुभूति की अत्यंत आवश्यकता होती है, उसीको उसके लिए तरसना पड़ता है।

'दीन को दयालु दानी दूसरो न कोई।'

बच्चा रोने लगा की चारों ओर से स्त्रियाँ बडबडाने लगती हैं कोई कहती है "अरे, यह कैसी माँ है जो रोते बच्चे को चुप भी नहीं कर सकती!" तो दूसरी सुनाने लगती है, अरे, पर ये तो रोज ही इस तरह रोते हैं, इन्हें कोई चुप करे भी तो कैसे? सुनते-सुनते आदत-सी पड़ जाती है।" किन्तु इन वचनों को सुन बच्चे की माता को ऐसी मर्मवेदना होती है, कि यदि उस समय पृथ्वी फट जाय तो वह अपने बच्चे सहित उसमें समा जाय। क्योंकि दुनिया के बाजार में बकवादी तमाशबीन ही अधिक होते हैं। मेरी बुआ की भी उस समय यही दशा हुई। क्यों कि उसका बच्चा किसी भी प्रकार चुप नहीं होता था? किन्तु मेरी मां पास ही बैठी हुई थी। उसने अपने बच्चे को नौकर के हवाले किया और बुआ से कहा "ननँद, लाओ उसे मेरी गोद में देदो। मै दूध पिलाकर उसे शांत करती हू।" यों कहकर माता ने बड़े प्रेम से बुआ के बच्चे को गोद में लिया और दूध पिलाया। बच्चे को पेटभर माता का दूध पीकर सतोष हुआ और वह कुछ ही देर में हँसने खेलने लगा।

बहन के विवाह मे माता अपने बच्चे को भले ही घड़ी भर रोने देती; किन्तु बुआ के बच्चे को पहले दूध पिलाकर शांत करती थी। बच्चों को और

चाहिए ही क्या? माता का मीठा दूध पेटभर मिल जाने के बाद तो वे राजा ही बन जाते है! इस प्रकार बुआ के बच्चे को रोता देखते ही मेरी माता तत्काल उसे गोद में उठा लेती और दूध पिलाने लगती। उसने कभी इस विषय में अप्रसन्नता का एक शब्द तक मुँह से नही निकाला वरन् इसमे उसे परम-धन्यता ही प्रतीत होती और वह इसीमे परम सुख एवं संतोष मानती।

मेरी माता कभी-कभी इस घटना को सुनाते हुए कहती, "बेटा श्याम! अपने पास जो कुछ हो, वह दूसरो को दे कर उनके आँसू पोछना और हँसाना चाहिए, उन्हे सुखी और संतुष्ट करना चाहिए। इस आनंद से बढकर ससार में दूसरा आनन्द नही हो सकता। अरे, अपने बच्चे को तो सभी खिलाते-पिलाते और प्यार करते हैं; किन्तु जो दूसरे के बच्चों का लाड-प्यार करे और उतने ही प्रेम से करे, वही सच्चा और ससार में श्रेष्ठ महापुरुष है।"

४ मूक पुष्प

"बलवत! तूने रोटी खा ली या नहीं? चलता है न आश्रम में?" शिवराम ने पूछा।

"माँ! दे तो जल्दी से रोटी। कही उधर कहानी शुरू न हो जाय!" बलवंता अपनी माता से जल्दी करने लगा।

"जा, नहीं देती! रोज-रोज काहे की कहानी सुनता है। जब देखो तभी कहानी के लिए जल्दी मचाता रहता है। जा, भूखा ही चला जा! नही तो आकर खा लेना रोटी!" इस प्रकार झल्लाकर उसकी माता ने उत्तर दिया।

यह सुन बलवंता सचमुच भूखा ही चल दिया। उसे रोटी की अपेक्षा कहानी ही अधिक प्रिय जान पड़ी। उसके पेट को रोटी की चाह थी; किन्तु हृदय तो श्यामू की बातो से ही तृप्त हो सकता था।

बलवंत और शिवराम जल्दी से चल दिये। मार्ग में ठोकर लगने पर भी शिवराम को उसका भान नहीं हुआ। उनके कान तो आश्रम में गानेवाले "बोलो बन्सीधर की जय। श्यामसुन्दर हरिहर की जय" की ओर लगे हुए थे। जब वे दोनो आश्रम में पहुँचे तब प्रार्थना समाप्ति के श्लोक बोले जा रहे थे :—

'अहिंसा सत्य अस्तेय, ब्रह्मचर्य असंग्रह।
शरीरश्रम अस्वाद, सर्वत्र भयवर्जन॥
सर्वधर्म समानत्व, स्वदेशी स्पर्श-भावना।
ये एक एकादश धारेंगे, नम्रत्वे, व्रत निश्चये॥'

श्याम ने कहना आरंभ किया :

आज मैं फूलों की कहानी सुनाऊगा। बचपन में मुझे फूलों का बडा चाव था। फूलों-सरीखी पवित्र और सुंदर वस्तु ससार मे दूसरी कोई भी नहीं हो सकती। पृथ्वी पर के फूलों और आकाशस्थ तारों ने मेरे जीवन पर अनेक प्रकार से प्रभाव डाला है। मेरे पिता को भी फूलो का बडा चाव था। पूजा के लिए उन्हें हमेशा यथेच्छ पुष्पों की आवश्यकता होती थी। गुलाब, चमेली, मोगरा, जसौंधी, कनेर आदि अनेक प्रकार के फूलों के पौधे हमारे खेत पर थे। मेरे पिता गणेशजी के अनन्य भक्त थे; अतएव प्रति दिन वे हरी दूब की २१ जूडियाँ गणेशजी को चढाते थे। सूखी या कुम्हिलाई हुई अथवा छोटी रहजाने वाली दूब उन्होंने कभी गणेशजी को नहीं चढाई। कितनी ही दूर क्यों न जाना पडे, किन्तु वे जब लाते तब हरीकच्छ, गुच्छेदार और लंबी दूब के अकुर ही लाते थे। वे कहा करते "अरे, जब देवता को सीधी-सादी दूर्वा ही चढ़ानी है, तो वह भी क्यों अच्छी न लाई जाय?" अपने पिता की विरासत में मैंने फूलों की धुन अवश्य पाई, किन्तु फूलों से प्रेम करना तो माता ने ही सिखाया।

मैं फूल लेने सबेरे जल्दी से चल देता था। हमारे गाँव में बकुल (मौरश्री) के अनेक वृक्ष थे। इसके पुष्प बड़े ही सुन्दर और सुगन्धित होते हैं। उनमें मधु भी होता है। वे पुष्प छोटे-छोटे मोती जैसे जान पडते हैं:

अथवा कोई यदि चाहे तो उन्हें छोटे-छोटे बटन भी कह सकता है। मैं टोकरियाँ भर-भरकर ये मौरश्री के पुष्प घर लाया करता था। सबेरे खूब फूल इकट्ठे कर लेता और दस बजे पाठशाला से आते ही उनके हार बनाता था। पिताजी उन हारों (मालाओं) को मंदिर मे ले जाकर देवमूर्ति के गले में पहना देते थे। इस प्रकार सबेरे नित्य-प्रति मैं बकुल के मोती जैसे पुष्प एकत्र करता और शाम को गुलबाँस के। किन्तु शाम को इन-गुलबांसी-फूलों के लिए पाठशाला से छूटते ही मैं दौडकर खेत-पर पहुँच जाता था। कभी-कभी मैं दूसरो के घर जाकर उनके पौधो पर से भी फूल चुन लाता था। क्योंकि उन्हें इनकी विशेष आवश्यकता नहीं रहती थी। फूलों के प्रति प्रेम है ही किसे? देवपूजा भी कौन करता है? देवपूजा के ही तो सब अनुयायी हो रहे हैं। फूल तोड़कर कोई तो उसे रेट भरे नाक में ठूसने लगता है और कोई पसीने भरे बालों मे खोंस लेता है! किन्तु यथार्थ में यदि पूजा के लिए फूल तोडने ही हों तो थोडे से तोडना चाहिए; नहीं तो उन्हें पौधे की ही शोभा बढाने देना चाहिए। वहाँ भी वे देवता पर ही चढ़े हुए रहते हैं।

इस लिए अब मै किसी भी पौधे परसे फूल नही तोड सकता। क्योंकि वह मुझे परमेश्वर की रसमयी सुन्दर मूर्ति सा जान पडता है! किन्तु बाल्यावस्था में भी मैं केवल देवपूजा के लिए ही फूल तोड़ता था। गुलबाँस के फूलो के लिए लडके-लडकियो मे झगड़े भी होते रहते थे। यह फूल बहुत ही सुन्दर और सुकुमार होता है। इसकी डडी लंबी, पतली और कोमल होती है, तथा उसके सिरे पर छोटा-सा मणि या काले रग का गोल बीज होता है। ये फूल अनेक रगो मे फूलते हैं। इनके लाल, गुलाबी, पीले, केसरिया, सफेद और बसती आदि अनेक भेद होते हैं। गुलबाँस के मणि, काले मणि, बहुत ही सुन्दर दिखाई देते हैं। मेरी माता भी तुलसी के ऑगन मे बैठकर इन फूलों की माला बनाया करती थी। खासकर गुलबाँस के फूलों की माला तो उन फूलों की लबी डडी को ही एक दूसरे में गूँथकर बना ली जाती। उसमे सुई-धागे की जरूरत ही नही पड़ती थी। उन मालाओ के भी अनेक भेद होते हैं; और उन्हे तोड़े की माला या दुहेरी माला आदि अनेक रूपो में स्त्रियाँ गूँथा करती हैं।

उस दिन रविवार था। वैसे तो प्रति दिन पाठशाला से छुट्टी मिलते ही हम सब फूल चुनने चले जाते और स्लेट-बस्ता आदि घर रखकर जो पहले दौड़ता हुआ वहाँ पहुँच जाता, उसी को अधिक फूल हाथ लग सकते थे; किन्तु रविवार को कौन कब जायगा इसका कुछ भी निश्चय नहीं था। इससे पहले वाले रविवार को लड़कों ने मेरे लिए एक भी फूल बाकी नहीं छोड़ा था। इसी लिए उस दिन मैंने निश्चय कर लिया कि आज मैं ही सब फूल चुन लाऊं। किन्तु इसके लिए जल्दी जाकर कलियां ही तोड़ लाने की योजना ठीक मालूम हुई। क्योंकि गुलबाँस के फूल चार बजने पर खिलने लगते और शाम तक पूरी तरह खिल जाते है। किन्तु मैंने फूल खिलने के पहले ही उन्हे तोड़ लाने का निश्चय कर लिया।

कड़ाके की धूप रहने पर भी मैं घर से निकल पड़ा। एक बड़ा-सा तौलिया साथ ले लिया था। उस समय यही कोई तीन बजे होंगे। सर्व प्रथम मैंने अपने पड़ौसी मास्टर साहब और गोविन्द शास्त्री के पिछवाड़े वाले गुलबाँस के पौधों की कलियां तोड़ी। इन कलियों को कोकण-प्रदेश में 'बुबे' कहते हैं। मैंने उन पौधों पर के सारे ही बुबे तोड लिये। इसके बाद घर आकर ताँबे के पात्र में पानी भर कर उसमें वे सब कलियां डाल दीं।

शाम को माता ने पुछा "क्यों श्यामू, आज फूल लेने नहीं गया? पिछले रविवार की तरह देर से जाने पर एक भी फूल न मिल सकेगा और तब तू रोता रह जायगा। माला के लिए न हुए तो हानि नहीं; परन्तु सन्ध्या समय की धूप-आरती के लिए तो कुछ फूल ले आ!"

"परन्तु मैं तो कभी से ले आया हू; क्या तू माला गूँथेगी?" मैंने पूछा।

इसपर माता ने कहा "अच्छा, तो कहां रखे हैं फूल! यहीं ले आ मैं यहां तुलसी के पास बैठ जाती हूं, जिससे घर में व्यर्थ कूड़ा न होने पावे।"

मैं वह ताम्रपात्र लेने गया। किन्तु उस समय तक भी कलियाँ अच्छी तरह खिली नहीं थीं; यह देखकर मैं एकदम निराश हो गया। फिर भी मैंने पुष्प-पात्र में रखकर उन्हें माता के सामने रख दिया।

"अरे, यह क्या? इनमें से तो पानी टपक रहा है! मालूम होता हैं सब कलियाँ ही तोड़ लाया था। तभी तो ये अच्छी तरह खिली नहीं।

श्यामू! इन्हे पौधे पर अच्छी तरह खिलने तो देता! ऐसा क्या पेटार्थी की तरह जल्दी से कलियो पर ही टूट पडा। " इस प्रकार माता मुझे समझा ही रही थी कि तब तक मास्टर साहब और शास्त्रीजी के घर के सब लडके-लड़की आ पहुँचे।

आते ही मनी ने कहा "तुम्हारा श्यामू सब फूल तोड लाया। हमारे लिए इसने एक भी फूल नहीं रहने दिया।"

और इसके बाद तत्काल ही बापू कहने लगा "क्यों रे श्याम! चोर की तरह तू कब जाकर ये सब फूल तोड लाया?"

इसपर मैंने कड़क कर कहा "इसमे चोर की तरह क्या हुआ? क्या मैं हमेशा तुम्हारे यहा फूल लेने नहीं आता?"

"परन्तु हमेशा तो हम सब साथ रहते हैं!"

"तो क्या, पिछले रविवार को देर हो जाने पर तुम लोगों ने मेरे लिए एक भी फूल रहने दिया था?"

यह सुन मनी ने कहा "पर मैं तो अपनी टोकरी मे से तुझे फूल दे ही रही थी; तू ही तो झुंझलाकर चला गया। और यह कह गया कि 'तुम लोग मेरे लिए क्यों नही ठहरे! अच्छी बात है, मैं भी देख लूगा।' सो वह बदला तूने आज इस रूप में चुकाया है, क्यों?"

मेरी माता इन सब बातो को चुपचाप सुन रही थी। उसने शान्त-भाव से कहा "मनी, बापू! यह लो तुम्हारे लिए फूल। अब फिर कभी श्याम ऐसा नही करेगा। क्यों श्यामू, नहीं करेगा न?"

इस प्रकार उन्हें समझाकर माता ने सब फूल दे दिये।

इसपर भोले छोटू ने कहा "श्यामू भैय्या, रोज की तरह शाम को फूल लेने अवश्य आते रहना, समझे। ऐसा न हो कि तुम रूठकर बैठ जाओ। बोलो अभी चलते हो क्या? हम अभी 'आँख मिचौनी धप्पामार' या 'इलायची डिब्बा आया, क्या क्या चीज लाया' इनमें से कोई खेल खेलेंगे! बोलो, क्या कहते हो?"

इस पर माता ने कहा "अरे अब तो देर हो गई है। कल खेलना!" यह सुन सब बच्चे चले गये। किन्तु मेरा चेहरा एकदम उतर गया। माता ने कहा "श्यामू। दूसरे के घर से बिना पूछे इस प्रकार कभी फूल नहीं

लाना चाहिए। इसके लिए पहले घरवालों से पूछ लेना चाहिए। यदि पहले भी पहुँच जाय तो उनको पुकार लेना चाहिए। किन्तु सब से बुरी बात है इस प्रकार मूक (बिना खिले) पुष्प तोडकर लाना ! फूलों के लिए तू अधीर तो हो गया, परतु तेरे पल्ले क्या पडा ? इसी लिए फिर कहती हूँ कि, फूलों को वृक्ष या पौधे पर अच्छी तरह खिलने देना चाहिए बाहर के पानी में कलियों को कितनी ही देर क्यों न रखा जाय, तो भी वे अच्छी तरह नहीं खिलतीं। क्योंकि जैसा मा के दूध से बच्चा पुष्ट होता है, वैसा ऊपरी दूध से नहीं हो सकता। घर के साधारण अन्न से शरीर जितना पुष्ट हो सकता है, उतना भोजनालय के घी-दूध से भी नहीं हो सकता। पौधे या वृक्ष भी एक प्रकार से फूलों की माता के समान ही होते हैं। वे कलियों को जीवन रस पिलाते रहते हैं और उनके मुखचन्द्र को विकसित देखकर गद्‌गद हो जाते हैं। उन (वृक्षों) के गोद में रह कर ही कलियाँ अच्छी तरह खिलती हैं। इस लिए फूल अच्छी तरह खिल जाय तभी उनको देव-पूजा के लिए लाना चाहिए। अपने देवता को यदि दो-चार फूल कम भी मिले तो हानि नहीं; क्योंकि छोटू के घर भी तो वे देवता को ही चढाये जायँगे। कहीं भी जायँ, वे पहुँचते तो देवता के ही पास है न ! यह नहीं सोचना चाहिए कि अपने ही घरके देवताओं के लिए सब फूल मिल जायँ ! यह बात देवता को भी कभी पसद नहीं होगी। देव-पूजा में तो सब को भाग लेने देना चाहिए। यदि भक्ति-भाव से उन्हें एक ही फूल चढ़ाया जाय तो वे प्रसन्न हो सकते हैं। किन्तु वह फूल अच्छी तरह खिला हुआ होना चाहिए।

मित्रो ! इस प्रकार असावधानी से तोडी हुई मूक (बद-कच्ची) कलियों के लिये माता को ही बुरा लग सकता है। जैसे माता अपने छोटे बच्चों को गोद में खिलाती और घर में पाल-पोसकर बाद में उन्हें संसार की सेवा के लिए दे डालती है, ठीक उसी तरह वृक्ष भी फूलों को जीवन रस पिलाकर विकसित करते और रस एवं गध-मय बनाकर विश्वभर की पूजा के लिए अर्पण करने को तैयार रहते हैं। किन्तु अधखिली या कच्ची कलियाँ तोड लेने से वे पूरी तरह नहीं खिल पातीं। इसी प्रकार अधूरे कामों का भी न तो विकास हो सकता है और न फल ही मिल सकता है।

संसार मे अधूरा कुछ भी ठीक नहीं कहा जा सकता। इस लिए जो कुछ भी किया जाय, वह ठीक तरह से और यथासांग पूरा किया जाय! देर हो जाय तो भी हानि नही। किन्तु कुछ भी उलटा-सीधा कर डालने से तो कुछ न करना ही अच्छा है। इसी लिए मेरी माता मुझ से कहा करती " श्याम! कच्ची (मूक) कलियों को कभी मत तोडना, समझे! उन्हे फूलने के लिए अवसर देना चाहिए: उन्हे फूलकर अपना उल्हास व्यक्त करने देना चाहिए।"

५ पुण्यात्मा यशवन्त

"उस दिन शनिवार था और एकादशी भी थी," इस प्रकार श्यामू ने अपनी कहानी का श्रीगणेश किया।

इसपर शिवराम ने कहा " जरा ठहरो भाई, बलवंत को आ जाने दो। कल वह बेचारा रोटी न खाकर भूखा ही आ गया था। "

" लो, वह आही गया। आ, बलवंत। इधर मेरे पास बैठ!" यों कहकर गोविन्द ने उसे अपने पास बैठाया।

श्याम ने फिर कहना आरंभ किया: वे बर्सात् के दिन थे। कोंकण-प्रदेश में हमेशा ही मुसलधार वर्षा होती है। उससमय जहां-तहा पानी के नाले जोरों से बहने लग जाते हैं। ऐसी ही वर्षा में एक दिन सिर पर पत्तों का छाता लगाये हमें सर्दी से काँपते हुए पाठशाला में जाना पड़ा। उस समय तक कोंकण-प्रदेश मे नये छातो का विशेष प्रचार नहीं हो पाया था। किन्तु इरली (पत्तों की बनी छतरी) बहुत सुन्दर होती थी। मेरा छोटा भाई कुछ अस्वस्थ-सा था, अतएव वह पढने नहीं गया। दादा और मै, दोनों ही साथ-साथ स्कूल गये।

हम पढ़ने चले तो गये; किन्तु इधर घर पर यशवत का दर्द एकदम बढ़ गया। वह पिछले दो दिन से नालगुद रोग (गुदासबंधी रोग) से पीडित था; किन्तु वह बीमारी अब दूर हो चुकी थी। आज तो दूसरा

ही दर्द उठ खड़ा हुआ था। सबेरे ही से उसके पेट में दर्द होने लगा और दो पहर को वह बहुत बढ़ गया। उसका पेट फूलने लगा और टट्टी-पेशाब दोनो ही बद हो गये! गॉव में डॉक्टर कहां से आता और एनिमा भी कैसे मिल सकता था? इसी लिए घरू इलाज चल रहा था। हमारा नौकर गोविन्द पाठशाला मे हमे बुलाने के लिए आया; क्योकि घर पर यशवन्त हमे "भैया! दादा!" पुकार-पुकार कर याद कर रहा था।

जब पाठशाला से हम घर पहुँचे तो वहा बडी भीड़ हो रही थी। गाँव के कुछ वैद्य हकीम भी आ गये थे। उनमें पीताम्बर दास और काशीनाथजी को मैं पहचानता था। छोटा भाई दर्द के मारे इधर से उधर लोट रहा था। पेट फूलता जाने पर भी उसे जोरो की प्यास लग रही थी। किन्तु उसे पानी नहीं दिया जा रहा था। इसी लिए वह लुढ़कता हुआ पानी के बर्तन की ओर जाता; और घरवाले फिरे उसे पकड़कर वहां से अलग ले जाते थे।

उस समय वह कोई छह वर्ष का होगा। पिछले दिन ही माता उसपर क्रुद्ध हुई थी। क्योंकि आंगन मे चने की दाल सूखने के लिए फैलाई थी। इस लिए जब बकरी आकर दाल खाने लगी तो यशवत ने उसे भगाया। कन्तु बकरी ने दाल मे मुँह मारकर उसे बिखेर दिया था, इस लिए यशवन्त उसे समेट कर इकट्ठी कर रहा था। इतने ही में दादी ने उसे देखा और चिल्लाकर कहा "दाल खा रहा है रे चोर! और फिर किसी को मालूम न होने देने के लिए समेटकर ठीक कर रहा हैं; क्यो? बहुत होशियार हो गया है रे!"

"नही दादी, मैं दाल नहीं खा रहा था। तू व्यर्थ ही मुझ पर दोष लगाती है।" इस प्रकार रुआसा हो कर यशवन्त ने कहा।

उस समय माता जोड़ो के दर्द (गठिया) से घर में बीमार पड़ी थी। वह चल- फिर नहीं सकती थी, क्योंकि बहुत ही निर्बल हो गई थी। हमेशा वह कोठरी मे पड़ी रहती थी। अतः जब यशवन्त घर में माँ के पास गया तो वह भी उस पर नाराज हुई, और बोली "क्योंरे! तू चुरा कर दाल खा रहा था? तुझे कितनी बार कहा कि किसी वस्तु को हाथ मत लगाया कर! किन्त तू नहीं मानता. क्यों?"

"नहीं माँ, मैं ईश्वर की सौगन्ध खा कर कहता हूं कि मैंने दाल नहीं खाई ! क्यों व्यर्थ के लिए तुम सब लोग मुझ पर झूठा दोष लगाते हो।" यों कहता हुआ यशवत बाहर जाकर आम के पेड़ के नीचे बैठ रोने लगा।

पिछले दिन ही यह घटना हुई थी; किन्तु आज तो वह मृत्यु के द्वार पर पडा हुआ था। सत्य की परीक्षा मृत्यु के दरबार में ही हुआ करती है। तब क्या यशवत भी वहीं अपने अपराध का निर्णय कराने जा रहा था? उसके दिल को ऐसी चोट लगी थी?

यशवन्त के बचने की कोई आशा नहीं रही। नौ बजे के लगभग तो उसका दर्द बहुत ही बढ़ गया। उसने अत्यन्त क्षीण स्वर में कहा "माँ! कहा है माँ? मुझे माँ के पास ले चलो!"

यह सुनते ही माँ ने कहा "यहीं हू बेटा! तू मेरे पास ही तो है!'

निर्बल और रोगिणी माता ने मरणोन्मुख पुत्र यशवन्त का सिर अपनी गोद में ले लिया। उसके नेत्रों में आँसू आगये!

यशवन्त ने अत्यन्त क्षीण-स्वर में कहा "माँ, मेरा सिर नीचे रख दे, तेरे पाँव दूखने लगेगे। तेरे सारे जोडों में ही दर्द होता है!"

माता का हृदय भर आया और उसने आर्द्र-स्वर में कहा "नहीं बेटा, मेरे जोडों में कोई दर्द नहीं होता, मुझे कुछ नहीं हो सकता। बच्चे के कष्ट के सामने माँ का दर्द नहीं टिक सकता। बच्चे को अच्छा करने के लिए माता के शरीर में न जाने कहा से शक्ति आ जाती है। मेरी जाघ तो नहीं दुखती; किन्तु तेरे ही शरीर में मेरी ये सूखी हड्डियाँ चुभती होंगी। घबरा मत बेटा, तू अच्छा हो जायगा; तेरे पेट का दर्द मिट जायगा!"

माता की ओर अन्तिम प्रेम भरी दृष्टि से देखते हुए उसका हाथ अपने हाथ में लेकर यशवन्त ने कहा "माँ, तू तो बस मेरे ही पास बैठी रह। मेरे लिए और कुछ नहीं चाहिए। तेरा यहां बैठना ही बस है!"

यशवन्त का एक-एक शब्द माता के ही साथ-साथ हम सब के हृदयों को चीर रहा था। उसी समय माता को पिछले दिन की घटना का स्मरण हो आया। तत्काल ही उसकी आँखों में आँसू झलकने लगे।

हृदय भर आया और उसने एकदम उस मरणोन्मुख बालक का मुँह चूम लिया। उस मलीन होते हुए मुख-कमल पर उसने अश्रुसिंचन किया। उसी क्षण यशवन्त ने भी प्रेमपूर्ण नेत्रों को खोलकर अत्यत भक्ति और स्नेह-पूर्वक माता की ओर देखा।

इसके थोडी ही देर बाद हमारा यशवन्त 'राम-राम' कहता हुआ हमें छोडकर राम की शरणमें चला गया।

माता हमेशा कहा करती "यशवन्त पुण्यात्मा था, इसी लिए वह एकादशी के दिन भगवान के घर गया।" बचपन मे हम आकाश की ओर देखते हुए एक दूसरे से कहा करते "देखो, वह छोटा-सा तारा यशवन्त का होगा!" क्योंकि पिताजी हमें यह बतलाया करते थे कि आकाश में पुण्यात्मा पुरुषो के तारे होते हैं। और यह बात हमे भी यथार्थ जान पडती थी।

आज यशवन्त भी नही रहा और माता भी नहीं। किन्तु उस मृत्यु के समय का उनका वह प्रेम अमर है। ऐसा अच्छा भैया पाकर और ऐसी महान् माता का पुत्र कहला कर मैं आज भी अपने को धन्य समझता हू। मैं उनके नख की भी बराबरी नही कर सकता। उनके सामने तो मैं अत्यन्त पामर, तुच्छ जीव भी सिद्ध नहीं होता। किन्तु इतने पर भी यदि मुझ मे कोई अच्छाई या प्रेम का अंश हो; तो उसका सारा श्रेय उस मातृनिष्ठ और सत्वनिष्ठ भैया एव बच्चों के शील-स्वभाव की रक्षा करनेवाली माता को ही मिल सकता है। ऐसी माता और ऐसा भाई पाने के लिए पूर्व सुकृत की आवश्यकता होती है। विपुलता और सुकृत की पूंजी पास मे होनी चाहिए। जिस प्रकार सत्सगति प्राप्त होने में पुण्य-शीलता आवश्यक होती है, उसी प्रकार महान् माता-पिता और श्रेष्ठ बधु-भगिनी की प्राप्ति भी पुण्यबल से ही हो सकती है! किन्तु मैं नहीं समझता कि मेरी पूजी मे ऐसा कोई पुण्य-बल सचित था। मैं तो इसे उस परमात्मा की कृपा का ही उपहार समझता हू।"

६ मथुरिया

आज श्याम की तबीयत कुछ ठीक नहीं थी; इसलिए राम ने कहा "भैया, यदि आज कहानी नहीं भी सुनाई तो कोई हानि नहीं, तुम जरा चुपचाप लेटे रहो; तो अच्छा होगा।"

"अरे माता का स्मरण तो मेरे लिए सकल दुःखहारी अमृत के तुल्य है। जिस प्रकार भक्त को अपने इष्ट-देव का स्मरण होते ही उसके समस्त क्लेश दूर हो जाते है, वैसे ही माता का स्मरण होने पर मेरे सब दुख-दर्द चले जाते हैं। आज मुझे माता की एक बहुत ही सुन्दर घटना का स्मरण हो आया है, बैठ जाओ सब।" यों कहकर श्याम ने शुरूआत की :—

मित्रो! मनुष्य भले ही गरीब हो और प्रकट में वह दरिद्री भी हो; तो भी उसे मन से तो श्रीमान होना ही चाहिये। संसार के अधिक-तर दुःख हृदय की दरिद्रता के ही कारण उत्पन्न हुए हैं। भारतवर्ष की बाहरी सम्पत्ति भले ही दुनिया के लोग छीन ले, किन्तु भारतीय-हृदय की महान् और अटूट सम्पत्ति यदि बनी रहे; तो इतना ही हमारे लिए बहुत है।

हमारे यहां मथुरी नाम की एक धान कूटनेवाली औरत थी। कोंकण के प्रत्येक घर में बडे-बडे ऊँखल गडे रहते हैं और प्रायः प्रत्येक घर में धान भी भरा होता है। इसी धान को कूट-खांडकर चावल तैयार किया जाता है। इस काम को करनेवाली स्त्रियॉ 'धनकुट्टी' या "धान कूटने वाली" कहलाती हैं। प्रत्येक घर की धनकुट्टियाँ पहले से ही निश्चित रहती हैं। और वे वंश-परम्परागत यह काम करती चली आती हैं। मानों यह उनकी अधिकार-वृत्ति या जागीर ही न हो। हमारे घर की भी मथुरी गजरी और लक्ष्मी आदि दो-तीन धान कूटनेवाली औरतें थीं। मथुरी का लडका शिवराम भी हमारे ही घर काम करता था। वह छोटा-सा नौकर यही कोई दस-बारह वर्ष का होगा।

मथुरी गर्मी के दिनो में हमे पके हुए काले करौंदे, आडू आदि लाकर दिया करती थी। पके हुए काले-स्याह करौंदे गरीब कोंकण-प्रदेश के लिए अंगूर जैसे-ही हो सकते हैं। इसी प्रकार आडू भी बड़ा मधुर फल होता है

इसका रंग जर्दिया होता है और भीतर से मोटे बीज निकलते हैं। मथुरी के घर के आँगन में ही आडू का पेड़ था; और उसके फल बहुत मीठे होते थे। गरीब आदमी सदैव ही उपकृत—अहसानमन्द—होते हैं; और कभी फूल-पत्ते देकर तो कभी फल आदि भेट करके वे कृतज्ञता प्रकट किया करते हैं। कृतज्ञता-बुद्धि या उपकार मानने जैसी महान् और श्रेष्ठ वृत्ति इस पृथ्वी पर दूसरी नही हो सकती।

"क्योरी गजरी, आज मथुरी धान कूटने नहीं आई? और तेरे साथ यह दूसरी कौन है?" माता ने पूछा। इसपर गजरी ने उत्तर दिया "उसे बुखार आगया है; इस लिए उसने इस चंद्री को भेजा है।"

स्वतः यदि काम पर न जा सके; तो अपने बदले दूसरे किसी को भेज कर उस काम मे रुकावट न पडने देने की कर्तव्य-बुद्धि उस गरीब मजदूरनी में भी थी। "तो क्या उसे बहुत जोर का बुखार आया है?" माता ने फिर पूछा। इतने ही मे मथुरी का लड़का शिवराम आगया और कहने लगा "अम्माजी, मेरी माँ को बुखार आगया है; जब वह अच्छी हो जायगी तब काम करने आवेगी। इस लिए तब तक उसकी जगह यह चंद्री आकर काम करेगी!" माता ने कहा "अच्छी बात है।" उधर शिवराम अपना काम करने चल दिया। खांडनेवाली मजदूरनियो ने धान तौलकर ले लिया और कपडे लेकर धोने के लिए कुएं पर चली गईं। दो-पहर को बारह एक बजे तक हमारे घर सब लोग भोजन से निपटे: और इसके बाद शिवराम भी पूछकर घर जाने लगा। माता ने पूछा "तूने ढोरो को पानी पिला दिया? और गोबर आदि भी साफ कर दिया या नहीं? नहीं तो, पशु पैरो से रोंदकर उसीमे बैठ जायँगे! सबके लिए घास भी डाल देना, समझा!"

इसपर शिवराम ने कहा "सब कुछ करदिया, अब मैं घर जाता हूं।" माता ने कहा "ठहर शिवराम, जरा यहाँ खडा रह।" यो कहकर वह भीतर गई और केले के पत्ते पर गरम भात एव नीबू के अचार का एक टुकड़ा तथा छोटी सी पतीली मे छाछ लाकर उसे देते हुए कहा "ले, यह तेरी माँ के लिए है। कहना, झटपट अच्छी हो जा।" इसके बाद माता घर में चली गई। शिवराम ने भी उस पत्ते-सहित भात को रूमाल मे बांध लिया और हात मे पतीली उठाकर वह घर चला गया।

संध्या हो चुकी थी। स्कूल की छुट्टी भी होगई थी। हम सब घर पर उस समय गिन्ती की मुहारनी (पहाड़ों की आवृत्ति) बोल रहे थे। माता ने गजरी से कहा "अरी, उस समई को भूसे से मांजकर अच्छी तरह साफ चमकीली कर दे।" हमारे घर मे रात को देवता के सम्मुख अखड नंदादीप जलता था। धान कूटने की जिस की पारी हो, उस दिन उसीको समई भी साफ करनी पड़ती थी। धान की भूसी से पोंछने पर समई बिल्कुल साफ हो जाती है। इधर गजरी समई साफ करने लगी, उधर माता ने चावल का तौल किया। इसके बाद टूटे हुए चावलो की कनी और सूप से फटकते हुए जो बारीक भूसा निकाला; वह उन मजदूरनियो को दिया गया और वे घर चल दी।

शिवराम ने वृक्षों को पानी सींचा और भैसो का दूध दुहा। माता ने गाय का दूध निकाला और इसके बाद शिवराम घर जाने को तैयार हुआ। इधर माता ने मुझे शाम को 'घास की चाय' लाने को कहा था; सो वह चाय और तुलसी के पास मिट्टी मे गडे हुए अद्रक का एक टुकडा निकाल कर उसने शिवराम को देते हुए कहा "शिवराम! ले, यह घास की चाय और अद्रक का टुकड़ा! घर ले जा कर इनका काढ़ा तैयार कर लेना। उसमें चार दान धनिये के और एक पीपल का पत्ता भी डाल देना और गरम गरम तेरी माँ को पिला देना। इसके बाद अच्छी तरह कम्बल उढाकर सुलाने से पसीना आकर शरीर हल्का हो जायगा। अरे, जरा ठहर. दो टुकडे मिश्री के भी लेता जा।" यों कहकर माता फिर घर में गई और दो टुकडे मिश्री के ला दिये। शिवराम यह सब सामग्री लेकर घर चल दिया।

घर पर मथुरी ने पूछा "शिवराम! यह सब किसने दिया?" उसने उत्तर में कहा "श्याम भैया की माँ ने!"

मथुरी बोली "वह साक्षात् देवी हैं, माँ लक्ष्मी का अवतार हैं। उन्हे सब की चिन्ता है।" इसके बाद उसने सोते समय वह काढ़ा पिया; किन्तु फिर भी उसे पसीना नहीं आया और न उसका बुखार ही उतरा। सबेरे फिर यथा समय शिवराम काम पर आ पहुँचा। माता ने उससे पूछा "क्योंरे! कैसी है तेरी माँ की तबीयत?"

वह बोला "सिर बहुत दूखता है, दिन-भर उसे बड़ी बेचैनी रही। बेचारी को रात-भर नींद नहीं आई और वह सिर को हाथ से थामे हुए बैठी है!"

"अच्छा, आज दो-पहर को तू जब घर जायगा, तो मैं सोंठ और सांभर का सींग दूगी। उन्हे घिसकर अच्छी तरह लेप करने से जरूर सिर का दर्द मिट जायगा"। माता ने कहा।

इसके बाद सब लोग अपने-अपने काम में जुट गये। शिवराम गौशाला झाड़-बुहारकर गोबर के उपले थापने लगा। माता शाक-पत्रादि ठीक करने लगी।

दो-पहर को फिर शिवराम थोड़ा-सा गरम भात और नीबू के अचार का टुकडा लेकर घर चला। साथ ही उसे सौंठ और सांबर का सींग भी माता ने लाकर दे दिया था। कहते हैं कि सांभर का सीग दवाई की तरह होता है। सौंठ, बच और सांभर का सींग तीनों को घिस-कर चंदन की तरह कपाल पर गाढ़ा लेप करने से सिर-दर्द दूर हो जाता है। इसी प्रकार शरीर में अन्य किसी जगह दर्द होने पर भी इसका लेप करते हैं।

कुछ दिन के बाद मथुरी अच्छी हो गई; किन्तु वह बहुत ही दुबली और कमजोर हो गई थी। फिर भी गरीब बेचारी काम पर आने लगी। वह कोई पंद्रह-बीस दिन काम पर नही आ सकी थी। इस लिए उसे आते देखकर माता ने कहा "मथुरी! तू कितनी दुबली हो गई! अरी, तुझसे धान कैसे कूटा जायगा?"

मथुरी ने कहा "यों ही उठते-बैठते अपना काम पूरा करूगी, माँ! इतने दिन बिस्तर पर पड़े-पड़े खाया! कबतक ऐसी पड़ी रहती? बच गई, यही बहुत हुआ। अब चलने-फिरने लगी हूं तो आठ-चार दिन में फिर काम करने लायक मजबूत हो जाऊगी। तुम्हारे जैसी माता की माया ममता रहने पर हमारे लिए किस बात की कमी है!"

माता ने कहा "अरी, यह सब परमेश्वर की ही कृपा है। तुम-हम कहां तक एक-दूसरी का साथ दे सकती हैं! खैर। देख, बच्चों के लिए भात तैयार हो चुका है, इस लिए उनके साथ तू भी दो-चार ग्रास

खा ले, जिससे शरीर में थोड़ी-सी शक्ति आ जाय। इसके बाद दो-पहर को भी यही पेटभर खाना, समझी!"

इस प्रकार माता की आज्ञानुसार उस दिन मथुरी ने भी हमारे साथ ही सबेरे का नाश्ता (अल्पाहार) किया। उस समय उसके मुँह पर कितनी कृतज्ञता प्रकट हो रही थी!

वह मथुरी अब बूढ़ी हो गई हैं। मैं जब कभी कोंकण में घर जाता हूं तो अवश्य ही मथुरी से मिलता हूं। उसके चेहरे पर झुर्रियाँ पड गई हैं; किन्तु फिर भी उसमें एक प्रकार की प्रसन्नता और वात्सल्य-भावना प्रत्यक्ष दिखलाई देती है। मैं जाकर जब उसे प्रणाम करता हू तो वह कहने लगती है "अरे, यह क्या करता है श्याम भैया।" उसे मेरी माता का स्मरण हो आता है और वह कहने लगती है "श्याम, यदि आज तेरी माँ होती तो, कभी तुझे इस तरह अकेला मस्त न रहने देती। तेरा विवाह करती और घर-गृहस्थी का ढंग जमाती। परन्तु बेचारी बीच में ही चली गई। सभी-पर उसका प्रेम था।"

ऐसी प्रेममयी दयालु माता मुझे प्राप्त हुई थी।

७ कीमती आँसू

"बचपन से ही मुझे दोनों समय स्नान करने की आदत है।"

इन शब्दों के साथ श्यामू ने कहानी की शुरूआत की। शाम को मैं खेलने जाया करता था। लुका-छिपी, लंगड-घुच्ची, पकड़ा-पाटी, इलायची डिब्बा, खो-खो, आँख-मिचौनी, धप्पामार, आदि अनेक प्रकार के खेल हम खेला करते। खेलकर आने के बाद मैं स्नान करता। माता मेरे लिए पानी गर्म रख देती। वह गगाल (स्नान के लिए जल-पात्र) में पानी भर कर मेरे हाथ-पाँव तथा शरीर को मलकर साफ कर देती थी। इस प्रकार दोनो वक्त स्नान करने की रीति बहुत अच्छी होती है। रात को सोने से पहले स्नान हो जाने से शरीर स्वच्छ, निर्मल

और हलका रहता है। सोने से पहले हम जो प्रार्थना करते हैं वह मन का स्नान है। इस प्रकार शरीर और मन दोनों स्वच्छ होने से कैसी गहरी नींद आती है, इसे अनुभवी ही जान सकते हैं।

एक दिन मैं सदैव की तरह खेलकर घर वापस आया। कुर्ता खोलकर मैंने चोटी मे तेल-भरी उंगली लगाई और स्नान की शिला पर जा बैठा। स्नान के लिए आँगन में एक बहुत बडी शिला रखी थी और वहाँ से स्नान का सब पानी तुरई (सब्जी) की बेलो मे चला जाता था। सायकाल के लिए अधिक पानी की आवश्यकता नही होती। माता ने मेरे शरीर को मलकर बिल्कुल साफ कर दिया था। बचा हुआ पानी मैं अपने शरीर पर डालने लगा। पानी समाप्त होते ही मैंने माता को पुकारना आरंभ किया।

" माँ, मेरा शरीर पोंछ दे! पानी सब समाप्त हो गया। ठण्ड लग रही है। झटपट शरीर पोंछ दे।" इस प्रकार मैं चिल्ला रहा था। उस समय तक टॉवेल या पचे (अगोछे) आदि का हमारे गाव मे विशेष प्रचार नही हुआ था। घर के बडे-बूढे धोती का ही एक सिरा निचोड कर उससे बदन पोंछ लेते थे। बच्चो के बदन पोंछने के लिए एक-आध पुराना कपडा काम मे लाया जाता था। किन्तु संध्या-समय तो माता प्राय: अपनी साडी के ही पल्ले से मेरा बदन पोंछ दिया करती था।

मेरी आवाज सुनकर माता आई और उसने अपनी साडी के पल्ले से ही मेरा बदन पोंछते हुए कहा " जाकर झट देवता पर के फूल हटा दे।" इसपर मैंने कहा " किन्तु मेरे पैर के तलवे तो अभी गीले ही हैं, उनपर मिट्टी नहीं लग जायगी? इस लिए पहले मेरे तलवे पोंछ।"

यह सुन माता न झल्लाकर कहा " पाँव के तलवे गीले होने से क्या बिगड गया! उन्हे मैं किस चीज से पोंछू!"

" तेरा पल्ला इस शिला पर फैलाकर रख; तो उसपर मैं अपने पाँव रखकर पोंछ लूगा और कूदकर घर मे चला जाऊंगा। मुझे गीले पैर मे मिट्टी लगने देना अच्छा नही लगता। फैला, झटपट तेरी साडी का पल्ला।" इस प्रकार मै हठ करने लगा।

" श्यामू, तू बडा हठी है। एक-एक नई बात न जाने कहा से सीख

कर आता है। ला, रख पाँव और जा घर में!" यों कहकर माता ने अपना अंचल पसार दिया; और मैंने उसपर अच्छी तरह पाँव रखकर तलवे पोंछ लिये। इसके बाद मैं कूदकर घर में चला गया। माता की साड़ी भीग जाने की मुझे कोई चिंता नहीं थी; और वह भी उसे उसी समय कैसे बदल सकती थी? किन्तु फिर भी अपने पुत्र की–पैर के तलवे में मिट्टी न लगने देने की–इच्छा-हठ-पूरी करने के लिए उसने अपनी साड़ी का पल्ला गीला कर लिया। वह बेचारी अपने पुत्र के लिए क्या न करती? कितना कष्ट न सहती और क्या न दे डालती?

मै घर में जाकर देवता पर के फूल उठाकर नीचे रखने लगा। इतने मे माँ नीरांजन (आरती) ले कर आई और कहने लगी "श्याम; तू पाँव के तले में मिट्टी न लगने देने की जितनी सावधानी रखता है, उतनी ही मन को मैल न लगने देने का भी तो ध्यान रख, और देवता से प्रार्थना कर कि वह तुझे शुद्ध बुद्धि दे।"

मित्रो! ये कितने महत्त्वपूर्ण शब्द हैं। हम अपने शरीर और कपड़ों को शुद्ध रखने लिये कितना प्रयत्न करते और कहां तक की चिंता रखते है! कपड़े धोने के लिए धोबी हैं, बूट-जूते साफ रखने के लिए, पालिश करने-वाले हैं और शरीर पर लगाने के लिए खस एवं चन्दन के साबुन मौजूद हैं। ये सारे ही प्रयत्न शरीर और कपडे को मैल न लगने देने के लिए है; किन्तु मन को मैला न होने देने के लिए हम कहां तक सावधान रहते हैं? देवालय को कलई से पोतकर या रग लगा कर हम सुदर बनाते हैं, परतु बेचारे देवता की सुध भी नहीं लेते! क्या मन मैला हो जाने पर भी हम कभी दुखी होते या रोते हैं? अपने मन के मैला होने पर रोनेवाला भाग्यवान विरला ही होता है। वे श्रेष्ठ आँसू इस ससार मे नहीं दिखाई देते। अन्न-वस्त्र या नौकरी-चाकरी अथवा दुःख-सकट, हानि, मृत्यु आदि के लिए तो सब रोते हैं और इन सब बातों के लिए, उनकी आँखो में आँसू के कुण्ड-से भरे रहते हैं; किन्तु कभी कोई इस बात के लिए भी विकल होता है कि 'मैं अभी तक शुद्ध–निष्पाप–नहीं हुआ?" अथवा यह सोचकर भी कितने आदमियों को दुःख होता है कि अभी तक हमारा मन दुर्वासनाओं के मैल में डूबा हुआ है। मीराबाई ने कहा है:—

" अँसुवन जल सींच-सींच प्रेम बेल बोई। "

अर्थात् आँसुओं के जल से सींच कर मैंने प्रेम-ईश्वर-भक्ति की बेल को बढ़ाया है। महासाध्वी मीरा का वह पद मैं कितनी ही बार गुनगुनाता रहा हूं; और उस समय प्रायः मेरे अश्रु से परिपूर्ण हृदय में भक्तिरूपी कमल उत्पन्न होता रहा है!

८ पवित्र पत्तल

"कोंकण के अधिकांश घरों में पत्तल पर भोजन करने की प्रथा है। सादगी में भी अत्यधिक सुन्दरता और स्वच्छता होती है। थालियों में प्रति दो-तीन महिने में कलई करवाइये, और धीरे-धीरे उसे अपने पेट में पहुँचा दीजिये? कितनी गदगी है! मेरे पिता को भी पत्तल पर भोजन करना ही अधिक प्रिय था। इसमें स्त्रियों की झझट भी कम हो जाती है। अर्थात् उन्हे जूठी थालियाँ मांजकर साफ नहीं करनी पडतीं। पिताजी सवेरे ही खेत पर चले जाते और इधर-उधर से घूमकर देखरेख करने के बाद दस बजे के लगभग वापस घर लौट आते थे। घर आते समय वे फूल-बेलपत्र एवं पत्तल के लिए पत्ते भी ले आते थे। इसी प्रकार यदि कोई किसान लाकर दे देता; या खेत की मेड पर लगी होती तो शाकभाजी भी ले आते थे इसके बाद स्नान कर के वे संध्या-वंदन के लिए बैठते। इधर तबतक हम पाठशाला से आकर पत्तल-दोने बनाने लग जाते थे। ताजे पत्तों की ताजी हरी पत्तल और उन्हीं पत्तों के दोने! मैं अच्छी पत्तल बनाना नहीं जानता था। और दोने बनाना तो मुझे बिलकुल आता ही न था। हमारे कोंकण में कहावत है—"पत्रावळी आधी द्रोणा। तो जांवई शहाणा" अर्थात् पत्तल बनाने से पहले जिसे उससे भी कठिन दोने बनाना आ जाता है, वही जामाता चतुर कहलाता है। घर में सभी पत्तलें बनाते थे। कभी-कभी दादी कह देती कि हरएक को पांच-पांच पत्तलें बनाना होगा और उसी हिसाब से वह पत्ते बाँट देती थी। कई प्रकार के पत्तों की

पत्तलें बनाई जाती थी। बड़, पलास, कुटज, धावड, भोंकर (कोंकण के वृक्ष-विशेष) के गोल पत्तों एवं सफेद चंपे के पत्ते तक की पत्तलें बनाई जाती थीं। श्राद्ध के लिए महुए के पत्ते की पत्तलें भी कोई-कोई विशेष रूप से काम में लाता है। चातुर्मास (चौमासे) में स्त्रियाँ आम या कटहल के पत्तो की पत्तल पर भोजन करने का भी व्रत लेती हैं। इस प्रकार कोंकण में पत्तल को धार्मिक-सस्कृति में स्थान दिया गया है। वृक्षों और उनके उपयोगी पत्तो की यह कितनी महत्ता है! हां, तो एक दिन माता ने मुझे चेतावनी दी कि 'श्याम, तू पत्तल बनाना सीख ले; नहीं तो आज तुझे खाने को नही मिलेगा।'

इसपर मैंने गुस्से कह दिया "मुझे पत्तल बनाना नहीं आता और न मैं बनाऊंगा ही।" मेरी बहन उन दिनों मायके मे आई हुई थी वह बोली "श्याम! इधर आ, मैं तुझे सिखलाती हू। अरे! इसमें कौन कठिन काम है!"

"मुझे नहीं सीखना है, जा।" यो कह कर मैंने उद्दडता से उस प्रेममयी बहन को उत्तर दे डाला। मेरी जीजी बहुत सुन्दर पत्तल बनाया करती थी। इसी प्रकार मेरे पिता भी गॉव-भर मे पत्तल-दोने बनाने के लिए प्रसिद्ध थे। हमारे गाँव मे रामभट्टजी नाम के एक व्यक्ति थे, उनके लिए तो यह कहावत ही प्रसिद्ध हो गई थी कि, जो भी पत्ता हाथ मे आ जाय उसी को लेकर वे सींक से टोंचने लग जाते हैं! वे इस बात का विचार नहीं करते कि, हमेशा अच्छा ही पत्ता होना चाहिए, अथवा अमुक पत्ता यहां अच्छा नहीं लगेगा। कैसा ही पत्ता क्यो न हो; रामभट्टजी की पत्तल मे उसे अवश्य स्थान मिल जाता था। किसी के यहां, यज्ञोपवीत या विवाह अथवा अन्य किसी अवसर पर भोजनादि का अयोजन होता तो गॉव के लोग उन्ही के घर एकत्रित होकर पत्तले बनाया करते। इस प्रकार गपशप लड़ाते हुए परस्पर सहयोग से काम पूरा कर लिया जाता था। किन्तु अब तो यह प्रथा ही लुप्त होती जा रही है। इस प्रकार यह पत्तल बनाने की परम्परा मेरे लिए सीखना परम आवश्यक था, किन्तु मैं तो था हठीला; इस लिए उस दिन मैंने किसी से भी पत्तल बनाना नही सीखा।

किन्तु मेरा हठ देखकर माता ने भी मुझे भोजन नही परोसा। क्योंकि

उस दिन यह निश्चय हो चुका था कि 'हर एक आदमी अपनी-अपनी बनाई पत्तल लेकर बैठे !' इस लिए मेरी कोई पत्तल न होने से सब लोग हँसने लगे ! किन्तु जीजी मेरे लिए अदला-बदली करने लगी । उसने कहा "कल बनावेगा पत्तल, क्यों श्याम ! कल अवश्य मुझ से सीख लेना हो भैया !" इसके बाद वह माता से कहने लगी "माँ वह कल सीख लेगा; आज इस पत्तल पर ही उसे परोस दे।" किन्तु मैं तो इतने पर भी एरंड की तरह ही फूल रहा था । इस लिए गुस्से में यों कहता हुआ बाहर चल दिया कि "जाओ, मैं पत्तल नहीं बनाऊगा । मत परोसो मुझे भोजन ! मेरे जूते को भी गरज नहीं पड़ी है ! मैं योंही भूखा रह जाऊगा।" किन्तु पेट मे भूख जोरों से लग रही थी । फिर भी मैं इस प्रतीक्षा में था कि देखूं और भी कोई मुझे समझाने के लिए आता है या नहीं ? अत में मेरी वही अच्छी जीजी, फिर मेरे पास आई और कहने लगी "श्याम भैया ! चल, भोजन कर ले ! कल सुसराल चली जाने पर मैं फिर थोड़े ही तुझे समझाने आऊगी ! उठ, चल ! छोटी–सी तीन पत्ते की पत्तल बनाले और उसपर भात रखवाकर भोजन करने बैठ जा। कोकण मे तीन पत्ते की पत्तल ठिकोला, चार पत्तेवाली चौफुली और पलाश के बड़े गोल पत्तों की बनी हुई गोल पत्तल घेरदार कहलाती है। यदि पत्ता अच्छा और बड़ा होता तो वही हमारे लिए पत्तल का काम दे देता और उस एक ही पत्ते पर हम बच्चे भोजन कर लेते थे। किन्तु पिताजी को ऐसी छोटी पत्तलें पसन्द नहीं थीं। वे तो हमेशा अच्छी, बड़ी और गोल घेरदार पत्तल पर ही भोजन करते और कहा करते कि "जंगल मे पत्तों की क्या कमी है; जितने चाहिए मिल सकते हैं। तब फिर क्यों इसमें काट-छांट की जाय ? शास्त्र में भी कहा है 'विस्तीर्ण पात्रे भोजनम्' अर्थात् भोजन के लिए बड़ा पात्र या पत्तल होना चाहिए।"

जीजी के उन मर्म-पूर्ण शब्दों से मैं पसीजा और सोचने लगा "सच है, बेचारी सुसराल चली जाने पर कहां रूठे हुए भाई को मनाने आवेगी ! दो दिन के लिए तो आई है; इतने पर भी मैं अबतक उसके साथ ठीक तरह से नहीं बरता।" मुझे अपने हठ पर बहुत बुरा लगा और आँखों में आँसू आ गये। किन्तु उसी क्षण जीजी ने लाकर मेरे हाथ

-म दो पत्ते दिये और कहा " इस एक को नीचे पैंदे मे लगा दे।" मैंने हाथ में एक सींक ली और उसका एक-एक टुकड़ा उन दोनों पत्तो के कोने पर लगा दिया। किन्तु वह सीक बहुत लचीली होने से टूटती नहीं थी: इस लिए जीजी ने दूसरी सींक देते हुए कहा "श्याम! ले यह दूसरी सीक! यह अच्छी है।" इसके बाद जैसे-तैसे मैंने तीन पत्तों में छोटी-मोटी सीके लगा कर पत्तल तैयार की और उसे लेकर घर मे गया। जाते ही मैंने माता से कहा "ले यह मेरी पत्तल! अब तो परोस मुझे!

इसपर माता ने पूछा "सो तो ठीक, परतु तूने हाथ-पाँव भी धोये?" मैंने कहा "कभी मे धो लिए हैं। मैं कोई गन्दा लड़का थोडे ही हू।

"हां, गन्दा तो नहीं है, परतु सू सूं तो कर रहा है! जा, पहले नाक अच्छी तरह साफ कर के आ! तब तक मैं पत्तल परोसती हूं" माता ने कहा।

मैं बाहर जाकर नाक साफ कर आया और हाथ धो कर भोजन करने लगा। उस समय माता ने कहा "अच्छी तरह पेट भरकर खा ले! व्यर्थ ही हठ करता है! देख, वह पड़ौसी वासुदेव, कितना छोटा है; परतु ऐसी सुन्दर पत्तल बनाता है कि देखते ही रहो।"

किन्तु मैं गुस्से के आवेश में जल्दी भोजन कर रहा था। मैंने वह पत्तल भी जल्दी मे बनाई थी; इस लिए उसकी एक सीक निकल कर भात के साथ मेरे गले में अटक गई। मैं घबराया और जैसे-तैसे उसे बाहर निकालते हुए गुस्से मे ही माता से कहा "सींक के टुकडे तक गले मे चले जाते हैं; फिर भी कहती है, तू ही पत्तल बना कर ला। मुझे बनाना नहीं आता, किन्तु फिर भी कहती है तुझे ही बनानी पड़ेगी!"

पर माता ने उसी प्रकार उत्तर दिया " हमारे गले में तो नहीं जाती, तूने ला-पर्वाही से सींक लगाई होगी, उसीका यह दंड तुझे भोगना पडा। जबतक तू अच्छी पत्तल नही बनाने लगेगा, तबतक मैं तेरी ही बनाई हुई पत्तल पर भोजन परोसूगी, दूसरी पर कदापि नहीं।"

फलतः दूसरे ही दिन से मैंने अच्छी पत्तल बनाने का निश्चय किया और यह देखने लगा कि जीजी किस प्रकार पत्तल बनाती हैं। दो पत्तों में

कभी तह डालनी हो या मोडकर कोना बनाना हो; तो सींक किस प्रकार लगाती है। क्योंकि कई पत्तलो मे मोडकर पत्ते लगाने पडते हैं। अतः यदि किसी को अपने से कोई बात अधिक अच्छी तरह आती हो; तो अवश्य उसके पास जाकर वह बात सीख लेना चाहिये। इसमे व्यर्थ अभिमान नहीं करना चाहिए। क्योंकि प्रत्येक काम अच्छी तरह होना उचित है। मन में हमेशा यही विचार रहना चाहिए कि, मैं जो कुछ करूगा, वह अच्छा ही करूंगा। भले ही वह पत्तल बनाने का काम हो या ग्रंथ-लेखन का, अथवा झाड़ू लगाने का हो या दूकान सजाने का। मेरे पिता मे यह गुण विद्यमान था। वे जब धुले हुए कपडो को बांस पर सूखने के लिए डालते तो उन्हे भी एक सीध मे व्यवस्थित-रूप से ही डालते थे। एक का सिरा ठीक दूसरे से मिला हुआ रहता था। हमारे गाँव मे एक गरीब गृहस्थ रहते थे। वे बेचारे एक धनिक के घर धुले हुए कपड़े सूखने के लिए बॉस पर फैलाने का ही काम करते थे। इस काम में भी वे इतने कुशल थे कि उनकी कला देखते ही बनती थी। मेरे पिताजी भी शाक-भाजी (सब्जी) की क्यारियो में जब पानी सींचते तो बहुत ही पतली धार बना कर। वे बहुत ही सावधानी से टोंटी पर हाथ रखकर पानी सींचते थे। साराश, प्रत्येक काम मे व्यवस्थितता और सुन्दरता का ध्यान रखने की शिक्षा उनके आचरण से प्रत्यक्ष मिलती थी।

मेरी माता ने भी मुझे प्रत्येक बात मन लगाकर कहना सिखाया और मुझ से प्रत्येक काम अच्छी तरह करवाया। वह कहा करती "देख, श्याम! अपनी बनाई हुई पत्तल किसी के भी सामने रखी जाय; यदि वह ठीक तरह से बनी हुई होगी तो उसपर भोजन करनेवाले के गले मे कभी सींक उखड़ कर नहीं जा सकती! इस समय पत्तल बनाते समय मन में यह सोचते रहना चाहिए कि "इसपर कोई भी भोजन क्यों न करे, वह अच्छी तरह खा सकेगा। न तो उसके गले मे सींक अटकेगी और न दो पत्तो के बीच से अन्न ही नीचे गिरेगा।" इस प्रकार माता के उपदेश से मैंने अच्छी पत्तल बनाना सीखा।

एक दिन माता ने जान बूझकर मेरे हाथ की बनाई हुई पत्तल पिताजी के सामने रक्खी। उसे देखकर पिताजी ने पूछा "क्योंरी चन्द्रा! क्या यह पत्तल तूने बनाई है?" जीजीने कहा "नहीं, पिताजी वह श्याम ने

बनाई है।" पिताजी बोले "इतनी अच्छी पत्तल वह कबसे बनाने लगा?" इसपर माता ने कहा "उस दिन खाने को नहीं दिया और कह दिया था कि, जब तक अच्छी तरह पत्तल नहीं बनाने लगेगा तब तक तेरी पत्तल पर तुझी को परोसा जायगा। इस ताकीद के कारण यह अब इतनी अच्छी पत्तलें बनाना सीख गया है।"

यह सुन मैंने माता से कहा "परतु अब उस पिछली बात को फिर से क्यो दोहराती है? पिताजी, अब तो मुझे अच्छी पत्तल बनाना आता है न?"

"नहीं, अभी बहुत अच्छी तो नही बन पाई है; और तुझे दोने बनाना भी अभी कहां आता है?" पिताजी ने कहा।

"अब तो मैंने दोने बनाना भी सीख लिया है। आज ही कुएं पर मैं जीजी का बनाया हुआ एक दोना ले गया और उसे देख कर बनाने लगा; तो थोडी देर के प्रयत्न से मुझे दोना बनाना भी आगया। भोजन हो जाने पर मैं आपको वह दोना भी दिखाऊंगा"। इस प्रकार उत्साह-पूर्वक मैंने उत्तर दिया।

अपनी बनाई हुई पत्तल की प्रशसा होने से मैं फूल गया था; इस लिए भोजन से उठते ही मैंने पिताजी को वह दोना दिखलाया। उसे देखकर पिताजी बोले "अच्छा बना है, परन्तु यहां तू भूल गया। आमने-सामने के कोने पर बराबर मोड़ होना चाहिए।" यों कहकर उन्होंने मेरा बनाया हुआ दोना सुधार दिया; और वह सुधरा हुआ दोना मैंने माता को दिखाया।

माता ने प्रेमपूर्वक कहा "भला, अब तुझपर कौन नाराज हो सकता है? व्यर्थ हठ करता है और कहता है, मुझे यह नही आ सकता, वह नहीं आ सकता! अरे, जिसे ईश्वर ने हाथपाँव दिये हैं, वह सब कुछ कर सकता है; और जिसको थोड़ी-सी बुद्धि दी हो; उसे सब कुछ आ सकता है! बस, केवल मन में निश्चय करने की ही देर है। चन्द्रा! इसे एक ज़र्दालू लाकर दे! पत्तल सीखने का इनाम!" इसपर माता के कहे अनुसार जीजी ने घर के भंड-रिये मे से निकाल कर एक ज़र्दालू दिया। अहा! वह कितना मीठा था! कदाचित् समुद्र-मथन के पश्चात् देवताओ को अमृत भी उतना मीठा नहीं लगा होगा। मिठास किसी वस्तु मे नहीं; बरन् उसकी प्राप्ति के लिए किये गये परिश्रम मे होती है। कर्म मे ही आनंद होता है।

---

९ क्षमा-प्रार्थना

बाहर चाँदी की तरह चाँदनी फैली हुई थी। मंदिर की छत पर सब लोग बैठे हुए थे। कुछ दूर नदी का प्रवाह भी चाँदी की तरह चमक रहा था। नदी विश्राम करना तो जानती ही नहीं; जानती है केवल दिनरात बहते रहना। उसकी प्रार्थना—कर्ममय प्रार्थना—चौबीसों घण्टे चलती रहती है। कर्म करते समय वह कभी गीत गुनगुनाती और कभी हँसती-खेलती है। कभी गंभीर होती और कभी क्रोध से लाल भी हो जाती है। नदी एक सुन्दर और गंभीर पहेली के समान है। श्याम उस नदी की ओर ही देख रहा था। प्राकृतिक सौन्दर्य उसे पागल बना देता था। कभी रम्य सूर्यास्त देख कर उसे एक प्रकार की समाधि-सी लग जाती; और उसी अवस्था मे वह गुनगुनाने लगता:—

पर्दे की ओट रहकर, जादूगरी दिखाता।
रचता है रंगलीला, सब कुछ तुही सिखाता॥
इस विश्व-सृष्टि का भी तूही महा चितेरा।
कौशल दिखा रही है तव तूलिका घनेरा।
कबतक उसे विलोकूं, आँखें न तृप्त होती।
सद्‌भावना हृदय की, उमड़ी है स्वत्व खोती॥
तेरी अपार माया, कवि कब तलक बखाने।
ब्रह्मा, सरस्वती, शिव, नारद भी हार मानें॥*

इस समय भी कदाचित् उसे इसी प्रकार की समाधि लगी थी। किन्तु राम ने उसके पास जाकर कहा "श्याम भैया! सब लोग आगये, प्रार्थना के लिए चलते हो न? सब तुम्हारी ही राह देख रहे है।" यह

---

* राहोनी गुप्त मार्गे। करितोसि जादुगारी।
रचितोसि रंगलीला। प्रभू तूं महान् चितारी॥
किति पाहुं पाहुं पाहूं। तृप्ती न रे बघून।
शत भावनांनि हृदय। येई उचंबळून॥

सुनते ही श्याम ने चौंक कर कहा "हां-हां, चलो। मुझे इधर आकाश की ओर ताकने में इस बात का ध्यान ही नहीं रहा। इसके बाद वह आकर अपनी जगह पर बैठ गया। प्रार्थना यथा-नियम समाप्त होने पर कहानी आरम्भ हुई :—

मित्रो! प्रत्येक बात में संस्कृति की भावना रहती ही है। प्रत्येक जाति की एक खास सस्कृति होती है; और सबकी मिलकर राष्ट्रीय-संस्कृति निर्माण होती है। प्रत्येक रीती-रिवाज में जो सस्कृति की सुगन्ध समाई रहती है, उसे पहचानना चाहिए। अपने अच्छे रीति-रिवाजो की ओर हमे ध्यान देना चाहिए। कोई अनुचित प्रथा चल पड़ी हो तो उसे छोड़ना भी चाहिए। किन्तु संस्कृति की वृद्धि और रक्षा करने वाली प्रथाओं को कभी नष्ट न होने देना चाहिए। हमारे देश और समाज के प्रत्येक आचार में कुछ न कुछ शिक्षा अवश्य होती है।

हमारे घर नित्यप्रति दो पहर के भोजन के समय प्रत्येक के लिए एक-आध श्लोक सुनाने की प्रथा थी। भोजन के अन्त में यदि श्लोक न सुनाया गया तो पिताजी नाराज हो जाते थे। वेही हमें अच्छे-अच्छे श्लोक सिखाते भी थे। मोरोपन्त, वामन पण्डित आदि कवियों के सुन्दर श्लोक और पद्य काव्यादि जो उन्हें याद थे; वे सब उन्होंने हमें सिखाना आरभ कर दिया था। इसी प्रकार अन्य कई स्तोत्र एवं भूपाली (रागिनी) में गायी जानेवाली स्तुति, आरती, प्रभाती आदि भी वे हमें सिखलाते रहते थे। प्रातःकाल होते ही पिताजी आकर हमें जगाते; और वहीं हमारे बिस्तरे पर बैठकर श्लोकादि सिखाने लग जाते थे। हम भी वहीं रजाइयाँ ओढ़कर बैठ जाते। मेरे बचपन में हमारे घर में ब्लैंकेट का प्रवेश नहीं हुआ था। गद्दी, पिछौडी या माता की पुरानी साड़ी की चौतही बिछाई जाती और रजाई ओढने में काम आती थी। पिताजी हमें गणेश, गगा आदि देवताओं की स्तुतियाँ सिखाया करते थे। "**कानीं कुण्डलांची (की) प्रभा। चंद्र-सूर्य जैसे नभा**" यह चरण मुझे आज भी मधुर एव प्रिय लगता है। इसी प्रकार वे " वक्रतुड महाकाय०, शाताकारं०, वसुदेव सुतं देव०, कृष्णाय वासुदेवाय०" आदि सस्कृत श्लोक और "गंगा गोदा यमुना, कृष्णानुजा सुभद्रा, कुंकुममण्डित जनके, देवी म्हणे (कहे) अनार्या, ये

रथावरि झणीं यदुराया (आओ रथ पर झट यदुराया), असा येता देखे (ऐसा आते देखे), मारावें मजला (मारे जो मुझको), अगवक्र अधरीं धरीं पावा (बाकी छवि अधरों धर बंसी।) इत्यादि आर्याए स्तुति-रूप में सिखाते थे। ये सब श्लोक हमे बचपन मे ही कण्ठस्थ हो गये थे। प्रति-दिन हमें एक-आध नया श्लोक वे अवश्य सिखाते; और उसे केवल कण्ठस्थ ही नहीं करा लेते, वरन् उसका अर्थ भी बतलाते थे। वे पूछते "सौमित्र कौन है?" और यदि इसका अर्थ हम न बतला सकते; तो वे फिर पूछते "लक्ष्मण की माता कौन थी?" हम कहते "सुमित्रा"। तब वे फिर पूछते "तो फिर सौमित्र कौन हुआ?" इसपर हम अनुमान से कह देते "लक्ष्मण"। फिर तो हमे तत्काल ही शाबाशी मिल जाती थी। इस प्रकार सौमित्र का अर्थ बतला देने पर वे राधेय, कौन्तेय, सौभद्र आदि का अर्थ पूछते। इस प्रकार ठीक शिक्षा-शास्त्रज्ञ की तरह हमें वे सब बातें सिखलाया करते थे। पिताजी की इस शिक्षा-पद्धति के कारण मैं संस्कृत के सैंकड़ो शब्दों का अर्थ समझने लगा था।

इधर पिताजी प्रातःकाल शिक्षा देते और उधर सायकाल को हमे माता से शिक्षा मिलती। वह हमें दीपक की प्रार्थना सिखलाते हुए कहती **दिव्या दिव्या दीपोकार। कानी कुण्डलें मोतीहार। दिव्या देखून नमस्कार॥ (दीये दीये दीपाकार। कानों कुण्डल मोतीहार। दिया देखकर नमस्कार॥)** अथवा **"तिळाचें तेल कापसाची वात। दिवा तेवे मध्यान रात॥ दिवा तेवे देवापाशीं। माझा नमस्कार सर्व देवांच्या पायांपाशीं॥ (तिल का तैल रुई की बाती। दिया जले तू आधी राती। दीपक जले देवके पास। वंदन कर हरिपद का दास।)** पिता-माता की इस प्रेममयी शिक्षा के फल-स्वरूप हमे भी ये सब बातें सीखने की अभिरुचि रहती। इसी लिए यदि दो पहर को भोजन के समय पिताजी से सीखे बिना स्वयस्फूर्ति से याद किया हुआ कोई श्लोक हम सुनाते; तो वे हमे प्रसन्नता-पूर्वक शाबासी देते थे। इससे हमारा उत्साह बढता और हमें उत्तेजन मिलता था। गाँव में कहीं विवाह या जनेऊ के उपलक्ष मैं कोई भोजन की ज्योनार होती; या किसी उत्सव की समाराधना की जाती; तो उसमें भी सब लड़के श्लोक सुनाते। जो

अच्छा श्लोक सुनाता; उसकी सब लोग प्रशंसा करते। इस प्रकार घर मे और वाहर सर्वत्र ही हमें श्लोक याद करने के लिए उत्तेजन मिलता रहता था। भोजन करते समय सुदर काव्य एवं आनन्द-प्रद विचारो से युक्त श्लोकादि कानों पर पडने से यही प्रतीत होता; मानों, वह ऋषितर्पण ही हो रहा है।

गाँव मे कभी ज्योनार हुई कि हमारे घर निमंत्रण आता ही था। उस समय यदि पिताजी भी हमारे साथ होते; तो वे गर्दन या आँखि से सकेत कर के हमें श्लोक सुनाने की आज्ञा देते, और हम तत्काल श्लोक बोलने लग जाते थे। क्योंकि वैसा न करने पर घर जाते ही पिताजी की नाराजी का भय रहता था। यद्यपि मुझे अच्छे और वहुत-से श्लोक याद थे; किन्तु फिर भी भोजन की पक्ति मे बोलते हुए मुझे लज्जा प्रतीत होती थी। क्योंकि प्रथम तो मेरी आवाज ही अधिक अच्छी नही थी, दूसरे मुझमे सभा-ढीठ वृत्ति भी नही थी। वचपन से ही मैं समाज और उसके द्वारा होने वाली आलोचना से डरता था। मैं शर्मीला जीव हू। आज भी मैं मानव-समाज मे विशेषरूप से घुल-मिल नहीं सका हू। जरा-जरासी बातो मे हक्का-बक्का हो जाता हू। इसी लिए श्लोक सुनाते समय यदि कोई हँस देता; या टीका-टिप्पणी करने लगता तो मुझे बहुत बुरा लगता था। किन्तु पिताजी के मौजूद रहने पर तो चुपचाप श्लोक सुनाना ही पडता, क्योंकि उसके सिवाय कोई उपायही नही था।

उस दिन गगाधरजी ओक के यहा समाराधना (ब्राह्मण-भोजन) थी। उनसे हमारा अधिक घरोपा होने के कारण हमारे यहां भी निमत्रण आया। पिताजी उस दिन किसी दूसरे गॉव चले गये थे। अतः जो भी दूसरे के घर भोजन के लिए जाने मे मुझे बचपन से ही शर्म लगती है; किन्तु फिर भी उस दिन तो किसी न किसी को जाना ही चाहिए था। घर से किसी की हाजिरी वहां होनी आवश्य थी; अन्यथा वह असभ्यता और अभिमान-युक्त ठसक समझी जाती। इससे उनके चित्त को चोट लगती। फलतः पिताजी के घर न होने से मुझे भोजन के लिए जाना पड़ा।

दो पहर को स्नान कर के तैयार रहने की सूचना मिली; और इसके बाद मैं भोजन के लिए गया। वहां जाकर देखा कि रांगोली की (सफेदे

और गुलाल की) सुदर पक्तियाँ बनी हुई हैं; और उनमें केले के हरे-हरे पत्ते रखे हुए हैं। मैं एक सिरेवाली पत्तल पर जाकर बैठ गया। अगरबत्तियों की सुगध चारो ओर महक रही थी। गर्मी के दिन होने से पानी के लिए बड़े-बड़े पीतल के हांडों पर बाहर से गीले कपडे लपेटकर भीतर खस डाला गया था। प्रत्येक घर से निमंत्रित व्यक्तियो के आने या न आसके हों तो उसके कारण की पूछताछ हुई। साथ ही जो आने वाला होते हुए भी नहीं आया था, उसके घर किसी लडके को हाथ मे आचमनी सहित पचपात्र देकर बुलाने के लिए भेजा गया। इसके बाद सबके आ जाने पर पत्तलो पर जल-प्रोक्षण किया जाकर हर-हर महादेव के घोष के साथ भोजन आरभ हुआ।

मैं फुर्ती से भोजन कर ही रहा था कि श्लोक बोलने की शुरूआत हो गई। लडके एक के बाद एक श्लोक बोल रहे थे। किसी-किसी को शाबाशी भी मिलती जाती थी। स्त्रियाँ परोस रही थीं। उनमें से यदि किसी का लडका उस पक्ति मे बैठा हुआ भोजन करता होता; तो वह उससे पूछती "क्यो रे, तूने श्लोक सुनाया? यदि न सुनाया हो तो अब सुनाना।" अर्थात् श्लोक सुनाना एक प्रकार का सदाचार और भूषणास्पद गुण माना जाता। चुप देखकर थोडी ही देर के बाद मुझ से भी श्लोक सुनाने का अनुरोध किया जाने लगा। एक बोला "क्यो शाम, तू श्लोक नही सुनाता? तुझे तो बहुत से अच्छे श्लोक आते हैं। वह 'चेतन्य सुमन०' वाला श्लोक सुना अथवा 'डिडिम् डिम्मिन् डिम्मिन्०' वाला; या जो तुझे ठीक जान पडे वही सुना दे!" किन्तु मुझे श्लोक सुनाते हुए शर्म लगती और बोलने की हिम्मत नहीं होती थी। यह देखकर पास बैठे हुए गोविन्द भट्टजी ने कहा "अरे, तू तो छोकरी है बिलकुल। तभी तो इतना शर्माता है!" किन्तु मैंने यह आक्षेप चुपचाप सुन लिया और दक्षिणा मे मिले हुए पैसे को कढी में डालकर चमकीला बनाने लगा। इस लिए दूसरे के कहने पर मैंने ध्यान ही नही दिया। एक लडका पंक्ति मे बैठे हुए लोगों का भोजन समाप्त होने से पहले ही उठ खड़ा हुआ; इस लिए सब ने उसे बुरा-भला कहा। क्योकि बीच में उठ जाना पक्ति का अपमान करना समझा जाता है।

भोजन समाप्त होने पर सब लोग उठे। मैं पान या सुपारी खाता ही

न था; क्योंकि सुपारी खाने से पिताजी नाराज होते थे। विद्यार्थी के लिए पान या सुपारी न खाने की प्रथा थी। मैं घर आ पहुँचा ! उस दिन शनिवार होने से पाठशाला मे दो पहर की छुट्टी थी। माता ने पूछा "क्यों श्याम, भोजन मे क्या पक्वान्न बना था? शाक-भाजी क्या-क्या बनाय गये थे?" इत्यादि। मैंने उसे सब बातें कह सुनाई। तब उसने पूछा "श्लोक भी सुनाया था या नही?" इसका मैं क्या उत्तर देता? एक झूँठ के लिए दूसरी झूँठ बोलनी ही पड़ती है। एक खराब कदम उठाने पर उसे दबाने के लिए दूसरा उठाना अनिवार्य हो ही जाता है। पाप ही पाप को बढाता रहता है उसकी जड़ पुष्ट करता रहता है। मैंने माता से झूँठ-मूँठ कह दिया कि "श्लोक सुनाया था।" इसपर उसने पूछा "कौनसा सुनाया था? वह लोगो को पसद आया या नहीं?" इसपर फिर मैंने फिर झूँठ कह दिया कि "गणेशजी के बाल-स्वरूप वर्णन वाला श्लोक सुनाया था। क्योंकि मेरे पिताजी को वह श्लोक बहुत प्रिय था। और वह है भी मधुर एव भावपूर्ण। अच्छा सुनो, तुम्हे वह श्लोक सुनाता हू।:—

"नेत्रीं दोन हिरे प्रकाश पसरे अत्यंत ते [1]साजिरे।
माथा [2]शेंदुर [3]पाझरे [4]वरि [5]बरे दूर्वाङ्कुराचे [6]तुरे॥
[7]माझें चित्त [8]विरे मनोरथ पुरे देखोनि[9] चिंता हरे।
गोसावीसुत वासुदेव कवि रे त्या[10] मोरयाला स्मरे॥

मैं माता से ये झूँठ बातें कह ही रहा था कि इतने में पड़ौस के लडके आ पहुँचे। और लडकों का यह स्वभाव होता ही है कि वे एक दूसरे के दोष दिखाकर; या उसके साथ छेड-छाड कर के अथवा झूठी-सच्ची चुगली खाकर घरवालों से उसे पिटवा देते हैं; और खुद तमाशा देखते हैं। बस, यही बात उस समय भी हुई। छोटू, वासुदेव और माधव आदि सबने आतेही कहा "यशोदा काकी! आज तुम्हारे श्याम ने श्लोक नहीं सुनाया सब लोग इससे आग्रह करते रहे, परतु इसके मुँह से एक अक्षर तक न निकला।" इसके बाद वासुदेव बोला कि "मैंने तो श्याम का ही सिखाया

अर्थ :—(१) शुभ्र (२) सिन्दूर (३) लगा हुआ (४) ऊपर (५) अच्छे (६) तुरें (७) मेरा (८) विराम पाता है (९) देखकर (१०) उस

हुआ 'सघन गगन छाई मेघमाला निराली' वाला श्लोक कहा और मुझे सब ने शाबाशी दी।" इसी प्रकार गोविंद ने भी अपनी कैफियत सुनाई और नृसिंह भट्टजी से शाबाशी पाने का हाल कहा।

यह सब हाल सुनकर माता ने कहा "क्यो रे श्याम! तूने मुझे धोखा दिया? झूँठ ही कह दिया कि मैंने श्लोक सुनाया था!" वासुदेव बोला "कब सुनाया था रे तूने? इस पर छोटू ने कहा "अरे इसने अपने मन में ही कहा होगा! तब भला वह हमे कैसे सुनाई देता?" माधव बोला "परंतु देवता ने तो सुना होगा!" इस प्रकार लडके मेरा मजाक करके वहां से चले गये। सचमुच ही यदि देखा जाय, तो लडके एक प्रकार से गॉव के न्यायाधीश का ही काम करते हैं। वे किसी की भी कोई बात छिपने नहीं देते। उन्हें चाहे हम गाँव-भर की बुराइयाँ चौराहे पर ले आनेवाले समाचार-पत्र या अखबार भी कह सकते हैं।

माता ने फिर कहा "श्याम! पहले तो तूने श्लोक न सुनाकर भूल की; और उसपर फिर झूँठ बोलकर तो तूने और भी भयंकर भूल की। जा, अपने इस अपराध के लिए देवता के सामने प्रणाम कर; और प्रतिज्ञा ले कि आज से मैं इस तरह कभी झूँठ नही बोलूगा।" किन्तु फिर भी मैं खभे की तरह चुपचाप खड़ा था। माता ने फिर जोर से कहा "जा, देवता को प्रणाम कर! नहीं तो फिर घर आने दे उन्हें, तेरी सब बातें सुनाकर खासी पिटाई कराती हू। बोल! जाता है या नही?" किन्तु, फिर भी मैं अपनी जगह से नहीं हिला। मैंने सोचा माँ पिताजी से ये सब बातें नही कहेगी; और भूल जायगी। आज का उसका क्रोध कल कम हो जायगा। किन्तु माता ने फिर उसी नाराजगी के स्वर में पूछा "क्यों! नहीं सुनता? अच्छा, तो अब मैं भी तुझ से नहीं बोलती!"

पिताजी रात को ही गाँव से लौट आये थे। प्रतिदिन की तरह वे प्रातःकाल हमे उठाने आये; और उन्होने जो भी स्तुति-स्तोत्र सिखलाये थे, वे सब हम उनके साथ बोलते गये। इसके बाद उन्होने मुझ से पूछा "श्याम, कल कौनसा श्लोक सुनाया था रे?" उस समय माता छाछ (मही) बिलो रही थी; और दीवार पप उसकी छाया डौलती हुई दीखती थी। खड़े होकर मही बिलोई जाती है! मथने की डोरी भी कुछ बड़ी थी और रई

का फूल भी बडा ही था। माता ने एकदम मही बिलोना बंद कर के कहा "कल पक्ति में श्याम ने श्लोक नहीं सुनाया; और मुझे से झूँठ-मूठ-आकर कह दिया कि मैंने श्लोक सुनाया था। किन्तु पड़ौस के लड़कों ने आकर सच्चा हाल बताया। मै इससे कहती रही कि 'जा, देवता को प्रणाम कर और यह प्रतिज्ञा ले कि मैं आज से झूठ नही बोलूगा।' किन्तु फिर भी इसने मेरी एक न सुनी। चुपचाप ही खड़ा रहा।"

यह सुनते ही पिताजी ने क्रुद्ध होकर कहा "क्यों रे, सच है यह सब? उठ! एकदम खड़ा हो; और सामने दीवार के पास जा कर बोल! कल तूने पक्ति में श्लोक सुनाया था या नहीं?" पिताजी का क्रोध देखकर मैं घबरा गया और रोते हुए बोला "नहीं सुनाया था!"—"तब तू झूठ क्यों बोला? सौ बार तुझे सिखाया गया है कि झूठ नहीं बोलना चाहिए!" क्रोध के ही साथ-साथ पिताजी की आवाज भी ऊंची होती जा रही थी। मैंने काँपते हुए कहा "अब मैं कभी झूट नही बोलूंगा।" "और वह तुझे देवता को प्रणाम करने के लिए कहती रही; तो भी तूने नहीं सुना! माता पिता की आज्ञा मानने का उपदेश भूल गया, जान पड़ता है! बहुत इतरा गया है क्यों?" इन शब्दों को सुनते हुए मुझे यही प्रतीत होने लगा कि पिताजी अब मुझे पीटेंगे।

इसी लिए तत्काल ही रोता हुआ माता के पास गया और उसके पैरों पर अपना सिर रख दिया। मेरे गर्म-गर्म आँसू उसके चरणों पर गिरने लगे। मैंने कहा "माँ, मैं भूला! मुझे क्षमा कर!" उस समय माता बोल तक नहीं सकी, वह तो वात्सल्य की मूर्ति ही थी। पिघलते हुए हिमखण्ड की तरह मेरी स्थिति देखकर उसे बहुत बुरा लगा। किन्तु फिर भी अपनी भावनाओं को सम्हालते हुए उसने कहा "जा, देवता को प्रणाम कर; और उनसे निवेदन कर कि फिर कभी इस प्रकार झूठ बोलने की दुर्बुद्धि उत्पन्न न हो।" बस, तत्काल ही मैं देवता के सामने जा खडा हुआ और रोते हुए प्रार्थना कर के मैंने उन्हें साष्टांग प्रणाम किया। इसके बाद मैं फिर पिताजी के सामने दीवार के पास खड़ा हो गया।

तब तक पिताजी का क्रोध ठण्डा पड चुका था। वे बोले "चल, इधर आ!" मैं उनके पास गया और उन्होंने हाथ पकड़ कर मुझे पास

बैठाया। इसके बाद मेरी पीठ पर हाथ फेरते हुए बोले "जा, अब पाठशाला का समय हो गया!" मैंने कहा "आज तो रविवार की छुट्टी है।" इसपर वे बोले "अच्छा, यदि सोना हो तो और कुछ देर सो ले! या चलता हैं मेरेसाथ खेतपर? वहां से पत्तलों के लिए पत्ते ले आवेंगे।" मैंने उनके साथ चलना स्वीकार किया।

पिताजी का स्वभाव बड़ा ही उदार था। उन्होंने एकदम ही सारा वातावरण बदल दिया। क्रोध के बादल हट गये और प्रेम का प्रकाश फैल गया। मानों कुछ हुआ ही नहीं! हम दोनों पिता पुत्र खेत पर गये। मेरी माता यद्यपि दया और प्रेम की मूर्ति ही थी; तोभी कभी-कभी वह प्रसंगानुसार कठोर भी हो जाती थी। किन्तु उसकी कठोरता मे ही सच्चा प्रेम होता था, सच्ची ममता होती थी। इस प्रकार कभी कठोर प्रेम से तो कभी मधुर-प्रेम द्वारा वह इस श्याम का—हम सब का—पालन-पोषण करती थी। कभी वह प्रेम से थपथपाती और कभी क्रोध से धप्पे लगाती। दोनों ही प्रकार से वह मुझे आकार प्रदान करती थी। इस बेडौल और शिथिल लौंदे को मनोहर आकृति मे बदल रही थी। सर्दी और गर्मी दोनों ही से विकास होता है। दिन और रात दोनों के कारण ही वृद्धि होती है। यदि लगातार प्रकाश हो तो भी नाश; और निरंतर सर्दी ही पड़ती रहे तो भी नाश। इसी लिए एक श्लोक मे कहा गया है:—

दिखाय माता अनुराग राग। विकासती बाल मनोविभाग।
वृक्षादि फूलें सहि ताप-शीत। यही सदा विश्व-विकास रीत॥*

*** करूनि माता अनुराग राग। विकासवी बाल-मनोविभाग।**
फुलें तरू सेवुनि उष्णशीत। जगीं असे हीच विकास रीत॥

१० श्यामा गाय

"बलवंता आया कि नहीं! आज मैंने दो पहर को उसे धमकाया था। वह एक गाय को पीट रहा था। गऊ दूसरे की होने पर भी वह देवता तो है ही। जा रे शिवराम; तू बलवंता को उसके घर से बुलाकार ले आ।" इस प्रकार श्याम ने कहा।

इसपर शिवराम ने उत्तर दिया कि, "वह बाहर बैठा हुआ सुन रहा है। उसे भीतर आने में शर्म लगती है।"

यह सुन श्याम खुद उठकर बाहर गया और उसने बलवंता का हाथ पकड़ा। वह बहुत शर्माया और अपना हाथ छुड़ाने के लिए प्रयत्न करने लगा किन्तु श्याम ने कहा "तू मुझे बहुत प्रिय है। इसी लिए तो मैंने तुझे धमाकाया! मुझ पर तुझे इतना गुस्सा आ गया! अरे, मैं तो तेरे लिए भाई की ही तरह हू। चल, आज मैं अपनी श्यामा गाय की कहानी सुनाऊगा।"

इस प्रकार श्याम के प्रेमपूर्वक समझाने से बलवंता चुपचाप प्रार्थना-मंदिर में आगया। सब लोग श्याम की कहानी सुनने को उत्सुक हो रहे हैं, इस लिए उसने कहना आरभ किया:

"हमारे घर एक श्यामा गाय थी। वह आज भी मुझे अपने सामने ही खडी दिखाई देती है। लोग उसे देखकर कहा करते कि ऐसी गाय गाँव भर में दूसरी नहीं है। और सचमुच ही वह ऐसी गाय थी जिसपर नजर लग जाय। वह ऊंची और हृष्ट-पुष्ट तो थी ही, साथ ही वह शांत और गंभीर भी दिखाई देती थी। मेरे पिता का पाँच सेर का लोटा था; वह श्यामा के दूध से भर जाता था। किन्तु कोंकण का पाँच सेर खानदेशी सवासेर के बराबर होता है। इतना दूध वह एक बार मे देती थी। उसके स्तन भरे हुए दीखते थे। घर में बहुत सावधानी के साथ उसकी देखरेख की जाती थी।

मेरी माता प्रातःकाल उठते ही गो-शाला में जा कर; श्यामा गाय को अपने हाथ से घास डालती और तब उसके माथे पर कुंकुम लगाकर

उसकी पूंछ अपने चेहरे पर फिराती थीं। गाय को हिन्दू-सस्कृति में देवता माना गया है; और इसी लिए उसे गोमाता कहते हैं। उसे यह महत्ता भी स्त्रियों ने ही प्रदान की है। किन्तु आज सच्ची गो-पूजा का प्रचार नहीं रहा, केवल मुँह-देखी पूजा रह गयी है। दूर से देखते हुए ही देवता को दंडवत किया जाता है। पहले जमाने में यदि दूसरे की गाय अपने आँगन मे आ जाती; तो उसे कोई भी लाठी मारकर हँकाल नहीं देता था, बल्कि उसे रोटी देकर या घास खिलाकर जाने देते थे। किन्तु आज यदि भयभीत होकर भी किसी की गाय ऑगन मे आ जाय; तो उसे शरण देने के बदले हम लाठी मारकर बाहर निकाल देते हैं। दूसरे की गाय को तो जाने ही दीजिये; खुद अपने घर की गाय को भी पेट भर घास और समय पर पानी तक नहीं मिलता। जगल या गाँव मे उसे जो कुछ मिल जाय, उसीसे वह अपना पेट भर लेती है; और कहीं भी गन्दा पानी मिल जाय उसे पीकर अपनी प्यास बुझा लेती है! इस प्रकार हमने आज अपनी गौ-माता को भिखारिनी बना दिया है; इसी लिए आज हम भी दर-दर के भिखारी हो रहे हैं। जैसी सेवा वैसा फल। गौ-माता की हम जितनी ही अधिक सेवा करेंगे उतनी ही हमारे सुख, सौभाग्य और ऐश्वर्य की वृद्धि होगी।

मेरी माता बीच-बीच मे कई बार गौशाला में जाती और चावल का धोवन (पानी) गगाल (जलपात्र) में भरकर श्यामा को पिलाती। यह धोवन ठण्डा और पौष्टिक होता है। दो-पहर को भोजन के समय अेक पत्तल पर देवालय के साधु के लिए और दूसरी पर गौ माता के लिए नैवेद्य (भोजन) रखा जाता था। देवालय का नैवेद्य ले साधु जाता और गाय का भाग उसे खिलाया जाता था। श्यामा का मेरी माता पर बड़ा प्रेम था। खुद प्रेम कर के दूसरे से प्रेम करवाया जाता है। किसीपर प्रेम करने से वह द्विगुणित होता है। श्यामा मेरी माता को पास आते देखकर प्रसन्न होती और उसे चाटने लगती थी। उसकी गर्दन के नीचेवाले भाग को माता जैसे-जैसे खुजाने लगती, वैसे वैसे वह अपनी गर्दन ऊपर उठाती चली जाती। माता का शब्द सुनते ही श्यामा रम्भाने लगती। उसका दूध माता ही दुहती थी। वह दूसरे किसीके हाथ से दूध नहीं देती थी। मानों उसने यह निश्चय कर लिया था कि, जो देगा वही लेगा। दूसरा कोई यदि

उसको दुहने जाता तो वह उसे सूंघती थी। "गन्धेन गावः पश्यन्ति" गौएँ गन्ध से मनुष्य को पहचान लेती हैं। उसके स्तन को हाथ लगते ही वह पहचान लेती थी कि यह हाथ किसका है। माता के सिवाय अन्य किसीके हाथ लगाते ही वह लात मारने लग जाती। वह गाय स्वत्ववती थी, सत्यवती थी और स्वाभिमानिनी थी। प्रेम न करनेवाले को ही वह लात मारती थी। इस प्रकार मानो वह कहती थी कि "रे पापी! मेरे स्तन को हाथ मत लगा! मेरा स्तनपान करने लिए पहले मेरा प्यारा वत्स (बछडा) बनने की योग्यता प्राप्त कर।"

श्यामा को हम भाग्यवान् गऊ समझते थे। मानों वह हमारे घर की शोभा ही न हो! और सचमुच ही वह हमारे घर की देवता थी। वह हमारे परिवार की पवित्रता, प्रेम दया, सौन्दर्य और स्नेह एव समृद्धि की साक्षात् प्रतिमा ही थी। किन्तु हमारे दुर्भाग्य से पशुओं मे पैरों की खुरी का भयंकर रोग शुरू हो गया। इस बीमारी में कोकण प्रदेश में सैकडों पशु, विशेष-कर गाय और बछड़े मर जाते हैं। वे बेचारे पैर पछाड पछाडकर प्राण छोड देते है। पैरों में घाव होकर उनमे कीडे पडजाते हैं और दो-एक दिन मे पशु मर जाता है।

हमारी श्यामा को भी इस रोग ने ग्रस लिया। कितने ही इलाज किये, परन्तु अच्छी न हो सकी। उसने घास के एक तिनके को भी न छुआ और गर्दन झुकाये पडी रही। हमने उसके आरोग्य के लिए घर मे मन्त्र-जप भी किया; किन्तु हमारा पुण्य-बल समाप्त हो चुका था। श्यामा हमें छोडकर चली गई। उस दिन मेरी माता ने भोजन नही किया किन्तु हम सबसे उपवास न हो सका। माता को श्यामा के मरने पर कितना दुःख हुआ, यह बतला सकना असम्भव है। जो प्रेम करता है उसीको प्रिय वस्तु के जाने का दुःख मालूम हो सकता है। दूसरे उसे क्या समझेंगे? जहां हमारी श्यामा ने प्राणत्याग किया था, उस स्थान पर मेरी माता कई दिनोतक हल्दी-कुकुम और फूल चढ़ाती रही।

कभी-कभी माता कहने लगती "श्यामा गाय गई और उसीके साथ-साथ तुम्हारे घर का सौभाग्य भी चला गया। सचमुच ही उस दिन से घर में झगडे-फिसाद शुरू हो गये। पहले जो घर गाँवभर में हराभरा

गोकुल-सा दिखाई देता था, उसकी दशा श्यामा की मृत्यु के बाद से लगा-तार बिगड़ने लगी। मेरी माता का कहना यथार्थ था, और अत्यन्त व्यापक अर्थ मे वह आज भी यथार्थ दिखाई दे रहा है। जिस दिन से भारत माता की श्यामा गाय मरी; अथवा जिस दिन से भारतीयों ने गौमाता को दूर किया, उसकी उपेक्षा करना आरम्भ किया, उसी दिन से दुःख रोग, दरिद्रता, दीनता और अकाल (दुर्भिक्ष) का परिणाम अधिकाधिक बढ़ने लगा। चर्खा और गऊ ये दोनों ही भारतीय-भाग्य के आराध्य-देवता—आधार-देवता हैं। अतएव जबतक इन दोनों देवताओं की पूजा फिर से आरम्भ नहीं होगी; तब तक हमारे लिए उद्धार पाने का दूसरा मार्ग नहीं खुल सकता। केवल रास्ता चलते समय बीच मे कहीं गाय मिल जाने पर उसे दाहिनी ओर रखकर हाथ जोड़ने का नाम ही गौ-पूजा नहीं है। हम लोग पाखण्डी हो गये है। देवता को प्रणाम करते हैं और भाई को कष्ट देते हैं, उसे छल-कपट द्वारा सताते हैं। इसी प्रकार गाय को भी हम माता कहते हैं, परन्तु उसे खाने-पीने को कुछ नहीं देते। इसी लिए हमें उसका दूध नहीं मिलता; और यदि मिलता भी है तो रुचता नहीं। मिथ्या और ऊपरी बिलैया दंडवत करनेवाले के लिए नर्क स्थान बतलाया गया है: उसके भाग्य में दासता ही लिखी गई है।"

११ पर्ण-कुटी

"मुझे भी ले चल न भैया, कहानी सुनने को! तू तो हररोज जाता है। माँ तू ही दादा से कह दे कि वह मुझे साथ ले जाय!" इस प्रकार वत्सला अपने भाई गोविन्द से आग्रह करने लगी। इसपर उसने कहा "अरी, तू वहाँ जाकर ऊघने लगेगी। फिर किस लिए तू साथ ले चलने का हठ कर रही है?"

यह सुन माता ने अत्यन्त आग्रह-पूर्वक कहा "ले जा रे इस बेचारी को

भी! यह भी सुन लेगी। अच्छी बात तो सब को सुननी चाहिए। मैं भी चलती; परंतु घर का काम समेटते-समेटते ही आधी रात हो जाती है।"

"वह पड़ौस की राधा जाती है, कमला जाती है और सीता को भी उसका भाई ले जाता है; तब तू क्या मेरा भाई नहीं है?" इस प्रकार वत्सला अधिक करुण शब्दों में गिड़गिड़ा कर भाई का हृदय पिघलाने लगी।

उसके इन शब्दों को सुन अनिच्छा-पूर्वक गोविन्द ने कहा "चल भले ही, परन्तु वहां चलकर यदि इसके लिए जल्दी मचाई कि 'मुझे नींद आती है, घर चलो; तो फिर देखना।' और इस शर्त के साथ वह उसे ले गया। इस प्रकार धीरे-धीरे आश्रम में होनेवाले कथा-रूपी प्रवचन को सुनने गॉव के लड़के-बच्चे ही नहीं, बडे आदमी भी, जिन्हें समय था, आने लगे।

जिस समय वत्सला और गोविन्द पहुँचे, वहा कहानी आरम्भ हो चुकी थी।

"अन्त में मेरे पिता को उनके भाइयों ने घर से निकाल दिया। भाईबन्दी जो ठहरी। केवल इस भारतवर्ष में ही यह भाई-बन्दी जोरों पर है! कौरव-पाण्डव के समय से अब तक यह बराबर चली आ रही है। किन्तु जहां भाई भाई में ही प्रेम न हो, वहां स्वतंत्रता कैसे टिक सकती है, मुक्ति कैसे रह सकती है? जिस घर में मेरे पिता छोटे से बडे हुए और जहां रहकर उन्होंने तीस वर्ष तक भली-बुरी गृहस्थी चलाई, जिस घर में उन्होंने अन्य सबको दही-दूध दिया और खुद इमली का पानी पीकर ही संतोष किया, जिस घर में रहकर उन्होंने अपने भाई-बहनों के विवाह किये, उनकी इच्छाएँ पूरी कीं, उसी घर में से आज उन्हें बाहर निकल जाने के लिए कह दिया गया! घर में माता को भी अपमान-कारक वचन सहने पडे! हम उस समय छोटे-छोटे थे। इसके बाद भी कभी-कभी उस हिस्से-रसी या बँटवारे की बातें सुनाते हुए माता की आँखों में आंसू जाते थे।

वह दिन मुझे अभी तक याद है। हमारे गॉव में माघमास की सकट चतुर्थी का गणेशोत्सव था। यह मनौती का उत्सव था। क्योंकि यथार्थ में गणेशजी का सार्वजनिक उत्सव भाद्रपद मास में ही होता है। महाड़ के 'धारप' ने यह मनौती की थी। उस समय अभ्यकर नाम के

राष्ट्रीय कीर्तनकार हमारे गाँव मे आये हुए थे, और उत्सव मे उन्हीं के कथा कीर्तन हो रहे थे। गाँव के सब लोक कथा सुनने मंदिर गये थे। किन्तु उस दिन हमे कथा में नही जाने दिया गया; इस लिए हम सब सो गये थे। अचानक रात को नौ-दस बजे के लगभग माता ने हमें जगाया। उस समय माता-पिता दोनो ही घर से बाहर निकल रहे थे। माता के नेत्रों से आँसू टपक रहे थे। जिस घर में रहकर उसने श्यामा गाय को दुहा था, नौकर-चाकरों को पेटभर भोजन कराया; और जहां वह किसी समय सोने और मोती के आभूषणो से सज्जित हो कर लक्ष्मी की तरह सम्मानित हुई थी; वही घर, वह गोकुल छोड़कर आज वह बाहर निकल रही थी। मेरा छोटा भाई उसकी गोद में था। वह भाई यशवंत से छोटा था। पिताजी आगे-आगे चल रहे थे और उनके पीछे मोती के साथ मैं भी जल्दी-जल्दी चला जा रहा था। हम कहां जा रहे थे? माता के नैहर में! गाँव में ही मेरी ननसाल थी। नानी के घर मे उस समय कोई नही था। नाना-नानी दोनो ही मेरे मामा के पास पूना चले गये थे; और कुछ दिनों बाद वापस आनेवाले थे। इस लिए रात को ही हम गलियो में होकर नाना के घर पहुँचे गये। मंदिर मे आनंद की वर्षा हो रही थी, परन्तु हम निर्वासित होकर वनगमन कर रहे थे। ईश्वर के इस रंगमंच पर एक ही समय अनेक प्रकार के नाटक होते रहते हैं।

नये घर में आकर हमे अब सुहाने लगा था; परन्तु माता के मुख पर की खिन्नता अभी दूर नही हुई थी। कुछ दिनों बाद नानी लौट आई। यद्यपि नानी का स्वभाव प्रेमयुक्त था; किन्तु फिर भी वह कुछ हठीली थी। इस लिए माता जहां तक होता मेरी नानी से मिल-जुलकर ही बरतती, क्योंकि वह उसके स्वभाव से पूर्ण परिचित थी।

माता को अपने पिता के घर मे रहना बहुत अखरता और अपमान जनक प्रतीत होता था। यहांतक कि पति-सहित नैहर मे रहने से तो वह मर जाना श्रेष्ठ समझती थी। क्योंकि उसका स्वभाव पूर्ण स्वाभिमानी था। एक दिन नाना-नानी मंदिर मे कथा सुनने गये। पिताजी बाहर चबूतरे पर बैठकर जमाखर्च का हिसाब लिख रहे थे; ठीक उसी समय माता ने उनसे जाकर कहा कि "मुझसे अब इस घर में नहीं रहा

जाता। यदि आप मुझे जीवित रखना चाहते हैं तो अलग घर बँधवाइये। यहां खाना-पीना मुझे मरण-तुल्य प्रतीत होता है।" इस पर पिताजी ने कहा "किन्तु हम खाते तो अपना ही भात हैं। यहां तो केवल रहते ही हैं। घर बँधवाना क्या कोई खेल है? तुम स्त्रियों को बातें बनाते क्या लगता है! पुरुषों की कठिनाइयों को तुम क्या समझो?" यह सुन माता ने एकदम संतप्त होकर कहा "तुम पुरुषों में तो अब जरा भी स्वाभिमान नहीं रहा।" इस मर्म-वाक्य को सुन पिताजी ने अत्यंत शांतिपूर्वक किन्तु खिन्नभाव से कहा "हमें जरा भी स्वाभिमान नहीं है; क्यों? मानो हम मनुष्य ही नहीं हैं! दरिद्री मनुष्य का सारी दुनिया अपमान करती है; तब भला स्त्री क्यों न करेगी? कर ले, तू भी अपने मन की कर ले। जो तेरी इच्छा हो सो बुरा-भला कह ले।" किन्तु ये शब्द कान पर पड़ते ही माता रोने लगी, और उसी दशा में उसने भरे हुए कंठ से कहा "मेरा उद्देश्य आपका अपमान करने का कदापि नहीं था। व्यर्थ ही आप उलटा-सीधा सोच कर चित्त को क्लेश न पहुँचायये। किन्तु मैं इतना तो फिर भी कहूंगी कि अब मुझे से यहां नहीं रहा जाता।" पिताजी ने उत्तर दिया "तो क्या मैं भी कभी यहां रहने की इच्छा कर सकता हूं? परन्तु तुझे घर की सारी हालत भी तो मालूम है! सिर पर कर्ज का बोझ है और उसका ब्याज (सूद) भी जब हम समय पर नहीं दे सकते, तब भला घर कहां से बनवाया जा सकता है? यों ही गौशाला की तरह तो घर बनवाने से काम नहीं चल सकता! उसमें रहना भी तो अपमान-कारक जान पड़ेगा।"

"मुझे गौशाला में रह लेना स्वीकार है; परन्तु वह स्वतंत्र होनी चाहिए, अपनी होनी चाहिए। बिलकुल सीधी-सादी, घास-फूस की झौंपडी होने से भी काम चल जायगा। मुझे उसमें रहना जरा भी अपमान-कारक नहीं जान पड़ेगा। किन्तु पीहर वालों के यहां नहीं रह सकती। यदि कल कहीं मेरी भौजायइयां आ गईं; तो वे भी मेरा अपमान किये बिना नहीं रहेंगी। इस लिए उनके आने से पहले ही घर छोड़ देना अच्छा है। बड़े और खपरैल वाले घर में रहने की अपेक्षा पत्तों की झौंपड़ी ही अच्छी। ऐसी झोपड़ी बनाने में खर्च भी अधिक

नहीं लगेगा। लीजिये, ये मेरे हाथ की सोने की चूडियाँ (पाटली) और यदि इनसे काम न चले तो यह नथ बेच दीजिये। क्योंकि नथ या चूडियाँ (पाटली) न भी हुई; तो इनके बिना कोई काम रुकता नहीं है। मुझे क्या किसीके घर अपना वैभव दिखाने जाना है? अपनी स्वतंत्रता ही मेरे लिए सच्ची शोभा है! माथे पर कुकुम और गले में मगल-सूत्र यही मेरे लिए बहुत हैं। स्वतंत्रता खोकर ये नथ और चूडियाँ किस काम की?" यों कहकर सचमुच ही माता ने नथ और चूडियां पिताजी के सामने रख दीं। वे एकदम चकित रह गये; और उन्होंने उसे आश्वासन देते हुए कहा "तुझे इतना दुःख हो रहा है, यह मैं नहीं जानता था। किन्तु अब मैं शीघ्र ही एक छोटा-सा घर बनवा लेता हू।"

मेरी माता प्रायः कहती कि स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए अपने सब जर-जेवर फैंक दो। स्वतंत्रता का साज, और स्वाधीनता का शृगार ही सब के लिए शोभादायक एव मूल्यवान शृंगार हो सकता है।

हमारे हिस्से में मिली हुई थोड़ी-सी जमीन पर झौंपड़ी बनना आरम्भ हुआ। मिट्टी की दीवारें कच्ची ईंटों से चुनकर खड़ी कर दी गईं। इन्हें कोंकण मे 'मांपें' कहते हैं। ये ईंटें आकार मे पक्की ईंटों से बड़ी होती हैं। दीवारें बन जाने पर घास का छप्पर छादिया गया। इसके बाद नीचे की जमीन लीप-छावकर अक्षय-तृतीया के शुभ मुहूर्त मे घर में प्रवेश करने का निश्चय हुआ। माता को बुरा तो लग रहा था; किन्तु साथ ही उसे प्रसन्नता भी थी। बुरा इस लिए लग रहा था कि पास पड़ौस में ही देवरों के बड़े-बड़े घर और बँगले बने हुए हैं, और अपना एक घास से छाया हुआ झौंपड़ा है। किन्तु फिर वह यह सोचकर प्रसन्न होती थी कि "कुछ भी क्यों न हो! यह स्वतंत्र घर तो है! यहां की मैं मालकिन हूं। यहां से मुझे उठ जाने के लिए कोई न कह सकता।"

उस झौंपड़ी-नुमा घर की वास्तु-शांति की गई। इसके बाद सर्व प्रथम घर में देवता का सिंहासन ले जाया गया और उसके बाद अन्य सामान। माता ने चाँवल और नारियल के गोले की गाढ़ी खीर बनाई थी। उसे तो किसी प्रकार अवसर को साधना था। सारा दिन इसी गड़बड़ मे चला गया। पिताजी लोगों से कहते थे "अभी तो काम-चलाऊ घर बना लिया है,

आगे अच्छा बनवायेंगे।" किन्तु माता हमसे यही कहा करती कि "इनके हाथों अब क्या और कहा मे नया घर बन सकता है? मुझे तो बडा घर अब भगवान के वहा पर ही मिल सकेगा। परतु यहां मेरे लिए यह कुटिया ही स्वर्ग है; क्योंकि यहा मैं स्वतत्र हू। यहां किसी की दबैल-दारी नहीं है। यहा खाई हुई नमक-रोटी भी अमृत की तरह जान पड़ेगी; किन्तु पराये घर आश्रित बनकर हलवा पूरी खाना भी जहर जैसा था।"

उस दिन रात को हम आँगन में बैठे हुए और आकाश मे तारे चमक रहे थे! चंद्रमा बहुत पहले ही अस्त हो चुका था। माता को अपने स्वतत्र-जीवन पर धन्यता प्रतीत हो रही थी। यद्यपि घर छोटा ही था;किंतु फिर भी उसके आगे-पिछे बडे-बडे आँगन थे। यथार्थ मे यदि देखाजाय तो आँगन ही सच्चे (प्राकृतिक) घर होते हैं। माता ने पूछा "क्यों श्याम! तुझे यह नया घर पसद आया? मैंने तत्काल ही उत्तर दिया "हां, बडा अच्छा है अपना घर। गरीबों के घर ऐसे-ही तो होते हैं। अपनी मथुरी का घर भी तो ऐसा ही है। इस लिए वह भी हमारा घर बहुत पसद करेगी।"

किन्तु क्या मेरे इन शब्दो को सुनकर माता को बुरा लगा होगा? क्योंकि जो मथुरी हमारे यहा धान कूटने की मजदूरी करने आती है, उसीके जैसा हमारा भी घर है, यह सोचकर उसे दुःख हुआ होगा? किन्तु नहीं; वह तो स्वाभिमानिनी थी; उसे बुरा क्यों लगता? इसी लिए उसने कहा "हा, ठीक कहता है तू। परन्तु मथुरी गरीब होने पर भी हृदय से धनवान् (श्रीमान)है। इस लिए आओ, हम भी इस छोटे-से घर में रह कर मन से—हृदय से—बड़े और धनवान् बनें।"

मैंने भी कहां, "हा, अवश्य ही हम मन और धन दोनों से श्रीमान बनेगे।"

इतने ही मे आकाश से एक तारा टूटा। माता एकदम गंभीर होगई। छोटा भाई बोला "माँ, कितना बडा तारा था!" फिर भी माँ गंभीर ही बनी हुई थी। वह बोली "श्याम! तेरी माता के जीवन का तारा भी शीघ्रही टूटने वाला है, ऐसा तो वह(तारा) नहीं कह रहा था? वह ऊपर का बड़ा और विशाल सुंदर आकाश मुझे तो ऊपर नहीं बुला रहा

... नि के लिए तो वह तारा नीचे नहीं आया था ?"

"नहीं माता, वह तो हमारा यह नया स्वतंत्र घर देखने आया था ! उसे हमारा यह सीधा-साधा स्वतंत्र घर स्वर्ग से भी अधिक पसंद आया होगा। जैसे यमुना के जल में भगवान गोपाल कृष्ण के हाथ धोने पर जो जूँठन गिरती थी; उसे खाने लिए स्वर्ग के देवता आया करते थे, यह बात हरि-विजय (भागवत)में कही गई है, उसी प्रकार ये तारे भी हमारा स्वतंत्र घर देखने को आकाश से आते रहेंगे। क्योंकि हमारे घर में प्रेम है —तेरा निवास है !" इस प्रकार मैंने उत्तर दिया।

मेरी बातें सुन माता ने प्रेम-पूर्वक मेरी पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा "श्याम, भला यह तो बता तुझे सब बातें किसने सिखला दीं ? तू कितनी मीठी और सुन्दर बातें करता है ? सचमुच ही हमारा यह सुन्दर घर तारों को भी पसंद आएगा; और अन्य सब को भी।"

१२ भूतदया

"राम, वह दीया एक ओर हटा दे। मेरी आँखों पर उजेला नहीं पड़ना चाहिए।" इस प्रकार श्याम ने कहा। आज थोड़ी-सी वर्षा हो जाने से बाहर ठण्डी हवा चल रही थी; इस लिए सब लोग भीतर ही बैठे थे। वैसे प्रतिदिन आकाश के नीचे खुली जगह में ही प्रार्थना और कथा-प्रवचन होते थे। किन्तु श्याम को दीये से कष्ट होता था; इस लिए राम ने उसे हटाना चाहा। परन्तु माधव भला क्यों उसकी सुनने लगा ? वह बोला " यहां दीपक रहने से हमें तुम्हारे मुँह पर के हावभाव दिखाई देते हैं। कानों से सुनने के साथ ही हम आँखों से देखते भी तो हैं ! जिस प्रकार तुम्हारे शब्दों का हम पर प्रभाव पड़ता है, उसी प्रकार तुम्हारे चेहरे पर के हावभाव का भी पड़ता है। यदि केवल सुनने से ही काम चल जाता तो नाटक भी अवश्य ही अंधेरे में किये जाते !"

यह सुन श्याम ने कहा "किन्तु मैं कोई नाटक नहीं करता। केवल अपने अन्तःकरण की वाणी ही तुम्हें सुनाता हूं!"

"हम भी तो उसे नाटक नहीं कहते। किन्तु तुम्हारे चेहरे की ओर देखने में भी प्रभाव पड़ता ही है। स्वामी रामतीर्थ जापान में अंग्रेजी में भाषण देते थे; किन्तु अंग्रेजी न जानने वाले जापानी भी उनका व्याख्यान सुनने जाते और रामतीर्थजी के चेहरे पर के हावभाव ही मानों उन्हें सब कुछ समझा देते थे।" इस प्रकार मुकुंद ने उस प्रस्ताव को पुष्ट किया।

"अच्छी बात है, रहने दो यही दीया। जिसमें तुम सब को आनंद हो उसी में मैं भी प्रसन्न हूं।" यों कह कर श्याम ने कहानी शुरू की

"बचपन मे एक दिन हम आँगन मे खेल रहे थे। तुलसी की क्यारी वाला आँगन बहुत बडा और लंबा-चौडा था। उसीमें बहेडे का एक बहुत ऊंचा वृक्ष भी था। अचानक ही 'टप्' की आवाज सुनाई दी। मैं अपने छोटे भाई को लेकर यह देखने लगा कि किस चीज के गिरने की आवाज हुई है? क्योंकि वृक्ष पर से कोई वस्तु अवश्य गिरी थी। हम इधर-उधर देखने लगे तो एक तरफ वृक्ष पर से गिरा हुआ किसी पक्षी का छोटा-सा बच्चा दिखाई दिया। उसकी छाती धड़क रही थी, क्योंकि वह बहुत ही ऊंचे से गिरा था। उसकी बड़ी बुरी हालत हो रही थी। वह लोटपोट हो रहा था। उसके अभी पूरी तरह पंख भी नहीं निकले थे। वह आँखें भी अच्छी तरह खोल नहीं सकता था। लोहार की धौंकनी की तरह उसका सारा शरीर ऊपर-नीचे हो रहा था। जरा हाथ लगाते ही वह अपनी गर्दन लम्बी कर के चीं-चीं करने लग जाता था। उस बच्चे को उठाकर मैंने घर ले जाने का निश्चय किया; और एक कपड़े में हल्के हाथ से उठाकर घर में ले भी गया। साथ मेरा छोटा भाई भी था। हमने रुई जमाकर उस पर उस बच्चे को रख दिया। उस समय हम भी बच्चे ही थे; इस लिए इससे अधिक और कर ही क्या सकते थे? अपनी बाल-बुद्धि के अनुसार जो-जो सूझता गया वह करने लगे। उसके लिए दाना-पानी करने के विचार से चाँवल के छोटे छोटे टुकडे (चूरी) लाकर उसकी चोंच मे रखने और झारी से पानी की बूंदे डालने का प्रयत्न भी हमने किया। किन्तु हम यह नहीं सोच सके कि उस बच्चे को दाने चुगना या पानी पीना आता भी है या नहीं; और

कहीं वह हमारा इस अत्यधिक मेवा (चिंता) के कारण; अर्थात् उसकी चोंच मे दाना-पानी पहुँचाने से ही मर तो नहीं जायगा!

इस ससार मे केवल प्रेम या निरी दया दिखलाने से ही काम नही चल सकता। जीवन को सुन्दर बनाने के लिए तीन गुणो की आवश्यकता होती है। उनके प्रथम गुण है प्रेम, दूसरा है ज्ञान और तीसरा है शक्ति या बल। जिसके पास प्रेम, ज्ञान और बल, तीनो गुण मौजूद हैं, वह संसार मे सफल-जीवन हो सकता है। क्योंकि जिस प्रकार प्रेम-हीन ज्ञान निरर्थक होता है; उसी प्रकार ज्ञान-हीन प्रेम भी व्यर्थ होता है। ठीक यही बात प्रेम-ज्ञान-हीन शक्ति या शक्ति हीन प्रेम और ज्ञान की निरुपयोगिता के विषय मे भी कही जा सकती है। मेरे शरीर में यदि शक्ति हो और दूसरे के प्रति प्रेमभाव न हो; तो अवश्य ही शक्ति का दुरुपयोग होगा। इसी प्रकार यदि मेरे पास ज्ञान है, किन्तु दूसरो के प्रति प्रेम नही है; तो उस ज्ञान से मैं दूसरो को लाभ नहीं पहुँच सकता। साथ ही यदि प्रेम होते हुए ज्ञान का अभाव हो, तो वह प्रेम भी हानि किये बिना नही रहेगी। किसी माता का अपने पुत्र पर अत्यधिक प्रेम हो; किन्तु माता यह ज्ञान न रखती हो कि बीमारी मे उनकी कैसे सेवा की जाय, तो उस अन्ध-प्रेम के वशीभूत होकर वह न खाने की वस्तुएँ भी खाने के लिए देकर उसके लिए घातक बन जायगी। इसी प्रकार यदि किसी माता के हृदय मे सतान के प्रति प्रेम भी हो और ज्ञान भी, किन्तु वह खुद ही अशक्त या पगु हो; तो उसके ज्ञान या प्रेम से भी संतान को लाभ नहीं पहुँच सकता। इसी लिए प्रेम, ज्ञान और शक्ति तीनो का समान-रूप से जीवन मे विकास होना चाहिए। अर्थात् प्रेम का अर्थ होगा हृदय का विकास, ज्ञान का आशय बुद्धि का विकास और शक्ति का अर्थ होगा शरीर का विकास। शरीर, मन और बुद्धि इन तीनो की जीवन मे वृद्धि होनी चाहिए।

हाँ, तो हम उस बच्चे पर प्रेम तो कर रहे थे; किन्तु हमे ज्ञान नहीं था। उसकी चोंच में हमने आटा, चाँवल आदि कई चीजे डाली और ऊपर से बराबर पानी भी डाला! किन्तु वह गरीब बेचारा हमारे इस अज्ञान-मय प्रेम के कारण बेजार हो रहा था। यहां तक कि अन्त में उसने गर्दन लटका दी। मैंने उससे कहा "अरे बच्चे! हम तुझे पींजरे मे बद नहीं करेंगे, तू

अच्छा होकर अपनी माँ के पास उड़ जा। तुझे विश्वास दिलाते हैं कि हम दुष्ट नहीं है।"

"अरे कम से कम तू अपनी माँ के लिए ही जीता रह। वह तेरे लिए किस प्रकार करुण शब्दों मे विलख रही होगी; इधर-उधर चक्कर काट रही होगी।" किन्तु हमारे इस कथन की ओर उस बच्चे का ध्यान नही था। मैंने माता के पास जाकर कहा "माँ, देख तो यह बच्चा क्या कर रहा है! बिलकुल् गर्दन ऊपर उठाता ही नहीं। बतला तो सही, इसे क्या खाने को दें? माता ने बाहर आकर उस बच्चे को प्रेम भरी हाथो से उठाते हुए कहा "श्याम! यह अब जी नहीं सकता। इसे शांतिपूर्वक मरने दे। इसे बार-बार हाथ भी मत लगा। इसे वेदना हो रही है। बेचारा बहुत ऊचे से गिरा है।" यों कहकर माता ने उसे फिर नीचे रुई पर रख दिया; और वह भीतर घर मे कामकाज करने चली गई। किन्तु हम उस बच्चे की ओर ही देखते रहे। थोड़ी ही देर वह वेचारा चोंच खोलकर मर गया। उस बेचारे का प्राण निकल गया। उस समय उसके माँ-बाप या भाई-बन्धु कोई भी पास मे नहीं थे। हमे बहुत बुरा लगा और उसे जमीन मे अच्छी तरह गाड़कर समाधि देने का हमने निश्चय किया।

माँ से जाकर पूछा "माँ, हम उसे कहां ले जाकर गाड़ें? हमें कोई अच्छी-सी जगह बतला दे।" माँ ने कहा "उस सेवती या मोगरे (बेले) की छाया में गाड़ दो। इससे सेवती के पौधे पर सुन्दर फूल खिलेगे; अथवा मोगरे के फूल अधिक खिले हुए दिखाई देंगे। तुमने उस बच्चे के साथ जो प्रेम किया है, उसे वह कभी भूल नही सकता। उन फूलों के रूप मे ही वह तुम्हारे पास आकर मधुर सुगन्ध से तुम्हारा चित्त प्रसन्न करेगा।"

मैंने कहा "उस सोने की परी-वाली कहानी की तरह! क्यों माँ? उस बेचारी को सौतली माँ ने मारकर जमीन में गाड़ दिया और ऊपर एक अनार का वृक्ष लगाया। किन्तु सोने की परी अपने पिता से मिलाने के लिए अनार के दोनो मे आई, वैसे ही यह बच्चा भी आवेगा। यही बात है ना माँ? फिर तो सेवती के फूल बडे सुन्दर दिखाई देंगे; उनमे खूब सुगन्ध आवेगी, क्यों ठीक बात है न माँ!" इस पर माता ने कहा "जाओ, उसे जल्दी से गाड दो। मरे हुए को ज्यादा देर रखना ठीक नहीं।"

यह सुन मैंने कहा "माँ, उसे लपेटने के लिए एक अच्छा-सा कपड़ा तो दे!" तत्काल ही उस प्रेम-मयी माता ने अपनी एक फटी-पुरानी जरी की चोली में से थोडा-सा टुकड़ा फाड़कर दे दिया; और उस रेशमी कपडे मे लपेट कर उस बच्चे को लिए हुए हम उन फूलों के पौधो के पास पहुँचे। वहां जाकर हमने दोनों वृक्षों के बीच एक गड्ढा खोदना आरम्भ किया। उस समय हमारे नेत्रो से आँसू टपक रहे थे। उस पवित्र जल से वह भूमि शुद्ध हो रही थी, मृदु हो रही थी। गड्ढा तैयार होते ही पहले हमने उसमें थोडे-से फूल रखे और उनपर उस बच्चे को कपडे में लपेट कर रख दिया। किन्तु इसकें बाद हमसे उस पर मिट्टी नहीं डाली जा सकी। मक्खन से भी मुलायम उस सुन्दर छोटे-से बच्चे के कोमल शरीर पर मिट्टी डालने का साहस हम न कर सके। किन्तु अन्त में आँखे मूद कर हमे उस पर मिट्टी डालने के वाद गड्ढा पूर देना पड़ा। बिल्ली उसे खोद न सके, इस लिए ऊपर से एक बड़ा पत्थर भी रख दिया और इसके बाद हम घर आ गये। किन्तु मैं घर मे एक ओर बैठ कर रोने लगा। माता ने उसी क्षण पूछा "क्यो रे श्याम! उधर अलग क्यों बैठा है?"

मैंने कहा "माँ, मैं उस बच्चे का सूतक पालना चाहता हू।"

यह सुन माता ने हँसकर कहा "उसका सूतक पालने की जरूरत नहीं।" तब मैंने फिर पूछा "किन्तु हम अपने घर मे किसी के मरने पर तो सूतक पालते हैं।"

उत्तर में माता ने कहा "मनुष्य किसी न किसी रोग के कारण मरता है; इस लिए उसके पास रहने-वालों का दूसरे लोगों से कुछ दिन अलग रहना आवश्यक है। इससे यदि वह स्पर्शजन्य (छूतका) रोग होगा तो उसके जंतु दूसरों में न फैल सकेगे। इसी उद्देश्य से सूतक पालकर अलग रहने का नियम बनाया गया है। परन्तु उस बेचारे पक्षी को तो कोई रोग ही नहीं था। वह तो ऊपर से गिरा और थोडी देर जी-कर चल बसा।"

माता के इन शब्दों को सुन मुझे आश्चर्य हुआ और मैंने पूछा, "माँ तुझे ये सब बाते किसने बतलाई?" इस पर उसने कहा "अभी उस दिन बाहर एक सज्जन आये थे, उन्हींने तो कहा था। मुझे उनकी बात ठीक जान पड़ी और तभी से मैंने उसे हृदय में अंकित कर लिया। जाओ, तुम

दोनों हाथ-पाँव अच्छी तरह धोकर घर में आ जाओ! बस, हो गई इतने ही से शुद्धि। उसके लिए दुखी होने की आवश्यकता नहीं; उसके साथ तुमने प्रेमभाव दिखाकर बहुत अच्छा किया है। इससे परमात्मा भी तुम पर प्रेम की वर्षा करेगा। यदि दैवयोग से कहीं तुम बीमार हो गये और पास में तुम्हारी माता न हुई; तो वह खुद तुम्हारे लिए अनेक दूसरे सहायक मित्र खड़े कर देगा। उस परमात्मा के पुत्रों को—चींटे-चीटी या पशु-पक्षियों को-तुम जितना दोगे, उससे सौगुना बढ़ाकर वही तुम्हें परमात्मा से मिलेगा। जमीन में बोया हुआ एक दाना बदले में हजारों दानों से भरा हुआ भुट्टा बन-कर हमें मिलता है। श्याम! जैसा तुमने इस बच्चे पर प्रेम किया है; उसी प्रकार आगे चलकर तुम एक-दूसरे पर भी प्रेक करना। ऐसा न हो कि पशु-पक्षियों पर तो प्रेम करो और भाइयों से द्वेष करने लगो। तुम सब भाई-बहन एक-दूसरे को कभी अलग न होने देना। तुम्हारी एकमात्र बहन है, उसे कभी भूल न जाना; उसके साथ पूर्ण स्नेह रखना।"

ये सब बातें कहते हुए माता का गला भर आया। कदाचित् मेरे पिता के साथ उनके भाइयों ने जो दुर्व्यवहार किया था, उसका दृश्य उसकी आँखों के सामने प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा था! अथवा क्योंकि वह बिचारी हमेशा बीमार रहती थी· किन्तु फिर भी उसके भाई (मेरे मामा) आज तक कभी उसे हवा-पानी बदलने के लिए नहीं ले गये, संभव है इस लिए उसे दुःख हो रहा हो! उसकी भावनाएँ चाहे जो हों, किन्तु उसने जो कुछ कहा वह सर्वथा सत्य था। क्या हम नित्य-प्रति संसार में यह दृश्य नहीं देखते कि लोग चींटियों को तो आटा और शकर डालते फिरते हैं, किन्तु मनुष्य की—अपने भाई की ही गर्दन मरोड़ने में वे जरा-भी आगा पीछा नहीं देखते। कुत्ते, बिल्ली और तोते-मैना से तो प्रेम करते हैं; किन्तु अपने ही पड़ौसी भाई के साथ मनुष्यता का भी व्यवहार नहीं करते, प्रेम तो दूर की बात है।"

१३ तैरना कैसे सीखा ?

कोंकण में वर्षा-ऋतु में कुए-बावड़ी लबालब भरा जाते हैं। यहा तक कि उनसे से हाथो से भी पानी लिया जा सकता है। इस कारण चौ मासे वहां तैरने का बडा आनन्द रहता है। नये लड़कों को उन्हीं दिनो तैरना सिखाया जाता है। उनकी कमर से तूंबियाँ अथवा हल्के लक्कड़ का टुकड़ा बाँधकर कुए में धकेल देते है। कुए में तैरने-वाले पहले-से होते ही हैं। वहा ऐसे-ऐसे होशियार तैराक घर-घर देखने में आते हैं जो छह-छह पुरुष गहरे पानी के नीचे जाकर तले की मिट्टी ऊपर ले आते हैं। पानी मे अनेक प्रकार से उडी मारने या गोते लगाने-वाले भी होते हैं। कोई कोई उसमें कई तरह के खेल भी करते हैं। कोई एक दूसरे के पाँव में फँसाकर फिर ऊपर किये हुए नाव भी बना लेते है। इस प्रकार कोंकण मे अनेक जल-क्रीडाएँ देखने में आती हैं। मेरे चचा भी नंबरी तैराक थे। पिताजी भी तेरना जानते थे, परन्तु मुझे वह नही आता था।

दूसरो को तैरते हुए देखने के लिए मैं अवश्य जाता; किन्तु अपने-आप कभी पानी मे पैर भी यही रखता था। क्योंकि मुझे पानी से बहुत डर लगता था। मेरे पड़ोसी छोटे-छोटे लड़के भी धडाधड़ कूदते रहते; किन्तु मैं डरपोक छोकरी की तरह दूर से देखा करता था। यदि कोई झूटमूँट भी कह देता कि 'ढकेल दो श्याम को कुए में,' तो मैं तत्काल वहां से नौ-दो ग्यारह हो जाता था।

माता मुझ से अनेक बार कहती "अरे श्याम, तू भी तैरना सीख ले! छोटे-छोटे बच्चे तक तैरते हैं, तब तुझे कैसे डर लगता है? क्या इतने लोग तैरते है, वे सब तुझे डूब जाने देगे? कल रविवार है, इस लिए तैरने को अवश्य जाना! वह बलवन्ता तुझे सिखा देगा। नहीं तो तेरे चाचा (काका)के साथ जाना। अरे; उठते-बैठते तो अपना कुए पर काम रहता है। यहां बम्बई-पूना जैसे नल (पाइप) थोड़े ही लगे हुए है। गाँवों में रहकर तो तैरना अवश्य सीख लेना चाहिए। वह कुसुम जीजी की वेणू और अम्बा तक तो तैरना सीख गई और तू लड़का होकर डरता है? अरे

इससे तो तू चूड़ियाँ पहन ले यही अच्छा! परन्तु तू तो चूडियाँ पहनने वाली लडकियो से भी गया-बीता है। कल तुझे अवश्य तैरने जाना होगा। उस बाबू के यहां सूखी तूंबियाँ रखी हुई हैं, उसे कमर से बाँध लेना। इतने पर भी जरूरत हुई तो कमर से धोती बाँध कर तुझे ऊपर से लडके पकडे रहेगे। किन्तु कल तुझे अवश्य तैरने के लिए जाना पडेगा।"

मैं कुछ भी नहीं बोला। दूसरे दिन रविवार आ गया। मैंने कहीं छिपकर बैठ जाने का निश्चय किया। क्योंकि मुझे विश्वास हो चुका था कि माता आज किसी भी तरह मुझे तैरने के लिए भेजे बिना न रहेगी। इस लिए मैं ऊपरी टाँड मे जा छिपा। यह बात प्रारम्भ मे माता के भी ध्यान में नहीं आई। लगभग आठ बजने आगये। ठीक उसी समय मेरे पडौसी वासुदेव, भास्कर, छोटू आदि लडके आकर पूछने लगे "श्याम की माँ! आज श्यामू तैरने के लिए चलेगा न?" "यह देखो, मैं तूबियाँ भी ले आया हूँ।" इस प्रकार छोटू ने कहा। उन्हें देख कर माँ ने कहा "अवश्य चलेगा। परन्तु वह है कहा? मैं समझती थी वह तुम्ही लोगो की तरफ गया है। श्याम! अरे ओ श्याम! कहां गया हैरे! कहीं बाहर तो नही चला गया।" इस प्रकार पुकारती हुई माता मुझे खोजने लगी। किन्तु मैं ऊपर बैठा हुआ यह सब सुन रहा था। लडको ने कहा "नहीं वह हमारी तरफ नहीं आया, यहीं कहीं छिपकर तो नहीं बैठा है? क्या हम ऊपर जाकर देखें?" माता ने कहा "देखो, यदि वह ऊपर हो तो! उसे घूस-चूहे की तरह छिप जाने की आदत तो है। उस दिन वह इसी तरह खटिया के नीचे छिपकर बैठ गया था। किन्तु ऊपर जरा होशियारी से जाना, समझे! वह तख्ता एकदम उलट जाता है; इस लिए उससे अलग-दूर पाँव रखते हुए जाना।

लड़के ऊपर चढने लगे और मुझे भय हुआ कि अब मैं पकड लिया जाऊंगा। इस लिए सिकुड कर मे और भी आड मे हो गया। किन्तु जिस प्रकार मैंडक फूलकर बैल नही बन सकता, उसी प्रकार बैल भी सिकुडकर मैडक नही बन सकता। फिर भी मैं मन ही मन सोचने लगा कि यदि मै 'भक्तिविजय' ग्रथ मे वर्णित ज्ञानेश्वर की तरह छोटा बनकर, जैसे कि वह मक्खी बन गये और तलैया में जाकर पानी पी

आये, वैसे ही यहां छिप सकता; तो कभी इन लोगों के हाथ नहीं आ सकता था। फिर भी मैं चॉवल के थैले की आड में छिपा रहा। इतने में थोड़ी देर इधर-उधर देखकर एक लड़के ने कहा "अरे यहां तो नहीं दीखता। वह भला, यहां क्यों ऐसी मुश्किल में छिपकर बैठा होगा?" इसपर दूसरा बोला "हां भाई चलो; नहीं तो हमें देर हो जायगी।" इसी बीच भास्कर ने मुझे देख लिया और पास आकर कहा "अरे, यह देखो! इधर इस थैले की आड़ में छिपकर बैठा है!" तब तक दूसरे लड़के भी वहां आगये और कहने लगे "श्याम, चलता है न तैरने को? इस तरह छिप क्यों गया?"

उनके शब्द सुनकर माता बोली "है न ऊपर ही? मैं समझ ही गई थी कि ऊपर छिपा होगा! उसे जरूर ले जाओ, किसी तरह भी मत छोड़ो! इतना संकेत मिलते ही लडके मेरा हाथ पकड कर खीचने लगे। किन्तु फिर भी वे थे तो पराये ही लडके! वे भला जोर क्यों लगाने लगे? वे धीरे-धीरे खींच रहे थे और मैं पूरा जोर लगा रहा था!

अन्त में हार कर लडकों ने कहा "श्याम की माँ, वह तो नहीं आता और न अपनी जगह से हिलता ही है। यह सुन माता क्रुद्ध होकर बोली, "देखती हू, कैसे नहीं आता है सो! कहां है वह, मैं ही ऊपर आती हु; ठहरो!" इसके बाद तत्कालही माता वहा आई और मुझे खींचने लगी। वह मुझे घसीट रही थी, किन्तु फिर भी मैं अपना हठ नहीं छोड रहा था। एक हाथ से मुझे वह घसीट रही थी और दूसरे में ली हुई छड़ी से पीटती जाती थी। उसने लडकों से कहा "तुम इसका हाथ पकड कर खींचो और मैं इसे पीछे से धकेलती और छडी लगाती हूं। देखूं कैसे नहीं जाता है यह।"

यह सुनते ही लडके मुझे खींचने लगे और माँ छडियां बर्साने लगी। "अरे, मत मारो माँ! ओः, मरा, मर गया रे!" इस प्रकार मैं चिल्लाने लगा; किन्तु फिर भी माता धमकाती ही रही "चुप रह! उठ! चुपचाप नीचे चलाचल। आज मैं तुझे नहीं छोडूंगी। ले जाओ रे इसे, पानी में धकेल दो। अच्छी तरह दो तीन बार डुबाना। इसके मुँह और नाक-कान में पानी घुसने देना! उठ! क्यों, उठता है या नहीं? शर्म नहीं

आती तुझे ! चोर की तरह छिप कर बैठा था ! देख, वे लड़कियाँ आगई तेरी फजीहत देखने !" यों कहकर वह और भी जोरों से मुझे पीटने लगी।

"अच्छा, जाता हूं ! मुझे मारे मत !" मैंने कहा। इसपर माता ने मुझे पीटना बद करते हुए फिर सावधान किया। "निकल झटपट; यदि फिर कहीं भागा तो घर मे नही आने दूगी, समझा !"

इधर तब तक वेणू कहने लगी "श्याम ! अरे इस तरह डरता क्यो है ? अब तो मैं भी कुए मे कूद कर तैरने लगी हूं। उस दिन गोविन्द काका ने मुझे कन्धे पर बिठलाकर कुए मे उडी लगाई थी। बडा आनद आया। मुझे तो कुछ भी डर नहीं लगी।"

यह सुन छोटू ने कहा छोडदो इसका हाथ। यह अवश्य चलेगा। "श्याम ! डरने की कोई बात नही है ! एक-बार कूद पडने के बाद तो फिर आपने-आप तेरी हिम्मत बढ़ जायगी। उस समय हम नहीं कहेंगे तो भी तू अपने-आप ऊपर से कूदने लगेगा ? रोता क्यो है !"

देवघर के कुए पर बलवन्ता, गोपाल आदि कई जवान लड़के तैर रहे थे। मुझे देखते ही बाहर आकर बलवन्ता ने कहा "अच्छा, श्याम आज तैरने आ गया ! लाओ मैं ठीक तरह से इसकी कमर में तूंबियाँ बाँध देता हू।" यो कहकर उसने दो बडी-बडी तूंबियाँ मेरी कमर से बाँध दी। उधर बावडी में तीन-चार अच्छे तैराक थे ही; किन्तु फिर भी मैं थर-थर काँप रहा था। बलवन्ता ने कहा "हां, लगातो देखू अब ठीक तरह से उडी !" किन्तु मैं झांककर बार-बार पीछे हट जाता था। जरा आगे बढ़ता और फिर पीछे हट जाता। जरा देर को नाक पकड़ता और फिर छोड़ देता। इस प्रकार बहुत देर तक होता रहा। तब तक गोपाल ने कहा "अरे, डरपोक है। वेणू कूद कर लगा तो देखू उडी ! तुझे देख कर यह भी कूद पडेगा।" भाई की बात सुनते ही वेणू अपनी घँगरियाकी कच्छ लगाकर धम्म से कूद पडी। इतने में मुझे भी किसीने पकड कर कुए मे धकेल दिया ! मै चिल्लाया "मरा रे मरा ! मैं मर गया" किन्तु क्षण भर मे ही मैं पानी के ऊपर आ गया और घबरा कर तैरने-वालो के गले में लिपटने लगा। किन्तु वे मुझे अपने पास न आने दे कर यह कहते रहे कि "इस प्रकार आडा हो जा; और हौंट पानी से लगाकर हाथ

लंबे करते हुए पैर हिलाना शुरु कर दे।" इस प्रकार मुझे तैरने की शिक्षा दी जाने लगी। बलवन्त भी मेरे साथ ही कूदा था। उसने मुझे थाम लिया। इसके बाद वह मेरे पेट के नीचे हाथ रख कर तैरना सिखाने लगा। साथ ही वह यह भी कहता रहा कि "घबराना मत। क्योंकि इससे मनुष्य जल्दी थक जाता है? एकदम किनारे को भी मत पकड़ना। बिल्कुल पास पहुँचे बिना किनारा नहीं पकड़ना चाहिए।"

इसके बाद छोटू ने कहा "अब फिर से उडी मार! चल ऊपर को।" और तत्काल ही मैं सीढियाँ चढ कर ऊपर जा पहुँचा। एक हाथ से नाक बद किया और थोड़ी देर तक आगे-पीछे हटकर अत में कूद ही पड़ा। मुझे देखते ही बलवन्त ने कहा "शाबास, श्याम! अब आ गया तुझे तैरना। एक-बार भय दूर हुआ कि फिर कुछ भी शेष नहीं रहता।" इसके बाद उसने फिर मुझे पानी मे थमाकर तैरना सिखलाया। अन्त में सब ने एक साथ कहा कि "अब और एक बार कूदने के बाद आज का काम पूरा हो गया समझना।"

मैंने फिर ऊपर आकर उडी लगाई और बलवन्त का सहारा लिये बिना ही मैं कुछ देर तैरना रहा। मेरी कमर में तूबियाँ बँधी हुई थी ही, इस लिए डूबने का भय नहीं रहा। मेरी हिम्मत बढी और पानी का डर मिट गया। अन्त में पानी से निकल कर हम सब घर को चले। सब लड़के साथ-साथ मुझे घर तक पहुँचाने आये।

घर आते ही छोटू ने कहा "श्याम की माँ, आज इसने अपने-आप पानी में उडी लगाई थी। यह बिल्कुल नहीं डरा; और तूबी के सहारे इसने थोड़ा-थोडा तैरना भी सीख लिया है। बलवन्त भैया कहते थे कि यह बहुत जल्द तैरना सीख लेगा।"

माता ने कहा "अरे, पानी में पड़े बिना और नाक-कान में पानी घुसे बिना किसी का भी भय दूर नहीं होता। श्याम! जरा सिर को अच्छी तरह पोंछ और चोटी को भी फटकार कर सुखा ले।" इसके बाद सब लड़के चले गये। मैंने सिर पोंछ कर सूखी लंगोटी पहनी। फिर भी मैं घर में कुछ रूठ कर ही बैठा था। हमारे भोजनादि निपट जाने के बात माता भोजन करने बैठी। उस समय मैं बाहर बरामदे में बैठा हुआ था। कुछ

ही देर में उसने अत्यत मीठे स्वर में पुकारा "श्याम!" और तत्काल मैं इसके पास चला गया। जाते ही मैंने पूछा "क्या है माँ?" उसने कहा "वह दही की कुण्डी (पथरी) लेआवो! उसमें दही है। वह सब सड़प जा! तुझे दही अच्छा लगता है न!" मैंने रोने का-सा मुँह बनाकर रूठने के स्वर मे कहा "नहीं चाहिए मुझे तेरा दही! सबेरे तो छड़ी से मार-मार कर बेदम कर दिया; और अब कहती है दही लेकर सड़प जा।" देख, मेरी पीठ पर अभी तक मार के निशान बने हुए हैं। बावड़ी के इतने गहरे पानी मे तैरने पर भी वे नहीं मिटे। जबतक वे चिन्ह बने हुए हैं, तब तक क्यों दही देकर मुझे बहलाती है! उस मार को मैं इतनी जल्दी कैसे भूल जाऊगा?

माता की आँखो में आँसू आ गये और वह उसी दशा में उठ खडी हुई। उसके गले से अन्न नीचे न उतर सका। वह हाथ धोकर मेरे पास आई। किन्तु उसे इस प्रकार भोजन के बीच मे से उठते देख कर मुझे बहुत बुरा लगा। मैंने सोचा माता को मेरी बातो पर से बड़ा कष्ट पहुँचा है। तत्काल ही वह तैल की कटोरी लाकर मेरे शरीर पर के मार के चिन्हो पर लगाने लगी। मैं फिर भी चुपचाप ही रहा। तब माता रुआ-सी होकर बोली "श्याम! क्या तुझे लोगों से डरपोक कहलाना अच्छा लगता है? मैं नहीं चाहती कि मेरे श्याम को कोई इस प्रकार बदनाम करे। इसी लिए मैंने तुझे पीटा! श्याम! यदि तेरी माँ से कोई आकर यह कहे कि तुम्हारे लडके डरपोक हैं। तो क्या यह बात तुझे अच्छी लगेगी? क्या अपनी माँ का अपमान तू सह सकेगा? कभी नहीं! मैं अपने बच्चों का अपमान कभी सहन नही कर सकती; और मेरे बच्चे भी कभी अपनी माता का अपमान न सह सकेंगे! ऐसा होने पर ही मैं सच्ची माता कहला सकती हूं और तुम मेरे सच्चे पुत्र हो सकते हो। नाराज मत हो श्याम! मैं चाहती हू कि तू अच्छा मजबूत और साहसी बने। वह दही सड़प कर बाहर खेलने चला जा। आज दो-पहर में सोना मत। क्योंकि तैर कर आने के बाद सोने से तत्काल सर्दी हो जाती है"

"मित्रों! मेरी माता साहसी लड़के चाहती थी, डरपोक नहीं।"

१४ स्वाभिमान-रक्षा

"जो ब्राह्मण अच्छी तरह खाता-पीता गृहस्थ होता है, वह भोजन के बाद दक्षिणा नहीं लेता। केवल गरीब ब्राह्मणों को ही दक्षिणा लेने का अधिकार होता है, क्योंकि उनके लिए निर्वाह का कोई दूसरा साधन नहीं रहता। वेद-विद्या के सिवाय उनके लिए दूसरा कोई धंदा नहीं होता। इसी लिए ब्राह्मणों को दक्षिणा देने की बात कही गई है। अन्य देशों मे भी उपाध्याय (कुलगुरु) होते हैं, अन्य धर्मों में भी वे पाये जाते हैं। कई स्थानों मे तो उन्हे सरकार से ही वेतन मिलता है। किन्तु हमारे यहां समाज ही ब्राह्मणों को दान-दक्षिणा दे कर सम्मानित करता है।" इस प्रकार श्याम ने आरम्भ किया।

हमारे गाँव मे एक सज्जन के यहां विवाह था। विवाह मे जब दोनों पक्ष के समधी आकर वाङ्निश्चय (वाक्य-दान) करते हैं, तब दोनों मंडपों मे अर्थात् वर और कन्या दोनो की ओर से दक्षिणा बॉटी जाती है। वर और कन्या दोनों के घर के उपाध्याय साथ-साथ ब्राह्मणो को दक्षिणा देते हुए मंडप में घूमते हैं। जितनी दक्षिणा वर (लडके) की ओर से दी जाती है, उतनी ही कन्या की ओर से भी देते हैं। अर्थात् यदि वर की ओर से चार-चार आने दिये गये तो कन्या की ओर से भी इतनी ही दक्षिणा दी जायगी। उस समय जो भी हाथ आगे बढाता है उसी को दक्षिणा दी जाती है। इस प्रकार विवाह मण्डप में जब सब लोग आकर बैठते हैं, तब लडके अपने-अपने पिता के पास बैठकर यह सब व्यवहार स्वयं सीख लेते हैं। दक्षिणा के समय वे चट्-से कहने लगते हैं "नहीं, हमें हाथ नहीं फैलाना चाहिए, समझे!"

किन्तु आजकल तो यह स्वाभिमान रह ही नहीं गया है। पैसे के लिए हम हर समय लालायित रहते हैं। जो कुछ भी मुफ्त में मिल जाय उसे ले लेने में हमें जरा भी संकोच नहीं होता! हमारी वृत्ति—आदत ही ऐसी हो गई है। रेलगाडियों में जापानी एजन्ट सिगरेट आदि मुफ्त बॉटते रहते हैं और वे मुफ्त की सिगरेटें पीते हुए मैने बड़े-बड़े अमीरों को खुद देखा है। धनवान् लोग भी धर्मार्थ औषधालयों में जाकर दवाइयां ले आते

हैं। पैसेवालो के लडके भी दिवालिया बनने के लिए अर्जियाँ देने लग जायँ तो आश्चर्य नहीं। यह सब दरिद्रता और दासता का परिणाम है।

मैं भी उस विवाह-समारोह मे गया और लड़को मे जाकर बैठ गया। हम पाठशाला मे पढ़ने-वाले समान अवस्था के लडके सब एक ही जगह बैठे थे। क्योंकि इस प्रकार एक ओर बैठने से ही हमें कुचेष्टाएँ एवं शरारतें करने का मौका मिल सकता था। किसी के सिर पर हम नारियल की जटा रख देते थे; तो किसी के जेब में कंकड डाल देते थे। किसी को धीरे से नोच लेते थे; तो किसी की पीठ में धप्पा मार देते थे। इस प्रकार हमारी शैतानी चल ही रही थी कि इतने में दक्षिणा बँटने लगी। कुछ लड़कों ने हाथ फैलाया और उनके साथ मैंने भी हाथ आगे कर दिया। सहज-भाव से ऐसा हो गया और अपनी भूल मेरी समझ में नहीं आ सकी। बचपन मे पैसे पास मे रहने से चित्त को प्रसन्नता होती है। इसी भाव से प्रसन्नता-पूर्वक मैं भी दक्षिणा के दो आने लेकर घर आया और माता को देने के लिए गया। मानो वे मेरी गाढ़ी कमाई के—खरे पसीने के ही न हो! किन्तु यथार्थ मे वे आचार्य लोग जो कि बारह-बारह वर्ष तक वेदाध्ययन करते हैं, सारे विधि-विधान करते हैं; केवल उन्हे ही दक्षिणा मिलनी चाहिए। मुझे ये दो आने लेने का क्या अधिकार था? प्रत्येक आदमी के परिश्रम करने और उसका बदला प्राप्त करने में ही कार्य की शोभा है, समाज की सुव्यवस्था रहती है।

माता ने पूछा "ये पैसे कहां से लाया?" मैंने कहा "विवाह-वालो के घर वाङ्निश्चय की दक्षिणा के मिले हैं।" यह सुनते ही माता लज्जित हो गई; और उसका चेहरा एकदम उतर गया। वह सोचने लगी "अरे, आज हम गरीब हो गये, इस लिए क्या लडकेने दो आने दक्षिणा प्राप्त की? या भूल से किसी ने उसके हाथ पर पैसे रख दिये!" क्योंकि जब कोई सुखी और सम्पन्न घर का लडका भूल से भी दक्षिणा के लिए हाथ फैला देता है; तो दक्षिणा बाँटने वाला भिक्षुक खुद ही उसे कहने लगता है "अरे मूर्ख, तुझे हाथ फैलना भी चाहिए! तू तो अमुक धनिक परिवार का है न?" कहीं श्याम को तो किसी ने इस प्रकार नहीं कहा? संभव है किसी को हमारी दशा पर दया आई हो! किन्तु संसार में कोई हमारी दशा पर दया-भाव

प्रकट करे, इससे बढ़कर अधिक करुणा-जनक और दुःख-प्रद स्थिति और क्या हो सकती है? इस प्रकार माता के मन में सैंकड़ों विचार उस समय आये होंगे। किन्तु फिर भी वह चुपचाप शून्य-दृष्टि से देखती रही!

"माँ, ले न ये पैसे! मैं कहीं से चुराकर थोड़े ही लाया हूँ!" इस प्रकार मैंने घिघिया कर कहा। इस पर माता ने उत्तर दिया "श्याम हम गरीब हो जाने पर भी सद्गृहस्थ कहलाते हैं। हम भिक्षुक नहीं हैं। दक्षिणा लेना हमारा काम नहीं है। हमे तो दूसरों को दक्षिणा देनी चाहिए। बेचारे भट्ट लोग जो कि वेद-विद्या सीखते हैं और धार्मिक कार्य करते रहते हैं, उनके पास खेत-पात भी नहीं होता। उनके लिए केवल दक्षिणा लेना ही आय का साधन है।"

यह सुन मैंने कहा "परन्तु हमारे गॉव के वे पांडु भट्टजी तो बहुत बड़े धनाढ्य हैं। उन्हें क्यों दक्षिणा लेनी चाहिए? वे तो साहुकारी लेन-देन भी करते हैं और उनके खेती-बारी भी है।"

माता ने उत्तर दिया "यह उनका दोष है। पहले जब भट्ट लोगों को अधिक दक्षिण मिलती थी तो वे गरीबों को बाँट देते थे; या फिर गरीब लड़को को अपने घर रखकर पढ़ाते थे। तूने उस "पाण्डव-प्रताप" ग्रंथ में नही पढ़ा कि नल राजा ने ब्राह्मणों को खूब धन दिया; किन्तु उन्होंने मार्ग मे ही वह दूसरो को बाँट दिया। ऋषि-मुनियों के आश्रम में भी अनेक ब्रह्मचारी रह कर वेदाभ्यास करते थे। किन्तु यहां हमारी गणना सद्-गृहस्थों मे होती है। हमें कभी दक्षिणा नहीं लेनी चाहिए। अब भूल कर भी किसी के सामने मत फैलाना। अरे, रोहिदास ने तो प्याऊ का धर्मार्थ पानी तक नहीं पिया। गृहस्थ का धर्म है कि गरीबों को दान दे किन्तु दूसरों से ले कभी नहीं।"

इसके बाद माता ने वे दो आने हमारे पड़ौस में रहने वाले एक गरीब को दे डाले। मित्रों! हम दूसरों से जितना भी बिना श्रम का पैसा लेते हैं; उतने ही हम उनके दबैल बन जाते हैं। हमारा सिर उनके सामने झुका हुआ रहता है। हम दूसरों का मुँह ताकने वाले बन जाते हैं। इस प्रकार दूसरों के आश्रित हो कर जीना पाप ही है। इसी प्रकार अभिमानी बन कर उन्मत्तता से जीना भी पाप ही है। संसार में किसी के दबैल हो कर

रहना बहुत बुरा है। युरोप आदि देशों मे स्वाभिमानी वृत्ति रखना बचपन से ही सिखाया जाता है। इसी लिए वहां माँ-बाप के पैसे पर जीना भी हीनता का लक्षण समझा जाता है। अमेरिका के प्रेसिडेण्ट हूवर के विषय मे कहा जाता है कि; उन्होंने अपने तेरह वर्ष के लड़के को मजदूरी करने के लिए भेज दिया था। एक ओर मि० वर महान् सपत्ति-शाली राष्ट्र अमेरिका के प्रेसिडेण्ट थे; और दूसरी ओर उनका वह तेरह वर्ष का लड़का एक देहाती सुतार के हाथ नीचे काम कर रहा था। एक ऊची इमारत बन रही थी, और उसी पर से काम करते हुए प्रे० हूवर का लड़का नीचे गिर कर मर गया! यद्यपि इस घटना से हूवर साहब को बहुत दुःख हुआ; परन्तु फिर भी उन्होंने यही कहा कि 'मेरे राष्ट्र (देश) को स्वावलम्बन और परिश्रम की महत्ता सिखलाने के लिए ही लडका मरा है।"

स्वावलम्बन पश्चिमी-शिक्षा के लिए आधार-स्तभ रूप है। स्वावलम्बन से ही सिर ऊचा रहता है। परावलम्बी का सिर हमेशा नीचे झुका हुआ ही रहेगा। इस लिए आवश्यकता अब इस बात की है कि बिना परिश्रम के किसी को कुछ न मिल सके; और कोई बिना श्रम के किसी को कुछ दे भी नही। सत तुकाराम कहते है कि "तुका म्हणे देतो; घेतो तोही नरका जातो।" अर्थात् जो किसी को (बिना श्रम के) कुछ देता है वह, तथा लेने वाला दोनों ही नर्क में जाते हैं। क्योकि आलसी मनुष्य का पोषण करने वाला भी पापी होता है और आलसी तो पापी होता ही है। किसी भी आलसी को हम जब कुछ देते हैं तो वह अत्यंत दीन हो कर याचना करता है; और हम जरा ठसक में रहते है। इसके विरुद्ध यदि उससे कुछ परिश्रम या काम करवा लिया जाय तो वह दोनों के लिए सन्तोष-कारक हो सकता है। चाहे उससे लकड़ चिरवालें या गड्ढा खुदवालें, अथवा कपडे धुलवालें या बोझा उठवाले। किन्तु बदले में उससे कुछ न कुछ काम अवश्य करवा लेना चाहिए। इसी में उस मनुष्य का यथार्थ उद्धार है। उद्योग-हीन का पोषण करना ईश्वर के अपमान करने जैसा है। क्योंकि उसको दिए हुए हाथ-पाँव का, बुद्धि या शक्ति का इसमें प्रत्यक्ष अपमान होता है। स्वावलम्बन, स्वाभिमान और परिश्रम की महत्ता आज रशिया (रूस) में सिखलाई जा रही है। हाल ही मे एक अमेरिकन

मानसशास्त्र रशिया जा कर लौटा है। उसकी इस यात्रा का उद्देश वहा की परिस्थिति और अन्तर्बाह्य परिवर्तित अवस्था का अध्ययन करना था। इस लिए वह अपने साथ मजदूरों को बाँटने के लिए फाउण्टेन पेन, चाकोलेट की गोलियाँ, कैंची, चाकू आदि कई चीजे ले गया था। किन्तु जब वह मजदूरों के महल्ले में जा कर उन्हे ये सब चीजे बाँटने लगा; तो किसीने भी उसके सामने हाथ नहीं फैलाया और न किसी ने कोई वस्तु ली ही। उसने उस लोगों से कहा कि "भाईयो! मैं ये सब चीजे केवल प्रेम-भाव से दे रहा हूं, इस लिए आप को लेना चाहिए।" किन्तु उन मजदूरों ने यही उत्तर दिया कि "अपने परिश्रम से ही हमे ये वस्तुएँ प्राप्त करना उचित है। बिना श्रम के दूसरे की दी हुई किसी भी वस्तु को लेने से मन में आलस्य, दर्बल-वृत्ति और परावलम्बन का भाव जाग्रत हो सकता है। किन्तु इन दुर्गुणो को हमने अपने पास तक न फटकने देने का निश्चय कर लिया है।

इस उत्तर से वह अमेरिकन मनोवैज्ञानिक चकित हो गया। उसने देखा कि रूप में आज कैसी विचार-क्रांति हो रही है। जिस रशिया मे दी हुई वस्तु लेने को हजारों हाथ सामने बढ जाते थे, आज वहां एक भी हाथ सामने नहीं आ सका! यह कितना महान् स्वावलम्बन! कैसा दिव्य तेज और कितने भव्य रूप में श्रम की पूजा है!

श्रम करने मे ही आत्मोद्धार है और मुफ्त देने या लेने में पतन। जिस दिन यह सिद्धान्त भारत-संतान हृदयंगम कर लेगी, वही उसके उद्धार का सुदिन होगा। इस समय घर मे और बाहर एवं शाला और समाज मे सर्वत्र यहि उपदेश दिया जाना चाहिए। जूँठा किसी को दिया ही न जाय, इसके लिए धर्म का कठोर नियम बन जाना आवश्यक है। सच्चा धर्म परिश्रम की भावना को उत्तेजन देना ही है। आलसी बनकर भीख माँगनेवाला और धनाढ्य होने से गद्दी पर लोटनेवाला दोनो ही कीडे है, निंदनीय है। क्योंकि धनिक भी दूसरे के परिश्रम पर जीता है और आलसी या भिखारी भी दूसरे की कमाई पर ही पेट भरता है। ये दोनों ही समाज-रूपी वृक्ष पर की चिमगादडों के समान हैं। गर्मी-सर्दी या भूख-प्यास मे काम करनेवाला मजदूर या रास्ता झाडनेवाला मेहतर; अथवा मल-मूत्र उठानेवाला भगी, मरे हुए पशुओ को चीरनेवाला चमार या

जूते बनाने वाला मोची ये सब मुफ्तखोरों की अपेक्षा हजार दर्जे श्रेष्ठ है, पवित्र है। इस लिए किसी न किसी उपयोगी वस्तु का निर्माण हमें अवश्य करना चाहिए। चाहे विचार का निर्माण करे या अन्न-जल अथवा स्वच्छता का; किन्तु कुछ मंगलकारी, सुन्दर एवं हितकर निर्माण अवश्य करना चाहिए, तभी हमें संसार में जीने का अधिकार हो सकता है। क्योंकि जिस देश में समाज-संवर्धक, समाज-रक्षक और समाज-पोषक श्रम की पूजा होती है, वह राष्ट्र अवश्य वैभवशाली होता है और शेष सभी भिखारी बनते हैं।

मेरी माता ने मुझे स्वाभिमान सिखाया और परावलम्बी होना मृत्युवत् बतलाया। उसने सिखाया कि "दूसरों से लो मत, बल्कि दूसरों को जो कुछ हो सके उचित श्रम ले कर देते रहो।"

१५ स्वर्गीय-स्नेह

हमारी माँ श्रीखण्ड की टिकिया (वर्फी) बनाना बहुत अच्छा जानती थी। उसके हाथ से कभी कोई पाक (चाशनी) बिगडने नहीं पाती थी। उसके हाथ की बर्फियाँ खस्ता और स्वादिष्ट बनती थी। इस लिए उसे प्रायः अडौसी-पडौसी वर्फियां बनाने बुलाया करते और माता भी बडे प्रेम से जाती थी। क्योंकि उसे किसी भी रूप में दूसरे के उपयोग में आ सकने में आनंद होता था।

पार्वतीबाई की लडकी वेणू नैहर आई थी और मेरी माता से पार्वतीबाई का घनिष्ट प्रेम था। वेणू भी अनेक बार हमारे यहां आती और माता उससे गीत सुना करती थी। एक दिन जब माता मुझपर बहुत क्रुद्ध हुई तो वेणू ने ही मेरे आँसू पोंछे थे। इस प्रकार वह मेरे लिए बडी बहन की तरह बन गई थी।

उस दिन पार्वतीबाई ने आ कर कहा "यशोदा बहन, परसों वेणू ससराल जायगी। मैं सोचती हू कि उसके साथ थोडी-सी श्रीखण्ड की

बर्फियाँ भी दे दूं। क्या कल तीसरे पहर आ कर तुम बर्फियाँ बना दोगी? तुम बहुत अच्छी बर्फियाँ बनाती हो। उसकी सुसराल भेजना हैं, इस लिए यदि वे अच्छी हुई तो इसमे हमारे लिए अच्छाई है।"

माता ने कहा "मैं अवश्य आऊगी बहन! परसों ही वेणू सुसराल चली जायगी क्या? मैं तो समझी वह संक्रान्ति तक रहेगी। मेरा भी उसके आने से कुछ मनोरजन हो जाता था। वह मेरे पास आकर बातें करती और गीत भी सुनाती रहती थी।"

इस पर पार्वतीबाई ने उत्तर दिया "उसके श्वसुर का पत्र आया है कि भेज दो! बहन, लड़की एक बार सुसराल चली जाने बाद फिर वह हमारी थोड़े ही रह जाती है। चार दिन के लिए आ गई यही बहुत है। उस कृष्णा को सुसराल वाले दो वर्ष हो जाने पर भी नैहर नहीं भेजते। उसकी माता उस दिन बेचारी रोने लगी थी, उससे तो वेणूकी सुसराल वाले अच्छे हैं! हा, तो कल अवश्य आना। वेणू को तुम्हें बुलाने के लिए भेजूगी; अच्छा! अब मै जाती हू।"

माता ने उनके मस्तक पर कुकुम लगाया और पार्वती मौसी विदा हुई। दूसरे दिन दो-पहर का भोजन हो जाने के बाद माता की तबियत कुछ ठीक नहीं थी। जैसे-तैसे चौका-वर्तन कर के वह बिस्तरे पर पड़ी हुई थी। मैने पूछा "माँ, आज अभी से कैसे सो गई?"

उसने कहा "श्याम, मेरा शरीर दर्द करता है। क्या थोड़ी देर दावेगा? यह सुन तत्काल ही मैं उसका शरीर दबाने लगा। उसका सारा शरीर गर्म हो रहा था और सिर मे भी जोरों का दर्द था।

किन्तु थोड़ी ही देर के बाद मैं तो खेलने चला गया। इधर पीछे से वेणू माता को बुलाने आई। उस समय माँ सोई हुई थी। वेणू ने आते ही मधुर स्वर में कहा "चलती हो न मौसी! माँ तुम्हारी बाट देख रही है।"

माता ने बिस्तर से उठते हुए उससे कहा "वैसे ही जरा लेट गई थी, सो आँख लग गई। मैं भूली नही थी वेणू! अभी कुछ देर में आने ही वाली थी! अच्छा, चल!"

माता ने वेणू के घर जा कर बर्फियाँ बनाना आरम्भ किया। साथ ही इधर-उधर की बाते छिड गई! मैं खेलकर जब घर लौटा तो देखा कि

माता वहां नहीं है। इस लिए उसे खोजने लगा। अन्त में वेणु के घर पहुँचा। मुझे आँगन में देखते ही उसने कहा "क्यों श्याम! माँ को ढूंढने आया है! आओ; मौसी यहीं है। वे मेरे लिए बर्फियाँ बना रही हैं मैं कल सुसराल जाने वाली हूं, समझा!"

उसके मुँह से सुसराल जाने की बात सुन मैंने कहा "तो बहन, फिर मेरे आँसू कौन पोछेगा? माँ के नाराज होने पर मेरा बचाव कौन करेगा?" और सचमुच ही मुझे उसके सुसराल जाने की बात सुनकर बड़ा दुःख हुआ।

उसने कहा "आओ, श्याम! हम बर्फी के लिए केसर घोटकर तैयार कर लें; नहीं तो इलायची छीलकर उनके दाने निकाल और मैं इसे घोट देती हू। इस प्रकार मैंने वेणू के काम में हाथ बँटाया। उसने खल मे केसर घोट कर तैयार की और मैंने इलायची छीलकर चूर्ण कर दिया।

इसके बाद मुझे देखकर माता ने पूछा "श्याम! तू यहां कैसे आगया रे?"

मैंने तत्काल उसके पूछने का रुख पहचानकर कहा "मैं कोई बर्फियाँ चखने नहीं आया हूं। क्यो वेणू जीजी, क्या मैं ऐसा लालची हूं? उस दिन भी तूने ही मुझे खाने की चीज दी थी; मैंने माँगी तो नहीं थी न?"

वेणू ने कहा "नहीं श्याम! तू बड़ा अच्छा भैया है। मौसी तुम इस पर व्यर्थ नाराज मत हो जाया करो!"

माँ ने कहा "वेणू! क्या वह मुझे प्यारा नहीं है! किन्तु किसी समय यदि मैं नाराज हो जाती हूं तो वह इसके भले के लिए ही तो होती हू। दूसरा कोई इसे बुरा न कहे, इस लिए माँ के नाते मैं कभी दो बात कड़ी भी कह देती हू। यह जो भी भला है, किन्तु मैं तो यही चाहूंगी कि यह और भी अच्छा बने। हां, पार्वती बहन! अब चाशनी तैयार हो गई; देखो ये गोलियाँ भी बनने लगी।"

थालियों में बर्फियाँ थापी जाने लगी। माँ केल के पत्ते से उन्हें थाप रही थी। पांच ही मिनट के बाद ठण्डी हो जाने पर माता ने चाकू

से उन्हें काटना आरम्भ किया। और कहा "थोडी देर में इन्हें निकाल लेना। अब मैं घर जाती हूं।" इस पर वेणू बोली "जरा देर और ठहरो न मौसी! तुम्हारे ही हाथ से सब कुछ हो जाने दो।" माँ इन्कार न कर सकी और थोडी ही देर के बाद उसने खोंचे से बर्फियाँ अलग-अलग कर के निकाल ली। बडी सुन्दर बनी थी वे। पार्वती मौसी ने उन्हें एक डिब्बे मे भर दिया और वेणू ने एक बर्फी देवता के सामने ले जा कर रख दी तथा दूसरी मुझे दी। तब तक मौसी ने कहा "श्याम, ले यह थालियाँ खरोंच कर खा ले।" मैं भी वीर पुरुष की तरह आगे बढ़ा और थोडी ही देर मे थालियों को खरोंच कर बचत-खचत का सब माल साफ कर गया। चलते समय मौसी ने मेरी माता के हाथ में चार बर्फियाँ रख कर कुकुम लगाने के बाद उसे बिदा किया।

किन्तु मैं अभी वेणू के घर ही बैठा था। उसने कहा "श्याम! तेरे कुर्ते का बटन टूट गया है; इसे निकाल दे तो मैं दूसरा बटन लगा देती हूं।" यह सुन तत्काल ही मैंने कुर्ता खोलकर उसे दे दिया। उसने भी उसी क्षण अपनी थैली मे से सुई-धागा निकालकर बटन लगाया और दूसरी जगह जहा वह फटा हुआ था, सी दिया। मैंने कुर्ता पहना। इसके बाद वेणू ने कहा "चल श्याम! हम गुलदाउदी के फूल तोड़कर तेरे घर मौसी के पास ले चलें।"

हमने फूल तोड़े और उन्हे ले कर घर पहुँचे। मेरे साथ वेणू भी थी। घर आते ही उसने "मौसी" कह कर पुकारा। किन्तु कोई उत्तर नहीं मिला। इस लिए सोचा कि माता घर मे नहीं है। तब क्या वह कुए पर गई होगी; या गौशाला में तो नहीं चली गई? किन्तु जब भीतर जाकर देखा तो वह बिस्तरे पर अचेत पडी हुई थी!

वेणू ने कहा "अरे, तुम तो सो गई मौसी! क्या तुम्हारा जी अच्छा नहीं है? या चूल्हे के पास बैठने से कुछ तकलीफ हो गई है?" इसके बाद जब उसने माँ के सिर पर हाथ रखकर देखा तो वह आग-सा गर्म हो रहा था। उसने खिन्न हो कर कहा "मौसी! तुम्हें तो बहुत जोर का बुखार चढ़ा है!"

यह सुन मैं बोला "वेणू जीजी; माँ तो दो-पहर बाद से ही जी

अच्छा न होने के कारण लेट गई थी। उसी समय मैंने इसका शरीर भी दबाया था। ''

इसपर वेणू ने पूछा ''तो क्या जब मैं तुम्हे बुलाने आई, तब भी तुम्हारा जी अच्छा नहीं था? कदाचित् इसी लिए तुम लेटी हुई थीं। मुझे क्या मालूम था कि ऐसी बात है और तुमने भी ऐसी कोई बात नहीं कही। मौसी! तुम शरीर में बुखार रहते हुए भी क्यों वहां तक आई? और आकर भी क्यों इतनी देर चूल्हे के पास रहीं? ''

माता ने प्रेमपूर्वक कहा '' वेणू! उस समय मुझे इतने जोर का बुखार नहीं था। वैसेही शरीर कुछ दर्द करता था। श्याम! उठो, बेटा दीपक जलाओ; शाम होगई। ''

तत्काल उठ कर मैंने दीपक जलाया और देवता एवं तुलसी को दिखाया। इसके बाद मैं फिर माँ के पास आ कर बैठ गया! वेणू को अपनी भूल पर बहुत बुरा लग रहा था। उसने भरे हुए कंठ से कहा '' मौसी, तुमने भरे बुखार में मेरे घर चल कर बर्फियाँ बनाई और इससे बुखार बहुत बढ गया। जी अच्छा नहीं था तो क्यों इतना कष्ट सहन किया! बर्फी न बनती तो न सही। माँ ही जैसे-तैसे बना लेती। प्राणों से भी क्या वे अधिक थीं? ''

किन्तु फिर भी मेरी प्रेममयी माता ने यही कहा कि ''वेणू! इतने ही बुखार से तू घबरा गई? यह तो मामुली बात है। नित्य ही ऐसा हो जाता है। हम बुढ़ी माताओं का कुछ नहीं बिगड़ता! शरीर में बुखार हो और सिर भी दर्द करता हो, भी कपड़ों की बडी-सी गठरी ले कर हम धोने चली जाती हैं। उसी हालत में हम दस आदमियों की रसोई भी बना सकती हैं। इसके लिए तुझे इस प्रकार दुखी नहीं होना चाहिए। अभी थोड़ी देर में पसीना आ जाने पर शरीर हल्का हो जायगा। अब तू भी घर जा, बहन वहां तेरी प्रतीक्षा कर रही होगी। ''

किन्तु वेणू माता के पास ही बैठी रही। वह घर नहीं जाना चाहती थी। मैंने उसके कहा '' वेणू जीजी! उन फूलों की माला बनाती हो! माँ को तो बुखार चढ़ा है, तुम्ही बना दो तो अच्छा हो। ''

यह सुन उसने माला तैयार करते हुए फिर माता से कहा "मौसी! मेरे कारण ही यह कष्ट सहना पडा और बुखार भी आ गया, क्यों?"

माता ने कहा "अरी पगली जैसी क्या बातें करती है! क्या तू मेरे लिए पराई है? जैसी चंद्रकला है वैसी तू है। यदि बर्फियाँ अच्छी न बनती और तेरी सुसराल वाले बुराभला कहते तो तुझे दुःख न होता? नैहर के लोगों को दोष दिया जाने पर तेरी आँखो में आँसू आये बिना नहीं रहते? इसी लिए मैं वहां आई थी कि सुसराल मे नैहर वालोंकी बुराई सुन कर दुखी होने का तेरे लिए अवसर न आ सके। पार्वतीबाई के साथ मेरा बहन से अधिक प्रेम है। इस लिए यदि उनके आग्रह पर मैंने तेरे लिए थोड़ा-सा कष्ट भी सहन कर लिया, तो क्या अहसान किया? जैसे तुझे श्याम पराया नहीं जान पडता, उसी प्रकार तू भी मेरे लिए कोई दूसरी नहीं है। और, इसमे कष्ट ही क्या हुआ? उल्टा मुझे तो सतोष ही होता है। क्योंकि यदि मैं बर्फियाँ बनाने ने आ सकती तो यह बात बराबर मेरे हृदय में खटकती रहती! अच्छा, अब तू घर जा। मैं सबेरे आऊंगी। रात मे पसीना आ कर बुखार उतर जायगा। सबेरे बिल्कुल ठीक हो जाऊंगी।"

यह सुन वेणू जीजी ने मुझे प्रेम से अपने पास बुला कर कहा "श्याम! तूं मेरे साथ चल। माँ ने चौले की फली भूनी हैं सो थोड़ी सी तेरे हाथ भेज दूंगी। इससे यदि मौसी ने केवल भात ही बनाया होगा तो भी काम चल जायगा। नहीं तो मैं ही भात चूल्हे पर रखे जाती हूं।"

माता ने कहा "वेणू! भात तो यह श्याम रख देगा। तू तो उसके साथ कुछ लगावन या चटनी भेज दे; बस उससे काम चल जायगा।" फिर भी उसने माता की बात न सुनी और चूल्हा सुलगा कर चावल धोया, इसके बाद अदहन् आते ही उसमे चावल डालकर वह घर चली गयी। मैं भी उसके साथ गया ही और चौले की चटनी ले कर लौट आया। आते ही मैं माता के गले में हाथ डालकर उसकी ओर देखने लगा। मेरे नेत्रों में आँसू आ गये थे। माता ने पूछा "क्या हुआ? बेटा श्याम!"

मैंने कहा "माँ, वेणू कहती थी कि 'श्याम! तेरी माता बड़ी उदार है! तू हमेशा उसकी आज्ञा को मानते रहना! तेरा बड़ा भाग्य है जो

ऐसी माँ तुझे मिली।' यों कह कर उसने प्रेम से मेरी पीठ पर हाथ फिराया और उसी समय मुझे ऐसा रोना आया कि मैं अबतक अपने आप को नहीं सम्हाल सका हूं।"

"जा बेटा! भात तैयार हो गया होगा उसे उतार कर नीचे रख दे नहीं तो पैंदे में लग जायगा।" माता की आज्ञानुसार मैंने जा कर भात का तपैला नीचे रख दिया। दूसरे दिन वेणू जीजी सुसराल चली गई। हम सब को बहुत बुरा लगा। वे श्रीखण्ड की वर्फियाँ आज भी याद आती हैं। वेणू की माता और मेरी माता दोनों ही चली गईं और अब तो वेणू भी इस संसार में नहीं रही। किन्तु उनका वह प्रेम आज भी मेरे अन्तःकरण मे सचित है। वह अमर है। "मनुष्य मर जाते है, किन्तु उनके सद्‌गुण सदैव जगमगाते रहते हैं।"

१६ रघुपति राघव राजाराम

बचपन में मैं देवी-देवता की बहुत भक्ति करता था। अनेक पुस्तके पढ़कर मेरे हृदय में भक्ति का जो बीज अंकुरित हुआ था, वह धीरे-धीरे पढ़ रहा था। पाठशाला के लडके मेरे घर आते और मैं उन्हे देवी-देवताओं तथा सत-महात्माओ की कथाएँ सुनाया करता था। मैंने अपने लिए खेलने को एक छोटा-सा देवालय बना कर उसे अच्छी तरह से वेलबुटे एवं कागज आदि से सुसज्जित कर लिया था। उसमें मैंने शालिग्राम की सुन्दर बटिया (शिला) स्थापित की थी। मेरे वे देवता बडे तेजस्वी दिखाई देते थे; और इसी लिए कभी-कभी मेरी इच्छा भी 'चंद्रहास' की तरह उस शालिग्राम की बटिया को हमेशा मुँह मे रखने की होती थी।

रविवार को छुट्टी होने पर मैं अपने मित्रो के साथ बहुत देर तक भजन किया करता; और कभी-कभी हम लोगों के कथा-कीर्तन भी हो जाते थे। हमारे पास मृदग या तबला-पेटी तो थे ही नहीं; इस लिए घर में पड़े

हुए खाली टिन के डिब्बे ले कर उन्हीं को जोरों से बजाते और भजन गाते रहते; यहाँ तक कि हमारे भजन से सारी गली गूँज उठती।

रघुपति राघव राजाराम। पतित पावन सीताराम॥
हरे राम हरे राम रामराम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्णकृष्ण हरे हरे॥

आदि कितनी ही नाम-स्मरण की ध्वनियाँ उच्चारण करते हुए हम नाचने लग जाते थे। इसी प्रकार अन्यान्य भक्तजनों की पुकार के भजन भी जो-जो हमें याद थे, हाथ जोड़ कर करुण-स्वर में गाते रहते थे:—

नाथ कैसे गज को फन्द छुड़ायो*!
गज अरु ग्राह लड़े जल भीतर लड़त-लड़त गज हार्यो।
तिलभर सूंड रही जल बाहर, तब हरिनाम उचार्यो॥१॥
भक्त के हेत गरुड़ वाहन तज, नंगे पाँवहि धाये।
चक्र-सुदर्शन काट ग्राह सिर, जन के प्राण बचाये॥२॥
हिरनाकुश, प्रल्हाद-पुत्र को, मारन-हित जब धायो।
खंभ फाड़ि नरसिंह रूप धरि, भक्त हृदय हरि लायो॥३॥
कौरव सभा बीच दुःशासन, द्रुपद-सुता धरि लायो।
साड़ी खींच उघारी कीन्ही, तब हरि चीर बढ़ायो॥४॥
पाण्डव-रक्षा हेतु युद्ध मँह, अर्जुन मान रखायो।
सारथि बनिकै रथहू हॉक्यो, कौरव-वंश हरायो॥५॥
गोपी-जन-मन-रंजन-हित हरि उद्धव सखा पठायो।
यादव कुल मर्याद पालि प्रभु, ब्रज को प्रेम बढ़ायो॥६॥

---

* गजेन्द्राची ऐकून करुणा। सत्वर पावलासी जगज्जीवना।
प्रल्हादरक्षका मनमोहना। पावे आतां सत्वर॥
द्रौपदीलज्जानिवारणा। पाण्डवरक्षका मधुसूदना।
गोपीजनमानसरंजना। पावे आतां सत्वर॥
अनाथनाथा रुक्मिणीवरा। भीमातीरवासी विहारा।
जगद्वंद्या जगदुद्धारा। पावे आतां सत्वर॥

पत्र पाय रुक्मिणी प्रिया को, दलबल सह तुम आये।
रथ विठाई ले गये द्वारिका, पटरानी पद पाये ॥ ७॥
हे जन-रक्षक मधुसूदन, तव माया भेद न पायो।
हे जगदीश, अनाथ-नाथ हे, विनय सहित सिर नायो ॥८॥

इत्यादि भजन मुझे आज भी याद है और ये अब भी मेरी आत्मा को, चित्त-वृत्ति को, गद्गद् कर देते हैं।

यद्यपि उस समय मैं बहुत बड़ा नहीं था। पांचवीं कक्षा में पढ़ता था। और अवस्था भी यही कोई दस-ग्यारह वर्ष की रही होगी। किन्तु भक्ति-भावना की दृष्टि से मैं आज की अपेक्षा उस समय बहुत बड़ा था। उस समय न किसी बात की शंका थी और न कोई संदेह। मधुर, श्रद्धायुक्त, भावपूर्ण भक्ति का मेरे हृदय में भंडार भरा था। निर्मला, देवशयनी, देवोत्थानी और मोक्षदा आदि अनेक एकादशियों के व्रत मैं नियम-पूर्वक करता; संध्या, गायत्री एवं भगवन्नाम का जप, वैशाख, कार्तिक और माघ का स्नान आदि भी मैं यथा-नियम करता था। "कथासारामृत" नामक ग्रंथ में इन स्नानों का बहुत महत्त्व बताया गया है। उसमें एक स्थान पर लिखा है कि स्नान कर के शिखा (चोटी) को दाहिनी ओर निचोड़ने में वह जल अमृत हो जाता है। एक राजपुत्र के मुख में किसी तपस्वी ब्राह्मण ने इस प्रकार अपनी शिखा का जल दाहिनी ओर से निचोड़ कर उसे जिला दिया था। यह कथा पढकर मुझे इस सिद्धान्त की सत्यता पर विश्वास हो गया। इसी लिए एक दिन हमारे गाँव में रात को एक मनुष्य की मृत्यु हो जाने पर मैंने माँ से पूछा कि "यदि मैं भी प्रातःकाल उठकर स्नान-कर लूं और अपनी चोटी का जल दाहिनी ओर से उस मुर्दे के मुँह में निचोड़ दूं तो क्या वह बेचारा जी उठेगा?" मेरी इस विचित्र बात को सुनकर माता हँसी और कहने लगी "श्याम तू तो निरा पागल है।"

मैं आज नहीं बता सकता कि, उस समय की वह भोली श्रद्धा अच्छा थी; या वर्तमान संदिग्ध और तर्क पूर्ण मनोवृत्ति। परन्तु इन बातों को जाने दीजियें। मैं आज जो कहानी सुनाने वाला हूं वह कुछ और ही है।

चातुर्मास में हमारे गाँव के गणपति-मंदिर में प्रतिदिन कथा

होती रहती थी। बाहर से एक शास्त्रीजी आते और चार महिने तक वे हमारे गाँव में रहते थे। शाम को चार-साढ़ेचार बजे कथा आरम्भ हो जाती थी। गणपति मंदिर हमारे घर से निकट ही था। उन दिनों हम नानी के घर मे ही रहते थे। अतः यदि कथा जोरो से होती तो सामने हमारे घर में साफ सुनाई देती थी। कथा मे दस पांच पुरुष और पंद्रह-बीस स्त्रियाँ आती थी।

उस दिन रविवार था। मंदिर में कथा हो रही थी। माँ कथा सुनने चली गई थी। किन्तु वहां प्रायः वह अधिक देर नहीं बैठती थी। कुछ देर कथा सुनने के बाद देव-दर्शन कर के वह घर लौट आती थी। इस लिए उस समय घर में दूसरा कोई नहीं था, हम सब लड़के ही वहां एकत्रित थे। सबने मिल कर भजन करने का निश्चय किया और घर में से खाली टिन् के डिब्बे निकाल कर उनकी ताल पर भजन का रंग जमाना आरम्भ किया। हम लोग गाते-गाते नाचने लग गये। डिब्बो का वह कर्कश-स्वर भी भक्ति-भाव की धुन में ठीक ताल से बजने के कारण हमें बड़ा ही प्रिय जान पडता था। बचपन में प्रायः सभी स्वरों में संगीत का आनंद प्राप्त होता है। बच्चों को डिब्बे कूटने मे आनंद प्रतीत होता है; और बड़ो को उसीसे उकताहट होने लगाती है!

" श्रीराम जयराम जयजय राम "

के घोष से हमने सारे घर को गुँजा दिया। हम सब मस्त हो कर जोरों से गाने लगे—

षड् रिपु से हम करते कुश्ती। है चढ़ी प्रेम की मदमस्ती,*
हां चढ़ी प्रेम मदमस्ती, रे चढ़ी प्रेम की० ॥

इस प्रकार हमारे कोलहल से देवालय की कथा मे बाधा पडने लगी। शास्त्रीजी की कथा किसी को भी ठीक तरह पर नहीं सुनाई देती थी। इससे चिढ़ कर एक व्यक्ति ने कहा "कैसे बदमाश लड़के हैं!"

---

* **प्रभुसवें लढूं आम्ही कुस्ती। प्रेमाची चढली मज मस्ती रे,**
प्रेमाची चढली मज मस्ती ॥

"यह सब उस श्याम की शरारत है। यहां कथा हो रही है, यह बात क्या उसे मालूम नहीं है?—किन्तु घर के लोगों को यह सब कैसे सहन होता है? वे क्या इनको बन्द नहीं कर सकते।"..."अरे, भाई आज-कल तो लड़कों को प्यार कर के सिर पर चढ़ाया जा रहा है।" इस प्रकार विभिन्न श्रोताजन मंदिर में चर्चा करने लगे। किन्तु उधर हमारा भजन उतने ही जोर-शोर से चल रहा था। हमें आसपास के जगत का भान ही नहीं रह गया था।

तत्काल ही मंदिर मे बैठे हुए श्रोताओंने वहां के परिचारक साधु को आज्ञा दी कि, वह मेरे घर आकर यह हल्लागुल्ला बन्द करने को कहे; और हमें बतलावे कि मंदिर की कथा में इससे गड़बड़ हो रही है। किन्तु उसके आने से पहले ही मेरी माता मंदिर से लौट कर घर चल दी थी। वहां लोगों के मुँह से निकले हुए निंदाजनक शब्द सुनकर उसे बहुत बुरा लगा था। वह शीघ्रता से घर की ओर आ रही थी। इधर हमने हल्ला मचाकर सारे घर को सिर पर उठा रखा था।

माता के आने का हमें भान तक हुआ। वह आकर खड़ी हो गई, तब भी हम गाते और नाचते ही रहे। अन्त में उसने क्रुद्ध हो कर कहा "श्याम!" उसकी वाणी से क्रोध झलक रहा थी। मैं एकदम चौंका और भजन रुक गया। ताल और डिब्बों की मृदंग भी मौन हो गई। माता बेतरह क्रुद्ध हो रही थी।

"क्या हुआ माँ?" मैंने पूछा।

इस पर उसने उसी क्रोधयुक्त वाणी में कहा "अरे तुझे शर्म नहीं आती इस प्रकार ऊधम और हल्ला मचाते हुए!"

"माँ! क्या यह ऊधम या व्यर्थ का हल्ला है? अरी, हम तो देवता के सम्मुख भक्ति-भाव-पूर्वक भजन गा रहे थे। तूने ही तो मुझे यह शालिग्राम की मूर्ति दी है? देख तो वह कितनी सुन्दर दिखाई देती है? उसका कैसा अद्‌भुत और दर्शनीय शृंगार किया गया है। परन्तु तू तो क्रुद्ध हो गई! माँ?" मैंने अत्यन्त स्नेहभाव से उसका पल्ला पकड़ कर पूछा। इतने ही में मंदिर का वह भीका गुँसाई आकर कहने

लगा "श्याम! मंदिर में कथा हो रही है। तुम्हारा यह हल्लागुल्ला बंद कर दो; इसके कारण किसी को भी ठीक से कथा नहीं सुन पडती।"

यह सुनते ही मेरे एक साथी ने उसे दुत्कारते हुए उत्तर दिया कि "जाओ, हम बंद नहीं करेंगे। उनकी वहा कथा चल रही है तो यहां हमारा भी ता भजन-कीर्तन हो रहा है।"

इस पर माता ने कुछ शांत हो कर कहा "किन्तु श्याम, यदि कुछ धीरे भजन करो तो क्या बुरा है? और ये खाली डिब्बे क्यों बजा रहे हो? और इन झाझ-मजीरों की भी क्या आवश्यकता है? केवल जोरों से चिल्लाने से ही परमेश्वर प्रसन्न होता हो, ऐसा तो नहीं है। यदि हमारे कारण दूसरों को कष्ट होता हो तो वह भजन किस काम का?"

यह सुन मैंने कहा "किन्तु साधु-संत भी तो ताल बजा कर भजन किया करते थे।"

"परन्तु वे जान-बूझ कर दूसरों को कष्ट देने के लिए तो नहीं बजाते थे! यदि उनके कारण दूसरे को कष्ट होता तो वे तत्काल भजन बंद कर देते थे। श्याम! तुझे देवता का नाम प्रिय है या ये डिब्बे कूटना?" माँ ने पूछा।

इसपर तत्काल मैंने उत्तर दिया "ताल-मँजीरे बजाने से भजन का रंग जमता है और कोरा नामोच्चार करने से जी उकता जाता है।"

"परन्तु ताल को सम्हालने के लिए धीरे-धीरे तालियां बजाने से भी तो काम चल सकता है। किसी काम के लिए व्यर्थ हठ नहीं पकड़ बैठना चाहिए। वाद्य बजाना कोई महत्त्व की बात नहीं है। किन्तु तुम्हें तो भगवान के नाम की अपेक्षा यह हल्लागुल्ला ही अधिक प्रिय है। श्याम! भला, जिस पूजा के कारण व्यर्थ ही दूसरे को कष्ट होता हो, वह पूजा किस काम की? मेरी पूजा दूसरों के लिए बाधक न हो, मेरी प्रार्थना दूसरे की प्रार्थना मे बाधक न हो; इसका भी तो ध्यान रखना चाहिए। यदि तुम लोग धीरे-धीरे भजन करोगे तो तुम्हारा भी काम चलेगा और मंदिर में कथा भी होती रहेगी। भीकू, तू जा मंदिर में; अब ये लोग हल्ला नहीं करेंगे।" यों कहकर माता भी चली गई और भीका भी चल दिया।

इधर हमारे साथियों मे वाद-विवाद छिड़ गया। एक ने रोष मे

आ कर कहा "आगये बड़े ढुड्ढाचार्य हमारा भजन बंद कराने। उनकी कथा से तो हमारा भजन ही परमात्मा को अधिक प्रिय होगा। कथा सुननेवाले वहीं बैठकर कथा समाप्त होते ही उसी स्थान पर लोगों की निंदास्तुति करने लग जाते हैं।" इसी प्रकार दूसरे साथियों ने भी अपना-अपना मत प्रकट किया; किन्तु यह निश्चय न हो सका कि क्या किया जाय! अंत में मैंने कहा "यह हमारे हाथों भूल हुई है! आओ, अब हम धीरे-धीरे भजन गाते हुए केवल तालियां ही बजावें! जोरों से ताल-पीटने में क्या महत्त्व है?"

इसपर बापू ने कहा "श्याम! तू बड़ा डरपोक है। हमें यह पसंद नहीं।"

"किन्तु इसमें डरपोक होने की क्या बात है? विचार-पूर्वक आचार करना ही मनुष्य के लिए भूषणास्पद है। अविचार-पूर्वक आचरण करने में क्या कोई विशेष पुरुषार्थ है?" मैंने पूछा।

इस पर मुझसे रुठकर सब मित्र अपने-अपने घर चले गये। उन्हें राम-नाम की अपेक्षा डिब्बे कूटना अधिक प्रिय था। मैं अकेला ही रह गया! किन्तु क्या मैं डरपोक था? मैं ठीक निर्णय न कर सका! फिर भी रोते हुए मैं देवता के सम्मुख "रघुपति राघव राजाराम" करता ही रहा।

जैसे बाल्यावस्था में उस दिन मेरे मित्र मुझे छोड़कर चले गये, उसी प्रकार आगे बडा हो जाने पर भी मुझे मित्र लोग छोड़कर चले जाएँगे और मैं अकेला ही रह जाऊंगा। बचपन की तरह आगे भी रोते हुए राम-नाम जपता रहूंगा। महाकवि रवींद्रनाथ ठाकुर ने कहा है कि:—

"तुझे अकेला ही जाना पड़ेगा। जा, तू अपना कन्दील (दीपक) लेकर चला जा। तेरे पीछे लोगों की टीका-टिप्पणी का झंझावात छूटेगा, और तेरे हाथ में का दीपक बुझ जायगा। किन्तु उसे फिर से सुलगा कर तू बराबर आगे कदम बढ़ाते जाना। तुझे अकेला ही जाना पड़ेगा।"

१७ तीर्थयात्रार्थ पलायन

सिंहस्थ पर्व पर नाशिक मे और कन्यागत (गुरु) पर वाई क्षेत्र में बड़ा मेला लगता है। कहा जाता है कि उस समय उत्तर भारत की गंगा, दक्षिण भारतीय गोदावरी और कृष्णा से मिलने के लिए आती है। किन्तु यह एक मधुर कल्पना है। हमारे भारतवर्ष में प्रकृति के साथ भी कोमल भावनाएँ सन्निहित की गई हैं। प्रकृति को मानव-परिवार मे ही समाविष्ट कर दिया गया है। इस प्रकार जब दूर-दूर की नदियां भी अपनी एकता को पहचान कर परस्पर मिलने आती हैं; तब क्या मनुष्य के लिए भेदभाव भुला देने की आवश्यकता नहीं है? यह महाराष्ट्रीय है और वह गुजराती; अथवा यह बगाली है और वह मद्रासी या अमुक पंजाबी है और अमुक हिन्दुस्थानी, इस प्रकार के प्रान्तिक-भेद हम कितने अधिक व्यवहार में लाते है? किन्तु हमारे उन महान् पूर्वजों ने समग्र भारत की एकता को अनेक प्रकार से हमारे हृदय पर अंकित करने के लिए सुन्दर प्रयत्न किया है। अपना स्वतत्र अस्तित्व कायम रखते हुए भी मधुर मिलन किया जा सकता है। गंगा सागर से मिली हुई भी है और उसका स्वतंत्र अस्तित्व भी है। भेद में भी अभेद को देखना, यह हमारे पूर्वजों की उदार दृष्टि का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

उस वर्ष कन्यागत पर्व होने से हजारों स्त्री-पुरुष यात्रा के लिए वाई जा रहे थे। हमारा छोटा-सा गाँव पालगढ़ जो भी वाई से दूर था; किन्तु फिर भी हमारे गाँव से कई लोग बैल-गाड़िया कर के जा रहे थे। मेरे एक चचेरे नाना—मेरी माता के चाचा (काका) और उनकी पत्नी तथा गाँव के अन्य कई व्यक्ति जाने का विचार कर रहे थे। एकदम दस-बारह गाड़ियां जानेवाली थीं। पालगढ़ से खेड़ और वहां से चिपळूण, इस प्रकार बीच में मुकाम करती हुई वे गाड़ियां जाने को थीं। बीच मे कहीं जंगल में नदी-किनारे ठहरकर बेसन-भात बनाने और खाकर फिर आगे बढ़ जाने का विचार हो रहा था। इस प्रकार की यात्रा में बड़ा आनन्द रहता है। क्योंकि मोटर में बैठकर भाग दौड करने से हम प्रकृति के साथ मिल-जुल

नहीं सकते। भला, उस प्रकृति माता के पास जाकर मिनट भर खड़े रहने से क्या आनन्द मिल सकता है? प्रकृति माता की गोद में लेटने, उसके पास बैठने और क्रीड़ा करने में जो सुख प्राप्त होता है; उसका वर्णन करना असम्भव है। प्रकृति भी हमारे लिए माता के समान ही है। उस माता का जल्दी-जल्दी या भाग-दौड़ में दर्शन करने से क्या लाभ? उसके पास तो घड़ी दो घड़ी बैठना चाहिए। इसी लिए बैलगाड़ी से यात्रा करने में बड़ा आनन्द होता है; और उसमें भी रात के समय का आनन्द तो अपूर्व ही होता है। चारों ओर शान्ति छाई रहती है। वृक्षों की झुरमुट में से अचानक ही बीच बीच में तारे और चन्द्रमा झांकते हैं और बैलों के गले में बँधी हुई घण्टियों का स्वर भी उस समय बड़ा मधुर जान पड़ता है। इसी तरह कहीं अचानक ही कोई बाघ या सिंह मिल जाता है तो सब के होश उड़ जाते हैं। उसकी आग की तरह या तारों के जैसी चमकती हुई आँखें देखकर सब स्तब्ध रह जाते हैं। किन्तु फिर हिम्मत बाँधकर हल्ला करने पर बाघ जंगल में भाग जाता है; और पुनः यात्रा आरम्भ हो जाती है। ये सब अनुभव केवल बैलगाड़ियों से यात्रा करने पर ही हो सकते हैं।

बचपन में मेरे हृदय में भक्ति-भाव अधिक होने के कारण कई बार इच्छा हुई कि मैं भी इन सब के साथ वाई के यात्रा के लिए जाऊं, तो कितना अच्छा हो! इसके लिए मैं माता के भी पीछे पड़ा हुआ था। किन्तु मेरी बात पर किसी ने भी ध्यान नहीं दिया। इस लिए मुझे बहुत बुरा लगा। मैंने फिर एक बार माता से आग्रह किया कि "मुझे जाने दे न माँ! मार्ग में कहीं भी कोई हठ नहीं करूंगा। गहरे पानी में नहीं जाऊंगा और नाना जैसा कहेंगे उसी तरह से बरतूंगा। तू यदि पिताजी से कह देगी तो वे मना नहीं करेंगे! उस पुस्तक में स्नान का महत्त्व बतलाया गया है; इसी लिए मैंने माघ, कार्तिक और वैशाख मास के स्नान विधि-पूर्वक किये हैं किन्तु अब यदि तू मुझे गंगा का भी स्नान कर आने देगी तो बड़ा अच्छा होगा। क्या तू नहीं चाहती कि तेरा पुत्र यह श्याम पुण्यवान बने?"

इसपर माता ने कहा "श्याम! अरे, आज ही सब समाप्त थोड़े हो गया है! आगे जब तू बड़ा हो जाय, तब जाना गंगा-स्नान के लिए। आज

हम गरीब हैं। कुछ न हो तो भी पाच-दस रुपये तो तेरे लिए देने ही पड़ेंगे। कहां से लावेंगे ये रुपये? इस लिए माता पिता की आज्ञा ही तुझे गगा-गोदावरी और कृष्णा के समान समझना चाहिए। वह भक्त पुण्डलीक माता-पिता के चरणों को छोड़कर सामने प्रत्यक्ष भगवान के आ खड़े होने पर भी नहीं उठा। वह उनके पैर ही दबाता रहा। क्यों सच है न?"

किन्तु मैंने कहा "माँ! ध्रुव तो माता-पिता को छोड़कर चला गया था? पुराणों मे दोनो ही प्रकार के उदाहरण मिलते हैं। माँ! आगे की बात कौन जाने? अच्छे काम का विचार मन मे आते ही उसे तत्-काल कर डालना चाहिए। उसके लिए समय और मुहूर्त की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए। यह बात सत्यनारायण की कथा मे भी तो कही गई है। माँ! मैं जाऊं क्या? यदि नानाजी से कहा गया तो वे मुझे मुफ्त में ही बिनाखर्च लिये साथ ले जायँगे। वे क्या मेरे लिए पैसे मांगेगे?"

यह सुन माता ने कहा "अरे वे पैसे न ले तो यह उनका बड़प्पन है। परन्तु इस प्रकार हमें दूसरों के अहसान-मद हो कर साथ जाना क्या अच्छा दिखाई देगा? क्या दूसरों पर अपना बोझ डालना अच्छी बात है? दूसरे की जान पर देवता की पूजा नहीं की जा सकती! दूसरों के लगाये और पाल पोस कर बड़े किये हुए वृक्षों पर के फूल तोड़कर देवता को चढाने में क्या महत्ता है! हमें स्वतः परिश्रम कर के अपनी कमाई की वस्तु देवता को अर्पण करनी चाहिए। तुझे जाना ही है तो पैदल जा! है इतनी शक्ति तेरे शरीर मे?"

मैंने कहा "माँ, मै चलते-चलते थक जाऊंगा। पांच-छह कोस तो चला जाऊंगा, परन्तु उसके बाद! और तब तक गाड़ियां भी आगे निकल जायँगी! तब मेरे लिए साथी कौन होगा? अकेले में मुझे डर भी लगेगा। किन्तु गाड़ी के साथ पैदल जाना उन्हें लज्जित करने जैसा होगा! फिर तो वे मुझे गाड़ी में बिठला ही लेंगे। इस लिए उन्हें भी इस बात का पत्ता नहीं लगना चाहिए कि मै पैदल आ रहा हूं। फिर भी उनका साथ तो रहना ही चाहिए। और फिर चालीस-पचास कोस तक मुझसे चला भी कैसे जायगा?"

इसपर माता ने कहा "तब तो तू केवल ध्रुव की कथा ही कहना जानता

हैं क्यों ? ध्रुव को तो किसी प्रकार का डर नहीं लगा ! अरे, जो परमात्मा के पास जाने को निकलता है, उसे भय किस बात का हो सकता है ? सर्प और सिंह भी उसके लिए मार्ग बताने वाले बन जाते हैं; भक्षण करने वाले नहीं। वह यदि थक कर मार्ग में ही सो जाय और उसके मुँह पर धूप गिरने लगे; तो सर्प फन् फैला कर छाया करते हैं, उसे यदि प्यास लगे तो पक्षी चोंच मे पानी ला कर उसके मुँह मे डाल देते हैं। यदि भूख लगे तो गोमाता आकर उसके मुँह मे दूध की धार छोडने लगती है। देवता-परमेश्वर के घर जाने के लिए जो निकल पड़ता है, उसके सभी मित्र, सभी परिवार के और सभी साथी एव सहायक बन जाते है। है तुझ मे ध्रुव के समान श्रद्धा-भाव, और उसके जितनी दृढ़ता ? अरे पागल ! यह क्या ? तू तो रोने लग गया ! शान्त हो बेटा ! अरे, हम छोटे आदमी हैं; और अभी तू भी तो छोटा ही है। साथ ही हम गरीब भी हैं। इस लिए यह मूर्खता-पूर्ण हठ छोड दे !"

मुझे बहुत बुरा लगा। फिर भी मन मे यही सोचता रहा कि, कल सबेरे यात्रा के लिए जाने वाली मडली गाड़ियों मे रवाना होगी, अतः यदि उनके पीछे पीछे उन्हे पता न लगने दे कर चल दिया जाय तो कैसा ? किन्तु इसी के साथ-साथ ये शकाएँ भी मन मे उत्पन्न होती थीं कि; जब मैं थक जाऊ या धूप से घबरा कर बीच में बैठ जाने पर पीछे रह जाऊंगा; तब मेरी कौन सहायता करेगा ? अथवा मार्ग मे भूख-प्यास लगने पर कौन मेरी खबर लेगा ? पर फिर यह सोचता कि जब बकरी पत्ते खा कर पानी पी लेने मात्र से निर्वाह कर लेती है: तो क्या मैं मार्ग मे वृक्षों के पत्ते चबाकर नदी नाले के पानी से अपना पेट न भर सकूगा ? इस प्रकार मै इमली, करौंदी आदि की कोमल पत्तियां खाने की मन मे योजना करता रहा। विचार करते-करते रात को मुझे कब नींद आ गई, इसका पता ही नहीं लगा। किन्तु जब मैं सोकर उठा, तब तक सब गाडियां रवाना हो चुकी थीं, उस दिन शनिवार होने से पाठशाला तो थी ही। अतः मैंने झटपट शौच-मुखमार्जनादि से निपटकर फुर्ती से स्नान कर लिया। इसके बाद संध्या और सूर्य-नमस्कारादि कर के तुलसी को जल चढ़ाया और स्लेट-बस्ता ले कर पाठशाला को जाने लगा। यह देखकर माता ने पूछा

"अरे, आज इतनी जल्दी क्यों जा रहा है? मैं थोड़ासा नाश्ता (कलेवा) रखती हू. उसे खा कर स्कूल जाना। वह छोटू, बापू आदि भी तो अभी पढने नहीं गये हैं। ठहर जरा!"

इस पर मैंने नाराजी से कहा "मुझे नहीं चाहिए तेरा नाश्ता। खाने को देती है, परन्तु वाई (तीर्थ) नहीं जाने देती! मुझे वाई जाने की भूख है खाने की नही। इसी लिए मैं अपनी पाठशाला में जा कर बैठ जाता हूं।" यह सुन माता ने भी क्रुद्ध होकर कहा "फिर मांगना खाने के लिए! देखूं तब कैसे मिलता है! सभी बातें तेरे मन लायक ही होनी चाहिए। मानों कहीं का राजा ही न हो! ऐसा था तो किसी राजा के घर जन्म लेता? भिखारी के घर जन्म ले कर राजा की ऐंठ-ठसक कैसे चल सकती है? अच्छा-सा नाश्ता देती हूं तो कहता है मुझे नहीं चाहिए। तब दो-पहर को भी भोजन मत करना! बड़ा बेचारा! कहता है खाने की भूख नहीं! मैं भी देखती हू कितने दिन भूखा रहता है सो! चल! वापस लौट!! माँ की कही हुई बात तुझे ध्यान से सुननी चाहिए; समझा!"

किन्तु मैं उसकी बात न सुनते हुए चला ही जा रहा था। उस समय तक पाठशाला मे लड़के आना आरम्भ नही हुआ था। इस लिए मार्ग के गणेश-मंदिर मे जाकर मैंने साष्टांग प्रणाम करते हुए निवेदन किया "हे गजानन. मेरा मनोरथ तुम्ही पूरा करो! तुम्हीं मेरे सहायक बनो।" इसके बाद जब मैं पाठशाला के द्वार-पर पहुँचा तो वहा मुझे एक भी लड़का न दिखाई दिया। साथ ही पाठशाला भी अभी बंद ही थी।

फलतः मैं अपना स्लेट-बस्ता पाठशाला के बरामदे में रखकर चल दिया। लड़कों की दृष्टि से बचने के लिए मैं फुर्ती से जा रहा था। कुछ ही देर में मैं गाँव के बाहर आ पहुँचा। इसके बाद नदी पार कर के मैं आगे बढ चला और तिराहे पर जा कर खड़ा हो गया। वहां से तीन तरफ को अलग-अलग रास्ते जा रहे थे। एक रास्ता दापोली को जाता था और दूसरा खेड को। अतः मैं खेड वाले रास्ते से आगे बढा। किन्तु उस समय तक प्रातःकाल की निकली हुई गाड़ियाँ न जाने कितनी दूर पहुँच गई थीं! भला, उन तक मैं दस-ग्यारह वर्ष का लड़का कैसे पहुँच सकता था? मुझे उस समय अपना भान ही नहीं था। किन्तु अब तो धूप सताने लगी।

इधर थक जाने के कारण मुझे रोना भी आ गया। फिर भी वापस जाने में मुझे शर्म ही लगती थी! परन्तु यदि घर न लौटता तो जाता कहां? उस जंगल में मैं कितनी देर रह सकता था?

यही सोच कर लाचारी दर्जे में वापस लौटा। अपने गाँव की ओर कदम बढ़ाया। आँखों से आँसू टपकते और सूर्य के प्रखर ताप से वे सूख जाते थे। मानों सूर्य-किरणें ही मेरे आँसू पोंछ रही थीं। मध्य दोपहर का समय हो गया। सूर्य भी सिर पर आ गया। मैं पसीन से तरबतर हो गया। सबेरे से पेट में भी कुछ नहीं पड़ा था! फिर भी जैसे-तैसे मैं अपने गाँव के किनारे आ गया। किन्तु वापस गाँव मे घुसते हुए शर्म लगती थी। स्वाभिमान कहता था कि "गाँव में मत जा! वापस घर में पाव मत रख।" किन्तु पेट कहता था कि "सीधा घर पहुँच जा! घर जाने में किस बात का स्वाभिमान? माता-पिता को भी कहीं स्वाभिमान दिखाया जाता है? प्रेम करने वाले के सामने स्वाभिमान दिखाना उस प्रेम का अपमान करना है।"

फिर भी मुझे गॉव में घुसने की हिम्मत न पड़ी। नदी-किनारे सीतला-माता का मंदिर था। यही हमारे गाँव की मुख्य देवी थी। प्रसूता स्त्रियाँ जापे से उठने के बाद अपने बच्चे को ले कर सीतला-माता की सेवा में उपस्थित होतीं, और वस्त्र-नारियल आदि उसे भेट चढ़ाती थीं। सौभाग्यवती स्त्रियाँ जब सुसराल से नैहर (पीहर) को आती तो वे भी सीतला-माता के दर्शन करने जातीं। मै भी उसी सीतला-माता के मंदिर मे गया और उसके पीछे की ओर गहरे अँधेरे में छिप गया।

किन्तु वहा भी मैं कितनी देर तक रह सकता था? पेट में तो कौवे बोल रहे थे! अन्त को मुझे लोकलज्जा छोड़नी पड़ी और स्वाभिमान से मुँह मोडकर मै धीरे-धीरे फिर मंदिर से बाहर निकल पडा। वहा से सीधा गाँव के रास्ते पर बढ़ा। थोडी ही देर मे गॉव के घर दिखाई देने लगे। किन्तु मैं अपनी गर्दन झुकाये चुपचाप चला जा रहा था। धूप के कारण नंगे पैर चट्-चट् कर के जल रहे थे। भीतर हृदय भी जल रहा था और आँखों से आँसू टपक रहे थे। इस प्रकार मैं आगे बढ़ा जा रहा था। कभी आँखों के अत्यधिक भर आने से सामने कुछ भी

नहीं दिखाई देता था। इसी बीच किसीने आकर मेरी गर्दन पकड़ ली, और "क्योंरे! तू कहां भटक रहा है? तुझे कहां-कहां खोजा जाय? किसी दिन हमारी गर्दन मे तू फाँसी तो नहीं लगवायेगा?" इत्यादि निर्भर्त्सना-युक्त शब्द कानों पर पड़े। वे मेरे चाचा (काका) थे। गाँव मे अनेक जगह मेरी खोज हो रही थी। काका, पिता, और घर एव पडौस के सभी आदमी चारों ओर मुझे ढूढ रहे थे। पाठशाला के लड़कों ने स्लेट-बस्ता ला कर जब घर पहुँचाया; तब पता लगा कि मैं कहीं चला गया हूं।

इससे पहले दिन हेडमास्टर ने सुन्दर-अक्षर वाली कापी कुछ खराब होने से मुझे पीटा था। इस कारण उन्होने यही समझा कि मैं आज फिर पिटाई होने की आशंका से कही चला गया हू। क्योंकि वे सचमुच ही बड़े निर्दयी शिक्षक थे। निर्गुडी की छड़ियों का एक गट्ठा ही ला कर वे पाठ-शाला में रख देते और ढोरो-पशुओं की तरह लड़कों को पीटते थे। छाते की लोहे की तीलियों से भी वे लड़कों के उल्टे हाथ या उगलियों के पौरों पर मारते थे। वे गांजा पीते और नशे में धुत् होकर स्कूल मे आते थे। इसी लिए हम देवताओं से मनौती मनाया करते कि उनकी कही बदली हो जाय तो प्रसाद बॉटे। हां, तो मेरे भाग जाने से उन्हे भी बहुत बुरा लगा और उन्होंने अपने मन में यही विश्वास दृढ़ कर लिया कि पीटा जाने के कारण ही मैं घर से कहीं भाग गया हूं। इससे वे कुछ घबराये और उन्हें यह डर भी लगा कि "कहीं श्याम ने कुए में कूदकर प्राण तो नहीं दे दिया!" इधर पाठशाला की छुट्टी हो जाने पर जब पिताजी ने मेरे साथ पढने वाले लड़कों से पूछा; तो उन्होने पिछले दिन सुन्दर-लेख की कॉपी ठीक न होने से दी गई मार की सजा का हाल बतला दिया। इस लिए पिताजी भी यही समझे कि मैं मार के डर से कहीं भाग गया हूं। घर पर पिताजी नित्य-प्रति मुझे सुन्दर अक्षर के छपे खर्रे पर कोरी कलम से लिखा-वट का अभ्यास करते थे। इस प्रकार मैं अपने अक्षर सुधारने का प्रयत्न कर रहा था। अंततः पड़ौसी लोग भी कहने लगे कि "मास्टर ने व्यर्थ ही श्याम को इतना पीट दिया। लड़का न जाने कहां चल गया! अब यदि कुछ कम-ज्यादा हो जाय; अथवा जो न होना चाहिए वह हो जाय तो?" उधर लड़कों की बात सुनकर पिताजी सीधे हेडमास्टर के

पास गये, और उन्हें बहुत कुछ बुरा-भला कह डाला। इस पर हेडमास्टर ने कहा "आज से आप के लड़के को कोई हाथ तक न लगावेगा; तब तो आप को संतोष होगा! मैं तो इसी लिए उन्हें कुछ दंड देता हूं कि वे तुम्हारे योग्य पुत्र बन सकें; उनका जीवन सुधर सके। मुझे उसमें क्या मिलने वाला है? किन्तु भाऊसाहब, आज से मैं आप के लड़के को हाथ तक न लगाऊंगा।" इस पर फिर पिताजी ने कहा "हाथ तो तुम मत लगाना, परन्तु पहले उसे घर तो आने दो।"

इस दिन घर में सब लोग भूखे ही थे। भोजन बना-बनाया पड़ा हुआ था। मेरे कहीं चल देने की बात सुनते ही माता के हृदय में शंका हुई कि मैं कहीं वाई क्षेत्र जाने के लिए तो नहीं भाग गया? किन्तु फिर भी उसने यह बात किसी से नहीं कही। क्योंकि उसे यह शंका असम्भव-सी जान पड़ी। अस्तु। जब चाचाजी मेरा हाथ पकड़ कर घर की ओर ले चले; तब रास्ते में लड़कों की बड़ी भीड़ एकत्र हो गई। जिस प्रकार किसी चोर को देखने के लिए लोग इकट्ठे हो जाते हैं; उसी प्रकार मुझे देखने के लिए बहुत से लड़के इकट्ठे हो गये। मार्ग में पिताजी भी मिले। उन्होंने क्रोध पूर्वक लड़कों को ललकारते हुए कहा "जाओ अपने-अपने घर! यहां क्या कोई तमाशा है?" इस फटकार से लड़के भाग गये।

किन्तु मुझे आता देख कर न तो पिताजी नाराज ही हुए और न उन्होंने कुछ कहा ही! क्योंकि वह वक्त नाराज होने का नहीं था। मैं थक गया था, इस लिए घर आते ही बिस्तरे पर पड़ गया। थोड़ी ही देर के बाद पिताजी ने आकर कहा "श्याम! उठ भैया! अब तुझे मास्टर नहीं मारेगा, समझा! किन्तु इस प्रकार मास्टर के मारने से कोई भाग जाता है? हमारे समय में तो मास्टर लोग घोड़ी पर भी चढ़ाते थे, औंधा लटका कर मिर्ची की धूनी देते, और बेंतों से पीटते भी थे। तब, भला मार से डरने पर कैसे काम चलेगा? मास्टर तो मार-पीट करेगा ही। अरे; जो मार-पीट न करे वह मास्टर ही कैसा? चल, उठ और हाथ-पाँव धो डाल। देख तो, तेरा मुँह कैसा लाल सुर्ख हो रहा है! परोस री; इसके लिए जल्दी से थाली!"

फलतः मैंने उठकर हाथ-पैर धोये और यह सुनकर अपने मन में

सन्तोष किया कि, मेरे भागने का दोष मास्टर की मार पर टल गया। साथ ही यह भी विश्वास हो गया कि अब मास्टर मुझे बुरी तरह नहीं पीटेगा। मेरे कारण वह सावधानी से बरतेगा, और दूसरों को भी यदि सजा दी तो सोच समझ कर देगा। ये सब बाते सोच कर मुझे बड़ा आनन्द हुआ। मैं सोचने लगा-इस प्रकार मैंने दूसरे लडको पर कितना बडा उपकार किया है! अवश्य सब लडके मेरा आभार मानेंगे। बाजीराव (पेशवा) के भाग जाने से तो मराठों का स्वराज्य चला गया; किन्तु श्याम के भागने से उसकी कक्षा के विद्यार्थियों को सम्पूर्ण नहीं तो कम से कम औपनिवेशिक-स्वराज्य तो मिल ही गया! और यह सब भी श्याम के ध्यान या कल्पना तक में न होते हुए मिला!

मैं घर से क्यों भागा था, यह बात केवल तीन ही व्यक्ति जानते थे—मैं, माता और ईश्वर! शनिवार के कारण दो पहर को पाठशाला की छुट्टी थी ही; इस लिए मैं भोजन कर के सो गया। खूब थक जाने एवं कडी धूप सहने के कारण शाम को दिये लग जाने पर भी मैं सोता ही रहा। तब माता मेरे पास आकर बैठ गई और धीरेसे उसने मेरे सिर को हाथ से सुहलाया। इसके बाद स्नेह-पूर्वक पुकारा "श्याम!" और तत्काल ही मैंने आँखे खोल दीं। वह मेरे शरीर पर हाथ रखे हुए ही प्रेम-पूर्वक पूछने लगी "क्या तेरा जी अच्छा नही है श्याम! शरीर दुखता है क्या? मैंने मना किया था, फिर भी तूने नही माना?" इतना कह कर वह मेरा शरीर दबाने लगी। मैं भी अपना सिर माता की गोद में रख कर रोने लगा। किन्तु कुछ ही क्षण के बाद मैंने अपना रोना बंद कर के माँ से पूछा—

"माँ, मैंने तेरी बात नहीं सुनी। किन्तु क्या इस प्रकार मेरे भाग जाने से तू भी नाराज हो गई थी? मैं मास्टर के मारने से नहीं भागा था। क्या तू कभी-कभी मुझे नहीं पीटती है; और क्या उस मार के डर से मैं कभी भागता हूं? पिताजी ने भी यही समझा है कि मैं मार के डर से भाग गया था। किन्तु कल तूने ही कहा था कि "यदि जाना ही है तो पैदल जा! है इतनी ताकत शरीर मे?" सो मैं पैदल ही वाई जाना चाहता था। किन्तु मैं यह काम अपनी शक्ति से बाहर का कर रहा था। कहां वह बालयोगी ध्रुव और कहां यह दीन-दुर्बल

श्याम! माँ, अपने श्याम पर तू नाराज न हो, तेरा श्याम हठीला और उद्दंड है। जो कुछ उसके मन में आता है वही करने लग जाता है। किन्तु जब अपनी भूल समझता है, तब रोने लगता है। इस लिए फिर पूछता हूं कि तू मुझपर नाराज तो नहीं हुई है न? तेरी बात न मानकर और तुझे कहे बिना ही मैं चल दिया, इस पर तो तू नाराज नहीं हुई है न? बतला-दे माँ! झटपट कह दे एक बार कि "नहीं।"

इन शब्दो को सुन माता ने मेरे मुँह पर प्रेम-पूर्वक हाथ फेरकर आँसू पोंछते हुए कहा "श्याम! मैं भला क्यो तुझ पर नाराज होऊंगी? मुझे न तो क्रोध ही आया, और न तेरे चले जाने से बुरा ही लगा। केवल तेरी चिंता के कारण ही चित्त में खेद हुआ था कि तू छोटा है, रास्ते में तेरा क्या हाल होगा! यही सोचकर आँखें भर आती थीं। मैंने कल तुझसे वे शब्द कहे, इस लिए मेरे शब्द ही इस घटना के मूल कारण थे, यह सोचकर भी बुरा लग रहा था। किन्तु इस बात पर मुझे कदापि दुःख नहीं हुआ कि तूने भाग कर कोई बुरा काम किया। श्याम! तू किसी बुरी बात के लिए थोडे ही भागा था? अभी उस दिन नाटक-कम्पनी मे भर्ती होने के लिए गॉव में से किसी का लड़का भाग गया, वैसा तू थोड़े ही गया था? तू तो देव-दर्शन के लिए भाग कर जा रहा था; गंगा के स्नान के लिए भाग कर जा रहा था। भला तुझ पर मैं कैसे नाराज हो सकती हूं श्याम! तेरे लिए तो मुझे अभिमान ही होगा, और यदि मेरा श्याम भाग ही जाय तो भी मैं अभिमान-पूर्वक यही कहूगी कि 'वह देव-दर्शन के लिए गया है!' किन्तु श्याम! एक बात याद रख! इस माँ की एक बात अच्छी तरह हृदय में रख ले कि 'चोरी-चकारी या चुगली कर के कभी मत भागना, खोटी-सगति के लिए मत भागना और डर के मारे मत भागना।' यदि देव-दर्शन के लिए तू भाग कर गया तो क्या बुरा किया? सभी सन्त-महात्माओ ने यही तो किया है! अरे, अधिक तो क्या किन्तु मैं समय आने पर ईश्वर से यह प्रार्थना भी कर सकती हूं कि 'मेरा पुत्र देव-दर्शन के लिए—ईश्वरी कार्य के लिए घर से भले ही भाग जाय!' मेरे लिए तो वह दुःख नहीं, बरन्‌ सन्तोष की बात होगी।" ———

१८ स्वावलंबन का पाठ

मैंने बचपन में पोथी और पुराणादि तो बहुत-से पढ़ डाले थे, किन्तु संस्कृत स्तोत्रादि मुझे अधिक याद नहीं थे। केवल "प्रणम्य शिरसा देवं अनन्तं वासुकि शेष, अच्युत केशव विष्णु" आदि दोही चार छोटे-छोटे स्तोत्र कठस्थ थे। इनमें 'अनन्त वासुकि शेषं' वाला स्तोत्र नाग (सर्प) का है। यह स्तोत्र एकबार नाग-पंचमी के दिन मुझे नानाजी ने सिखाया था; किन्तु रामरक्षा का अद्वितीय स्तोत्र मुझे याद नहीं था। विष्णु-सहस्रनाम तो मै नित्य-प्रति पिताजी की पुस्तक पर से पाठ कर लेता था, इसी लिए वह मुझे कठस्थ हो गया था। किन्तु रामरक्षा-स्तोत्र पिताजी ने स्वयं जानते हुए भी मुझे कभी नहीं सिखाया। साथ ही रामरक्षा स्तोत्र की पुस्तक भी हमारे घर में नहीं थी। किन्तु मैं बचपन से ही राम का भक्त था, अतएव रामरक्षा-स्तोत्र न जानने पर मुझे खेद होता था!

हमारे पड़ौस मे गोविन्दभट्ट पराजपे रहते थे। उनके लड़के भास्कर के पास रामरक्षा की पुस्तक थी, और वह प्रति-दिन दो-एक श्लोक याद कर लेता था। इसके बाद शाम को वह हमारे यहां आकर वे श्लोक सुनाता; इससे मुझे बड़ी शर्म लगती और उस पर क्रोध भी आता था। अपने स्वाभिमान को चोट पहुँचाई जाने पर दुःख होना स्वाभाविक ही है। क्योंकि हम अपने आसपास वालों से अपनी तुलना किया करते है; और यदि उसमें हम अपने को हीन या गिरा हुआ पाते हैं तो हमें अवश्य ही क्रोध आता है। ऊचे आदमी देखकर जो ठिगना या वामन-रूप होता है, उसे ईर्ष्या होती ही है। इसी प्रकार दूसरे को अपने से अधिक चतुर देखकर भी हम दुःखी होते है। भास्कर को रामरक्षा स्तोत्र पाठ कर देख मुझे बड़ा खेद होता था। और वह भी विशेष-रूप से मुहारनी या स्तोत्रादि सुनाने के समय ही हमारे यहां आकर कुछ ऐंठ (ठसक) के साथ अपनी विशेषता दिखाया करता था। इसी लिए यह सोच कर कि यह मुझे जान बूझकर चिढ़ाने आता है; अधिक क्रोध होता था।

एक दिन भास्कर मुझ से कहने लगा "श्याम, अब तो मेरे दस ही

श्लोक रह गये हैं; इस लिए अब पांच दिन बाद मुझे पूरा स्तोत्र कण्ठस्थ हो जायगा। किन्तु तुझे तो यह स्तोत्र नहीं आता!" इन शब्दों को सुन मैं एकदम क्रोध के मारे चिढ गया, और झल्लाकर उस पर झपटते हुए बोला "भास्करिया! अगर फिर कभी मुझे नीचा दिखाने आया तो याद रख, अच्छा नतीजा न होगा। तुझे जो कुछ आता है सो मैं जानता हूं। मेरे सामने इतना ऐंटने की जरूरत नहीं। तेरे घर में पुस्तक है, इसी लिए क्यों? यदि मेरे पास भी पुस्तक होती तो तुझ से पहले मैं उसे याद कर लेता। बड़ा आया है स्तोत्र सुनाने वाला! जा अपने घर! फिर मत आना हमारे यहा; नहीं तो मैं अच्छी तरह ठोकूंगा।"

हमारे इस वाक्प्रहार और बोला-चाली को सुनकर घर में से माँ बाहर निकल आई और उसने भास्कर से पूछा "क्या हुआ रे भास्कर! क्या श्याम ने तुझे मारा-पीटा?"

उसने कहा "नहीं, मैंने तो इससे यही कहा था कि अब चार-पाच दिन में मुझे रामरक्षा पूरी याद हो जायगी। इसी पर चिढकर श्याम मुझे मारने के लिए झपटा और कहने लगा कि "यहां से अभी चल दे अपने घर; नहीं तो मैं तुझे ठोकूंगा।"

यह सुन माता ने मेरी ओर मुँह कर पूछा "क्योंरे श्याम, ठीक है यह बात! भला, अपने पड़ौसी से कभी कोई इस तरह का व्यवहार करता भी है? तूही कल उसके घर चार चक्कर काटेगा।"

इस पर मैंने क्रोध में ही उत्तर दिया "किन्तु यह मुझे जान-बूझकर चिढाने के लिए आता है और कहता है 'तुझे रामरक्षा स्तोत्र कहा याद है!' पूछ ले भले ही, इसने मुझ से ऐसा कहा था या नहीं? मानो यह कोई बिल्कुल सीधा-सच्चा ही है! अपनी तो कुछ कहता ही नहीं! बेईमान कहीं का।"

इस पर माता ने कहा कि "यदि इसे रामरक्षा आती और तुझे नहीं, तो इसमें इसने तुझे क्या चिढ़ाया? सच ही तो कहा! कोई हमारी कमी-त्रुटि-बतलावे तो उसपर क्रोध करने की क्या जरूरत? उस कमी को दूर करना चाहिए। भास्कर चाहता है कि तू भी झटपट रामरक्षा सीख ले,

इसी लिए वह तुझे चिढ़ाता है। जब तू 'रामविजय', हरिविजय' आदि ग्रंथ बारम्बार पढ़ता है तो रामरक्षा-स्तोत्र क्यों नहीं सीख लेता?"

मैंने उत्तर दिया "भाऊ (पिताजी) मुझे सिखलाते ही नहीं; और न मेरे पास उस स्तोत्र की पोथी ही है!" इसपर माता ने कहा "भास्कर के पास तो है न? उसे जब आवश्यकता न रहे, तब ले लिया कर। अथवा उसकी पुस्तक पर से नकल कर के भी तू स्तोत्र याद कर सकता है।"

भास्कर अपने घर चला गया और मैं वहीं बैठकर मन ही मन कुछ निश्चय करने लगा। अन्त को मैं इस निर्णय पर पहुँचा कि आगले रविवार को रामरक्षा की नकल कर ली जाय। इसी लिए कोरे कागज लेकर मैंने एक छोटी-सी कॉपी तैयार कर ली, और दवात-कलम ठीक कर के मैं रविवार की बाट देखने लगा। तीसरे ही दिन रविवार था; अतएव उस दिन प्रातःकाल ही मैं भास्कर के घर जा पहुँचा। रास्ते में मैंने सोच लिया था कि सम्भव है भास्कर अपनी पुस्तक मुझे न दे, इस लिए मैं सीधा उसकी माँ के पास गया; और अत्यंत मधुर शब्दों में बोला "भीमा मौसी क्या आज के लिए भास्कर से कहोगी की वह अपनी रामरक्षा की पोथी मुझे दे दे! मैं आज ही उसकी नकल कर लेना चाहता हूं। मुझे वह मुखाग्र याद करना है। आज छुट्टी है, इस लिए मैं उसकी नकल कर लूंगा।"

यह सुनते ही भीमा मौसी ने तत्काल उसे पुकारकर कहा "भास्कर! आज के लिए श्याम तेरी पुस्तक मागता है, सो इसे दे दे! यह फाड़े-तोड़ेगा नहीं!" इसके बाद मुझे संबोधन कर के कहा "श्याम! पुस्तक पर स्याही आदि के धब्बे या छींटे मत लगाना, सावधानी से रखना। भास्कर इसे पुस्तक दे दे।"

किन्तु भास्कर, देने के लिए तैय्यार नहीं था। उसने कहा "आज छुट्टी है, इस लिए रही हुई सारी रामरक्षा मैं आज याद करूंगा। मैं इसे पुस्तक नहीं देना चाहता। मेरा याद करना रह जायगा।"

इन शब्दों से भीमा मौसी झल्ला उठीं। उसी क्षण उन्होंने भास्कर को डाटते हुए कहा "तेरे लिए आज ही याद करने का मुहूर्त अटका हुआ है क्यों? कल-परसों याद नहीं कर सकता? श्याम भी तो तेरा ही पड़ौसी

-और साथी है न? इसको तू किस बात की ठसक दिखाता है रे? अभी दे इसे पुस्तक, नहीं तो फिर देखना! माता के क्रोध को भास्कर अच्छी तरह जानता था; इस लिए उसने गुस्से की हालत में उसी क्षण लाकर पुस्तक मुझे दे दी।"

मैं 'रामरक्षा' स्तोत्र लेकर घर आया और एकान्त में बैठकर लिखने के विचार से पशु-शाला में चला गया! उस समय ढोर चरने गये थे; अतएव वहां पूर्ण शान्त और एकान्त स्थान मिला। दवात कलम और कापी तैयार थी ही, अतः जाते ही लिखना आरंभ कर दिया। दो-पहर को भोजन के समय तक अधिकांश पुस्तक लिखी जा चुकी थी। फिर भी भोजन से निपटते ही मैं लिखने बैठ गया। कुछ ही देर के बाद जब लिखना समाप्त हुआ तो उस समय मुझे कितनी प्रसन्नता हुई होगी, यह बतलाना कठिन है। मेरा अन्तःकरण आनन्द से भर गया और मुझे कृतार्थता प्रतीत होने लगी। अहा, मेरे हाथ की लिखी हुई रामरक्षा! मेरी ननसाल में पुराने वेदादि ग्रंथों की हस्त-लिखित पोथियां सैंकड़ों की संख्या में थी। उनके वे स्पष्ट और सुन्दर लिखावट वाले अक्षर, कहां कोई दाग नहीं, स्याही के छोटे नहीं, इस प्रकार वे ठीक छपी हुई पुस्तकों की तरह साफ-सुथरी दिखाई देती थीं। पहले भारत-वर्ष में सर्वत्र ही हाथों से पोथी-पुस्तकें लिखी जाती थीं। केवल भारत-वर्ष ही नहीं संसार-भर में यही रीति थी। और जिनके अक्षर मोती के समान सुन्दर होते, उनका सम्मान किया जाता था। मोरोपंत (महाकवि मयूरेश्वर) के जीवन-चरित्र में इस बात का उल्लेख मिलता है कि उन्होंने काशी के अनेक ग्रथो की अपने लिए खुद ही नकल की थी। उस समय के लोग आलस्य करना जानते ही न थे; प्रेसों का अभाव था और पुस्तकों की कमी थी। इसी लिए मोरोपंत ठेठ काशी से पुस्तकें बारा-मती मँगवा लेते और उनकी नकल करके सावधानी से लौटा देते थे! समर्थ स्वामी रामदास के मठों में भी बड़े-बड़े ग्रंथालय थे और उनमें हजारों हस्त-लिखित पोथियां रहती थीं। किन्तु आज तो गली-गली में छापखाने खुल गये हैं; और पुस्तकों के भी ढेर लग गये हैं; फिर भी लोगों का ज्ञान नाममात्र का—परिमित—ही है। मनुष्य का मस्तिष्क अभी खाली ही पड़ा हुआ है। उनका जीवन सुधरा हुआ या अधिक संस्कृत अथवा

विशेष मनुष्यता-पूर्ण, अधिक प्रामाणिक या कर्तव्यदक्ष अथवा विशेष त्याग एवं प्रेम-युक्त होता हुआ भी नहीं दिखाई देता। अस्तु।

हां, तो उस दिन मुझे बडा आनन्द हुआ। लिखाई समाप्त होते ही तत्काल मैंने भास्कर को उसकी पुस्तक लौटा दी। भीमा मौसी ने पूछा "क्यों श्याम! इतनी जल्दी पुस्तक लिख डाली?"

मैंने कहा "हां, यह देख मेरे हाथ में ही कॉपी मौजूद है। भास्कर को दो-पहर मे याद करने के लिए पुस्तक की जरूरत थी, इस लिए मैं यहां से जाते ही लिखने बैठ गया और दिन-भर लिखता ही रहा।"

यह सुन मौसी ने मेरी पुस्तक (कॉपी) देखते हुए कहा "वाह! बडे अच्छे अक्षर हैं तेरे! श्याम, अब तू जल्दी से रामरक्षा याद कर ले! जिससे फिर कभी तुझे भास्कर चिढा न सके।"

मैं घर आकर शाम तक रामरक्षा पढता रहा। एक सप्ताह मे ही उसे कण्ठाग्र कर लेने का मैंने निश्चय कर लिया। क्योंकि अगले रविवार के दिन पिताजी को एकदम चकित कर देने का मैंने अपने मन में सोच लिया था। इसी लिए प्रतिदिन मैं रामरक्षा स्तोत्र के कितने पारायण कर लेता था यह तो ईश्वर ही जाने; किन्तु समय मिलते ही तत्काल मैं राम-रक्षा की कॉपी अवश्य उठा लेता था। जो भी संस्कृत व्याकरण मैंने नहीं सीखा था; किन्तु फिर भी मैं कई श्लोकों का अर्थ समझ जाता और पाठ करने में मुझे बडा आनन्द आता था।

अन्त में दूसरा रविवार आ गया। मुझे रामरक्षा याद हो ही गई थी। इस लिए मैं उत्सुकता-पूर्वक सायंकाल होने की प्रतीक्षा कर रहा था कि कब पिताजी बाहर से आवें और मैं उन्हें रामरक्षा स्तोत्र सुना कर चकित कर दूं। धीरे-धीरे शाम हुई। घर में दीपक जलाये गये, और आकाश में तारे चमकने लगे। मै आँगन में चक्कर लगाता हुआ मन ही मन रामरक्षा की आवृत्तियां कर रहा था। पिताजी आये और हाथ-पाँव धोकर घर में गये। पीछे-पीछे मैं भी चला गया। उन्होंने पूछा "क्यों श्याम! परॉंच, (सुहारनी) स्तोत्र-पाठ आदि सब हो गये?"

मैंने उत्तर दिया "हां, सब हो गये! किन्तु क्या आप मेरी रामरक्षा सुनेंगे?"

वे एकदम चकित हो कर पूछने लगे "तूने कब सीखी? और किसने सिखाई?"

मैंने कहा "भास्कर की पुस्तक पर से नकल कर के मैंने याद कर ली!"

यह सुन उन्होंने मेरी वह कॉपी देखने को मांगी! तत्काल ही मैंने वह उसके सामने रख दी! उस कॉपी के सभी पन्ने व्यवस्थित, सुंदरता से लकीरें खींचे हुए थें। कहीं भी दाग या छींटा तक नहीं था; किन्तु फिर भी अक्षर छोटे और अच्छे नहीं थे। अतः कॉपी को देखते ही पिताजी बोल उठे "शाबास, तेरे अक्षर कुछ तो ठीक हैं; किन्तु इतने छोटे नहीं कुछ लम्बे कर के लिखने चाहिए। अच्छा, अब स्तोत्र सुना तो देखूं!" मैंने तत्काल ही विना रुके समग्र स्तोत्र सुना दिया। उस समय पिताजी ने बड़े ही प्रेम से मेरी पीठ पर हाथ फिराया। उस क्षण मुझे जो आनन्द हुआ; वह भला कैसे वर्णन किया जा सकता है?

भोजनादि के पश्चात् पिताजी फिर बाहर चले गये; तब मैं माता के पास जा कर कहने लगा "माँ, देख तो सही, कैसी है मेरी यह कॉपी! मैंने तो तुझे अब तक दिखलाई भी नहीं थी। मैं तुझ से नाराज हो गया था न?" यह सुन माता ने कहा "यह तो मुझे मालूम था कि तूने 'रामरक्षा' स्तोत्र की नकल कर ली है। किन्तु तेरे अक्षर देखने की इच्छा अवश्य कई दिन से थी। फिर भी मुझे आशा थी कि तू स्वतः ही किसी दिन अवश्य कॉपी दिखाएगा। यथार्थ में तो मुझे उसी दिन रविवार को ही यह कॉपी दिखलानी चाहिए थी। यदि अपने हाथ से कोई अच्छी चीज तैयार हुई, और उसे माता को ही नहीं दिखलाया तो फिर दिखाया किसे जायगा? खराब या बुरी वस्तु के लिए माता अप्रसन्न होगी; किन्तु अच्छे काम के लिए तो माता सच्चे हृदय से जितना आनन्द-युक्त गौरव करेगी; उतना दूसरा और कौन कर सकता है? अपने पुत्र के गुणवान् होने पर माता को जो आनन्द हो सकता है, उसे दूसरा कैसे समझ सकेगा? किन्तु तूने मेरा वही आनन्द मुझ से आठ दिन तक छुपा कर रक्खा! मैं प्रतिदिन सोचती थी कि 'आज मुझे श्याम अपनी कॉपी दिखाएगा और मैं उसे हृदय से लगाऊंगी? पर तू तो माँ से नाराज था। फिर भला तू क्यों दिखाने लगा?

यही बात है न? तूने इसी लिए मुझे कॉपी नहीं दिखाई क्यों? खैर जाने दो इस झगड़े को। अब हुई या नहीं रामरक्षा याद? पुस्तक न होने की बात लेकर रोता रहता तो क्या याद हो जाती? अरे, जब हमारे हाथ-पाँव, आँख, नाक, कान आदि सब मौजूद हैं तो फिर क्यों न हम अपने पैरों पर खड़े रहें! जिसके हाथ पाँव हैं, जिसमें बुद्धि है, और मन में निश्चय है, उसके लिए दुर्लभ वस्तु ही क्या है? इसी तरह श्रम कर के तू बड़ा हो; किन्तु परावलम्बी कभी मत बनना! फिर भी इस बात का सदा स्मरण रहे कि दूसरे से यदि तुझे कुछ अधिक ज्ञान हो तो, इसी गर्व के कारण तेरे-द्वारा उसका तिरस्कार या अपमान कभी न होना चाहिए। बल्कि उसे भी अपने पास से कुछ दे कर तू अपने जैसा बनाने का यत्न करना।" यों कहकर माता ने मेरी वह रामरक्षा की कॉपी हाथ में ली। उसे मेरे अक्षर देखकर हार्दिक आनन्द हुआ, सच्ची कृतार्थता प्रतीत हुई! उसने कहा "बस, यदि इस पहले पन्ने पर रामचद्रजी का चित्र और लग जाय तो कोई कसर न रहे। फिर पूरी रामरक्षा बन सकती है। वह मोहन मारवाडी तुझे अवश्य राम का चित्र दे देगा। उसकी दूकान में कपडों पर अनेक चित्र आते हैं! उससे मागकर इस मे चिपका लेना। अब तू देवता का विशेष कृपापात्र बनेगा, उनको परम प्रिय होगा। श्याम! तूने स्वतः कष्ट कर के समग्र स्तोत्र लिखा और उसे याद कर के सुनाया है।"

१९ अलौनी भाजी

राजा और राम दोनों नदी की ओर घूमने गये; और वहां जाकर वे एक शिला-खण्ड पर बैठ गये। राजा कहने लगा "राम, मुझे यहां से जाने की इच्छा नहीं होती। यहां की यह नदी और वनश्री तथा मोर, तोते आदि देखकर बड़ा आनन्द होता है। किन्तु इससे भी बढ़कर आनन्द है तुम्हारी संगति का। साथ ही श्याम की कहानियां भी सुनने को मिलती हैं। मुझे वे बड़ी प्रिय लगती हैं।"

इस पर राम कहने लगा, "किन्तु उन्हे कहानी कहा जाय या प्रवचन! अथवा व्याख्यान कहे या संस्मरण? कुछ समझ मे नहीं आता। उन बातो को सुनकर आनद तो होता ही है, साथ ही स्फूर्ति भी प्राप्त होती है।" राजा बोला कि "श्याम के शब्दों में उसका निर्मल हृदय ओत-प्रोत रहता है। इसी लिए उसके कहने मैं एक विशेष मधुरता और खास आकर्षण रहता है। उसमें कृत्रिमता का लवलेश भी नही होता।"

"अरे, पण कृत्रिमता हुए विना लोगो को कोई बात पसद भी तो नहीं आती! आजकल के लोग तो कृत्रिमता के ही उपासक हैं। यदि सारा ही रुपया खालिस चॉदी का हो तो वह बाजार में चल नहीं सकता! उसमें जब थोडी-सी अशुद्ध धातु मिलाई जाती है, तभी वह खन्न कर के बजता और लेन-देन मे चल सकता है।" राम ने कहा।

इस पर राजा ने फिर पूछा कि "मेरे मन मे एक योजना आई है। सुनाऊ? तू हॅसी तो नही करेगा?"

राम ने कहा "अवश्य सुनाओ! मैं हॅसी नही उडाऊंगा"। किसी की सच्ची भावनाएँ सुनकर मै कभी उसकी ठट्ठा नही करता।

"यदि श्याम के ये सस्मरण प्रकाशित किये जाँय तो कैसा? इन्हें पढने मे लड़को को आनंद होगा और स्त्रियां भी पढ़कर प्रसन्न होगी। साथ ही माता-पिता के लिए भी ये उपयोगी सिद्ध होंगे। श्याम की इन बातो में कोंकण-प्रदेश की शुद्ध संस्कृति ओतप्रोत है। ये संस्मरण एक प्रकार से एक सुन्दर सस्कृति के सजीव चित्र ही हैं। क्यों ठीक है न?" राजा ने पूछा।

राम ने कहा "किन्तु श्याम को यह बात स्वीकार न होगी। उसे आत्मविश्वास नही है। वह कहने लगता है कि, ऐसी बातों को पढना कौन पसंद करेगा? लोगों को तो चटकीली कहानियां चाहिए। उन्हें तो लैला-मजनू के किस्से ही ज्यादा पसद आ सकते है!" इस प्रकार वह अपने विचार प्रकट कर ही रहा था कि आश्रम मे प्रार्थना की घटी बजने लगी। दोनो मित्र आश्रम की ओर लौट चले। इधर श्याम भी राजा की प्रतीक्षा कर रहा था। इस लिए जब उसे राजा और राम दोनो ही साथ आते हुए दिखाई दिये तो उसने पूछा "क्यों भाई! आज मुझे आवाज नही दी? तुम दोनों ही चले गये?" इस पर राजा ने उत्तर दिया कि

"तू पढ़ रहा था, इस लिए नहीं बुलाया! हमने सोचा दिन भर तुझे दूसरे काम रहते हैं; इस लिए यदि कुछ देर पढ़ने को समय मिला है तो उसमे बाधा डालना ठीक नहीं।"

"किन्तु मुझे भी तो कहां देर तक पढ़ना अच्छा लगता है?" श्याम ने कहा "इस विश्व-रूपी विशाल ग्रंथ को पढ़ा जाय, मनुष्यों के जीवन पढ़े जाएँ, हृदयों का परिशीलन किया जाय, और उनमें गर्भित सुख-दुःखों की जानकारी प्राप्त की जाय; यही तो सच्चा ग्रंथावलोकन है! क्यों ठीक कहता हूं न?"

इस पर राजा ने उत्तर दिया "श्याम, तूने बहुत कुछ पढ़ लिया है, इस लिए ऐसी बातें करता है। किन्तु सृष्टि-प्रकृति-रूपी ग्रथ का पढ़ना सीखने की आवश्यकता होती है। कृषक के जीवन का आनन्द कवि भले ही वर्णन करता रहे; किन्तु बेचारा कृषक उसका उपभोग नहीं कर सकता। क्योंकि उसे वह दृष्टि ही प्राप्त नहीं है।"

इतने ही में दूसरी घंटी बजी और सब लोग प्रार्थना करने बैठ गये। यथा-नियम प्रार्थना समाप्त हो जाने पर श्याम ने अपने संस्मरण सुनाना आरम्भ किया :—

"मित्रो! प्रत्यक्ष उदाहरण से जो शिक्षा प्राप्त होती है; वह सैंकड़ो व्याख्यान सुनने या अनेक ग्रथ पढ लेने से भी नहीं मिल-सकती। कृति (कार्य) मूक अवस्था मे भी बोलती रहती है। और शब्दों से भी यह मूक कथन विशेष परिणामकारक होता है!

भोजन कैसे किया जाय, इसके लिए भी हमारे यहाँ की संस्कृति में विशेष नियम बताये गये हैं। मेरे पिता हमेशा कहा करते कि "अपनी थाली या पत्तल की ओर देखकर भोजन करना चाहिए। कोई भी वस्तु जब तक सामने रखी हुई हो, कभी न माँगी जाय; जब परोसने आवे तभी आवश्यकतानुसार लेनी चाहिए। क्योकि पंक्ति में जब दूसरो की वह परोसी जायगी तब हमें भी मिल जायगी। भुखमरे की तरह किसी वस्तु पर एकदम ही न टूट पड़ना चाहिए। अन्न का एक दाना या कण भी थाली से नीचे न गिरने देना चाहिए। और न कुछ जूँठन ही छोड़नी चाहिए। भोजन की वस्तुओं के विषय में टीका टिप्पणी

भी नहीं करनी चाहिए। यदि उसमें कोई बाल या अन्य वस्तु निकल जावे तो उसे चुपचाप निकालकर अलग रख देना चाहिए, मुँह से उस विषय में कुछ भी नहीं कहना चाहिए और न उसे ऊपर उठाकर दूसरों को दिखाना ही चाहिए; क्योंकि इससे उन्हें घृणा हो जायगी। हां, यदि उसमें कोई विषैली वस्तु दिखाई दे तो अवश्य सब को सावधान कर देना चाहिए। पत्तल या थाली बिल्कुल साफ कर देनी चाहिए। इन सब बातों के अनुसार ही पिताजी स्वतः आचरण भी करते थे। मैंने कई आदमियों को भोजन करते हुए देखा है, किन्तु भोजन के बाद मेरे पिताजी की थाली जितनी साफ और निर्मल दिखाई देती है, वैसी मैंने अन्यत्र कभी नहीं देखी। उसे देखकर यह समझना भी कठिन हो जाता है कि उसमें किसी ने भोजन किया है या नहीं। उनकी थाली के बाहर जूँठन का एक कण भी पड़ा हुआ नहीं दिखाई देगा। इस लिए वे मेरा पत्तल के आस-पास जूँठन पड़ी हुई देखते ही क्रुद्ध हो कर कहने लगे जाते "क्यों रे, तूने कितनी जूँठन गिराई है? इससे तो मथुरी (मजदूरनी) के एक मुर्गे का पेट भर सकता है। कर उसको इकट्ठी!" इसी प्रकार वे कभी अपने मुँह से यह नहीं कहते कि "अमुक वस्तु खराब है या यह ऐसी कैसी बनी, अथवा इसमें तो कोई स्वाद ही नहीं!" क्योंकि उन्हें सभी वस्तुएँ अच्छी लगती थी। उनका एक निश्चित शब्द था "राजमान्य!" उनसे कोई भी पूछता कि "शाक-सब्जी कैसी बनी? तो उनके मुँह से निश्चित उत्तर मिलता "राजमान्य!" अर्थात भोजन के विषय में कोई भी बुरी बात कहने की आदत उनमें नहीं थी।

एक दिन की बात मुझे अच्छी तरह याद है। पिताजी के प्रतिदिन घर के देवताओं की पूजा कर के मंदिर में जाते ही हम पाट बिछाकर पानी के लोटे-गिलास आदि रख देते; और भात के सिवाय सब सामग्री परोस कर तैयार रखते थे। इसके बाद दरवाजे मे खड़े हो कर पिताजी को वापस लौटते हुए देखते ही माता को सूचना देते कि, "पिताजी आ गये, भात परोसने के लिए निकालो।" पिताजी मंदिर में से आते समय गणेशजी का चरणामृत लाते और उसे पीकर हम भोजन आरम्भ करते थे।

उस दिन भी हम भोजन के लिए बैठे। माता ने रतालू (शकरकन्द) के पत्तों की भाजी बनाई थी। मेरी माता चाहे जिस वस्तु की भाजी

बना सकती थी। वह कहती कि "निमक, मिर्च और तैल की छौंक (बघार) देने से सब कुछ स्वादिष्ट बन सकता है।" और सचमुच ही वह जो कुछ बनाती वह अत्यंत स्वादिष्ट होता था। मानो उसके हाथ में पाकशास्त्र का रसभाडार ही न भरा हो! वह अपने बनाये हुए प्रत्येक पदार्थ में हृदय की समग्र माधुरी उँडेल कर रख देती थी। और यथार्थ में यदि देखा जाय तो माधुर्य का सागर सब के ही हृदय में भरा हुआ है।

किन्तु उस दिन एक मजे की बात यह हुई थी कि वह भाजी बिलकुल अलौनी बनी थी। माता उसमें निमक डालना भूल गई थी। काम की गड़बड़ में बेचारी को निमक डालने की याद न रही। किन्तु पिताजी भोजन में किसी भी वस्तु के लिए एक अक्षर तक नहीं कहते थे, इस लिए हमें भी चुप ही रहना पड़ा। पर पिताजी का सयम भी बड़ा जबरदस्त था। मानो वे अस्वाद-व्रत का ही पालन न कर रहे हो! माता के द्वारा भाजी परोसी जाने पर वे बराबर यही कहते रहे कि "भाजी बड़ी स्वादिष्ट बनी है।" किन्तु उन्होंने थाली में रखा हुआ निमक तक उसमें नहीं मिलाया और न फिर से निमक मागा ही। क्योंकि ऐसा होने पर माता के मन में संदेह उत्पन्न हो जाता। इसी लिए पिताजी को भाजी खाते देखकर हम भी थोड़ी-थोड़ी खाते रहे: हमने भी निमक नहीं मागा।

माँ ने मुझ से पूछा "क्योंरे, क्या तुझे भाजी अच्छी नहीं लगी? रोज की तरह खाता क्यों नहीं?" किन्तु इस विषय में मेरे उत्तर देने से पहले ही पिताजी कहने लगे "यह अब अंग्रेजी जो पढ़ने लगा है; इसे भला ये पाला-भाजी क्योंकर पसंद आवेगी?" इस पर मैंने कहा "ऐसी बात नहीं है। यदि अंग्रेजी पढ़ने से मेरे बिगड़ने का डर है तो फिर मुझे पढ़ाते क्यों है?" पिताजी बोले "अरे, तुझे चिढ़ाने के लिए ही ऐसा कहना पड़ा। क्योंकि तेरे चिढ़ उठने से सब को आनन्द होता है।" इसके बाद माता को लक्ष्य कर के उन्होंने कहा "इसे कटहल की भाजी अच्छी लगती है क्यों? कल पटेल-वाड़ी में से कटहल लाऊगा। यदि पुराना और पका हुआ मिला तो उसके पकौड़े बना लेना।" यह सुन माता ने कहा "अवश्य लाइये। कई दिनों से कटहल की भाजी नहीं बनाई है।" इस प्रकार बातचीत होते-होते ही हमारा भोजन समाप्त हो गया। पिताजी

चबुतरे पर जाकर विष्णु सहस्रनाम बोलते हुए शत-पदी (सौ कदम चलना) करने लगे। इसके बाद उन्होंने तकली पर यज्ञोपवीत के लिए सूत कातना आरम्भ कर दिया। ठिकरे को घिसकर ही तकली बनाई गई थी। उस समय प्रत्येक ब्राह्मण के लिए तकली पर सूत कातने की प्रथा अनिवार्य-रूप से प्रचलित थी।

बाहर का सब सामान समेट कर सफाई करने के बाद माता भोजन करने के लिए बैठी। किन्तु जैसे ही उसने ग्रास मुँह में लिया तो मालूम हुआ कि भाजी अलौनी है। उसमें नाम को भी निमक नहीं है। मैं पास ही खड़ा था। इस लिए उसने पूछा "क्योरे श्याम! भाजी में निमक नाम नाम को भी नहीं था; फिर भी तूने यह बात मुझ से नहीं कही? अरे, यदि ऐसा था तो मुझे बतलाना क्या आवश्यक नहीं था? राम-राम, तुम सब ने अलौनी भाजी कैसे खाई होगी?" मैंने कहा "पिताजी कुछ नहीं बोले, इस लिए हम चुप बैठे रहे!" माँ को बहुत बुरा लगा। वह फिर कहने लगी "राम-राम! मैं भी कैसी अनाड़ी स्त्री हू! सबको आज बिना निमक की भाजी खानी पड़ी। उसके हृदय में अपनी यह भूल सुई की तरह चुभ रही थी। किन्तु अब क्या कर सकती थी? फिर भी वह मुझ से कहने लगी "तभी तूने नहीं खाई; नहीं तो ढेरभर भाजी तो तेरे लिए ही रखनी पडती है; आधी तपेली तो तू साफ कर जाता है। तुझे भाजी का बडा शौक है। किन्तु यह बात तो उसी समय मेरे ध्यान मे आनी चाहिए थी। अब इस विषय मे पश्चात्ताप करने क्या लाभ?"

माता ने इसे अपनी बहुत बडी भुल समझी। जो भी वस्तु दूसरे को बनाकर दी जाय, वह हमेशा अच्छी ही बनानी चाहिए। जो भी पदार्थ बनाया जाय वह अच्छा ही बनना चाहिए। भले ही वह भाजी हो या कोई बड़ा पक्वान्न। किन्तु आज मैंने एकदम अलौनी भाजी बनाकर परोस दी, असावधानी की, और ला-पर्वाही रखी, काम मे ध्यान एक जगह नहीं रखा, यह अच्छा नहीं हुआ। इस प्रकार माता के मन में अनेक विचार उत्पन्न हुए और वह खिन्न हो गई!

किन्तु पिताजी ने केवल इसी विचार से कि माता को बुरा न लगे, अपने मुँहसे एक अक्षर तक न कहा। क्योंकि उन्हों ने सोचा,

"बेचारी ने इतने परिश्रम से चूल्हे के पास धुएँ बैठकर भोजन बनाया है, तो क्यों न उसे प्रशंसा कर के खाया जाय ? उसमें दोष दिखाकर भोजन की प्रशंसा करने के बदले उसे दुःखी क्यों किया जाय ? इस प्रकार पिताजी की दृष्टि अत्यन्त उदारता-पूर्ण थी।

मित्रो ! दूसरे का दिल न दुखाने के लिए जीभ पर अधिकार रख कर अलौनी भाजी भी प्रशंसा कर के खाने वाले मेरे पिता श्रेष्ठ या कि अपने हाथ भाजी अलौनी रह जाने पर खिन्न होने, और हमारी ओर से इसकी सूचना न देने पर फटकारने तथा अपने हाथों अच्छी वस्तु न बनने पर उद्विग्न हो उठने, एवं दुःख और पश्चात्ताप करने वाली माता श्रेष्ठ ? मैं समझता हूं कि दोनों ही महान् और श्रेष्ठ थे। हिन्दु-संस्कृति का निर्माण संयम और संतोष की नींव पर ही किया गया है; इसी प्रकार उसका एक आधार कर्म-कुशलता भी है। ये दोनों ही उपदेश पाठ मुझे अपने माता-पिता के जीवन से सीखने को मिले हैं।

२० पुनर्जन्म

मेरी अवस्था उस समय ग्यारह वर्ष की थी। उन्हीं दिनों पहिली बार मुझे अंग्रेजी पढ़ने के लिए मामा के घर भेजा गया था। मेरा बड़ा भाई पहिले ही से वहां पढ़ रहा था। किन्तु मैंने मामा के घर ठीक तरह का बरताव नहीं किया। उनके घर से मैं दो-तीन बार कहीं भाग भी गया, और अन्य कई प्रकार के अनुचित आचरण भी मेरी ओर से हुए। इसी लिए मामा ने यह सोच कर मुझे वापस घर भेज दिया कि ऐसे आवारा और उच्छृंखल भानजे का अपने घर न रहना ही अच्छा है। यह व्यर्थ ही किसी दिन अपने साथ-साथ दूसरे के गले में भी फाँसी लगवा देगा।

उस समय कोंकण में हमारे घर की सारी परिस्थिति ही बड़ी विचित्र हो रही थी। मेरे पिता स्वदेशी-आंदोलन के मामले में सजा भोग कर ताजे ही छूटे थे, और उनका स्वास्थ्य बहुत गिर गया था। वे अत्यन्त निर्बल हो गये थे। इसी कारण स्वास्थ्य-सुधार के लिए वे अपने किसी

दूर के रिश्तेदार के यहां समुद्र-तट पर रहने चले गये थे। मेरी बड़ी बहन भी नैहर आई थी। वह बेचारी यहां चार दिन आनन्द में रह कर जी बहलाने के लिए आई थी, परंतु आते ही बीमार पड़ गई। इसी लिए माता पर सारे काम का बोझ आगया। उस समय घर में दूसरी कोई स्त्री भी नहीं थी। बहन बहुत बीमार थी; और उसी दशा में मैं पूना से वापस लौटकर आगया था; इस लिए मेरी ओर कोई ध्यान नही देता था। मैं सब के लिए अप्रिय हो गया था। किन्तु मेरी जीजी पर सब का स्नेह था, सब उसे चाहते थे। उसकी एक दूध-पीती लड़की थी। बहन की बीमारी के कारण उसकी बड़ी दुर्गति हो रही थी। क्योंकि उसे माँ का दूध तो मिलता ही न था; साथ ही माता का हाथ भी उसके कोमल एव बढते हुए बाल-शरीर के पोषण के लिए नहीं लग पाता था। क्योंकि जीजी को विषय-ज्वर हो गया था, इस लिए उसका दूध बच्ची को पिलाना धोखे का काम था। वह दूध विशाक्त हो रहा था, अतः उस बेचारी छोटी-सी रंगू की बड़ी दयनीय दशा हो गई!

एक दिन जीजी को सन्निपात हो गया। सुसराल मे होंन वाले कष्ट उसने कभी हमारे यहां आ कर नही कहे थे। किन्तु मन में संचित वह सम्पूर्ण दुःख-गाथा उस वातावेश में वह सुना गई। उसे होश नहीं था, इस लिए उस अचेत अवस्था में वह अपने हृदय की सारी बातें सुनाने लगी और उन्हें सुनकर माता को घोर दुःख होने लगा। वह सोचने लगी कि इतने रुपये खर्च कर ऐसे घर में कन्या देने पर भी बेचारी को ऐसा कष्ट सहना पड़ा!

जिस तरह पुरुष के लिए घर मे भाई-बन्दी दुःखदाई होती है; उसी प्रकार लड़की के लिए सुसराल मे सताया जाना भी हमारे समाज का एक निंद्य दुर्गुण है। यदि सच पूछा जाय तो सास का कर्तव्य यह होना चाहिए कि वह दूसरे के घर की आई हुई लडकी की माता बनकर उसे आश्वासन दे और हृदय से लगावे; किन्तु हम इस के बदले वे बहू के आने पर यह समझने लगती हैं कि एक खरीदी हुई मजदूरनी हमारे घर आई है। हमारे देश और समाज के लिए वह दिन स्वर्ण-दिवस समझा जायगा, जिस दिन बहुओं को सुसराल में दिये जानेवाले कष्टों का अन्त हो जायगा। सुसराल में रहने का आशय ही हमारी भाषा में वहां के दुःख-कष्टों के रूप में लिया

जाता है। ये शब्द ही उस इतिहास के सूचक बन गये हैं। इसी लिए लड़कियाँ अपने गीत में ससुराल का वर्णन करते हुए गाती हैं :—

> **सास-श्वसुर के वचन करेले से कड़ुए होते हैं।**
> **क्यों कर मीठे लगे, जिन्हें सुन हाय! हृदय रोते हैं॥**
> **रेशम की गांठ समान सास के शब्द कठिन होते हैं।**
> **खुलते न कभी वे, इसी लिए तन-प्राण सदा रोते हैं।***

इस प्रकार वे ससुराल का करुण-चित्र समाज के सम्मुख उपस्थित करती हैं। ये उन्हीं के भावों की अभिव्यक्ति है, और उन्होंने इस रूप में अपनी स्थिति का, दीन-हीन अवस्था का वर्णन किया है करेले के कड़ुए फल और रेशम की गांठ जैसी उपमाएँ उन्हीं की कल्पना में आ सकती है। अभी तो साधारण मनुष्यता भी हम लोगों को सीखनी शेष है। सास बहू को सताती और कष्ट देती है; और बहू जब खुद सास बनती है, तब वह भी यही करती है। मानो पूर्वजों की यह सताने की परम्परा अखण्ड अबाधित चलती ही रहनी चाहिए। इसी लिए हमारे यहां अब यह कहावत चल पड़ी है कि "चार दिन सास के तो चार दिन बहू के भी"। जिस प्रकार पाठशाला का अध्यापक लड़कों को पीटता है और लड़का जब मास्टर होता है तो वह भी यही करता है; ठीक यही बात इस विषय में भी कही जा सकती है। अधिक-तर मास्टर लोग यही उत्तर देते हैं कि हमे भी तो पीटा जाता था, इसी लिए हम भी मारते पीटते हैं। लड़के लड़की जब खेलते हों, तब हमे सावधानी से देखना चाहिए। यदि लड़कियां सास-बहू का खेल खेलती होंगी, तो उनमें बहू बनने वाली लड़की के बाल खींचना और खोंचा या चिमटा गर्म कर के उसे दागना, उसे बासी रोटी खाने के लिए देना आदि दृश्य प्रत्यक्ष दिखाई देंगे। इसी प्रकार जब आप लड़कों की पाठशाला का खेल देखेंगे तो, उसमे भी आप किसी खम्भे को

---

* **सासरचे बोल। जसे कारल्याचे वेल।**
गोड कसे लागतील। कांहीं केल्या॥
सासरचे बोल। जशा रेशमाच्या गांठी।
रात्रंदिन रडविती। धायी धायी॥

विद्यार्थी के रूप में पिटते हुए देखेंगे। साथ ही मास्टर बनने वाला लड़का उसे यो धमकाता हुआ भी दिखाई देगा कि "बोल्! फिर ऊधम करेगा? लगाऊं और एक बेंत! इत्यादि। मेरी बहन का एक लड़का है। वह उस समय पांच-छह वर्ष का था। एक दिन उसने मुझसे कहा "मामा, मुझे मास्टर बनना है, या फिर मैं सिपाही बनना चाहता हूं।" इस पर जब मैंने उससे पूछा कि "तूने ये दो ही धन्धे क्यों पसद किये?" तो उसने उत्तर में बताया "इनमे मैं सब को मार-पीट सकूंगा! सब को एक तरफ से झड सकूंगा।" देखा तुम सबने; मास्टर के स्वरूप की क्या सुन्दर कल्पना की गई हैं? इसी लिए पाठशाला लडकों को सुसराल की तरह भयंकर जान पड़ती हैं। किन्तु यथार्थ मे पाठशाला और सुसराल दोनो ही नानी के घर या नैहर बन जाने चाहिए। मित्रो! तुम कहोगे कि मै किधर से कहां बहक चला, किन्तु इन सब बातों को देख कर मेरा पित्त भड़क उठता है। अरे, हममें यदि साधारण मनुष्यता भी न हो तो हम कैसे मानवप्राणी कहला सकते है? कहां वह पशु-पक्षी, कीडे-मकोडे और लता-वृक्षादि तक से प्रेम करने की शिक्षा देनेवाली हमारी महान् सस्कृति, और कहा हम उसके नादान उत्तराधिकारी! हम सामान्य मनुष्यता को भी किस प्रकार भूल बैठे है, यह देख कर हृदय जल उठता है, व्यथित हो जाता है! किन्तु जाने दो!

हॉ, तो उस दिन जैसे-तैसे दो-पहर का भोजन समाप्त कर सब लोग जीजी के पास हुए थे। ताम्बे की थरिया (तर्पण-पात्र) में पानी भर कर उसे जीजी के सिरपर रखा गया था। भला, उस छोटेसे गॉव मे बर्फ की थैली या कोलन-वॉटर कहां से आ सकते थे? माता उस थरिया को थामे हुए बैठी थी। सब के मुँह सूख कर चिड़िया की तरह हो रहे थे। उसी समय मेरी माता के मन मे जाने क्या विचार आया, और वह जल-पात्र मुझे पकड़े रखने के लिए कहकर उठ खड़ी हुई। वह वहां से सीधी देवता के सिंहासन के पास पहुँची और अत्यन्त करुण शब्दों में प्रार्थना करने लगी "हे भगवान, शंकर! मैं मंदिर मे जा कर तीन दिन तुम्हारी पिंडी पर दही-भात का लेप करूंगी! बेचारी लड़की को रोगमुक्त करो। उसका बुखार कम होने दो, शरीर की गर्मी निकल जाने दो, उसको शान्ति-

चैन मिल सके, ऐसी कृपा करो।" इस प्रकार एक और उपचार हो रहा था, और साथ ही दूसरी ओर प्रार्थना भी चल रही थी। माता का ईश्वर पर पूर्ण विश्वास तो था ही, किन्तु साथ ही साथ वह रात-दिन सेवा भी कर रही थी। अपने प्रयत्न में अपनी व्यग्रता के साथ ही ईश्वर का सहयोग भी प्राप्त करना आवश्यक होता है।

थोड़ी ही देर में बहन की छोटी बच्ची के रोने पर माता ने पुकार कर मुझसे कहा "श्याम! वह देख रंगू जग कर झूले में पड़ी रो रही है। जा, उसे ले कर बाहर थोड़ी देर तक टहला। यहां मत रुला।" तत्काल ही मैं उसे कन्धे पर उठाकर बाहर चला गया और वहां उसे खेलने लगा। किन्तु थोड़ी ही देर में उसे इधर-उधर टहला कर मैं उकता गया था, अतएव फिर घर में ले गया। उस समय सूर्यास्त हो रहा था। बाहर मजदूरनियों ने धान कूट कर रक्खा था, उसे तौल कर लेना था। उधर गाय-भैंस के आने का समय भी हो चला था। ग्वाला केवल यह कह कर आगे बढ़ जाता था कि "तुम्हारे ढोर आ गये हैं, सम्हालो!" इस लिए आते ही उन सब पशुओं को भी बाँधना था। इस प्रकार काम की गड़बड़ में मैं भी रोती हुई रंगू को वहां छोड़कर बाहर चल दिया। बेचारी अबोध बच्ची और भी जोरों से रोने लगी। तब क्या वह माता के लिए रो रह थी? अथवा क्या वह यह चाहती थी कि माता प्रेम-पूर्वक हाथों से मेरी पीठ थपथपावे? या वह इस लिए रो रही थी कि माता उसकी ओर प्रेम से देख भर ले? अबोध (मूक) बेचारी! छोटी-सी निर्बल बच्ची। उसकी माँ बेचारी बिस्तरे पर पड़ी हुई तिलमिला रही थी; बीच-बीच में 'वात' के कारण उल्टी-सीधी बातें भी बकती थी। कभी-कभी उस रंगू को दो-दो दिन तक माता के दर्शन भी नहीं हो पाते थे। तब क्या उसकी आत्मा इस प्रकार माता से मिलने के लिए रोती या चिल्लाती थी? अथवा क्या रोती हुई वह यह कह रही थी कि "मुझे मेरी माँ के पास लिटा दो; मुझे न दूध चाहिए और न कोई दूसरी वस्तु। मैं इन में से किसी के लिए भी लालायित नहीं हूं; मैं तो केवल इतना ही चाहती हूं कि उसकी बगल में मुझे लिटा दो और वह अपना दुर्बल प्रेम-भरा हाथ मेरी पीठ पर फेरती रहे; उसीसे मेरा पोषण हो सकेगा।" भला उसके रूदन की भाषा कौन समझ

सकता है? उस बाल-हृदय की उस आत्मा की परीक्षा कोई कैसे कर है? रंगू जोरो से, चींख कर रोने लगी! उसकी हिचकी बँध नई और उस पर दया आने लगी!

किन्तु मेरी माता भी अकेली क्या-क्या करती? वह धान को तौ-लती या दिया जलकर तुलसी को दिखाती? ढोरों को बाँधकर दूध दुहती या जीजी के लिए काढ़ा उबाल कर भोजन बनाती? वह रंगु को चुप करने के लिए उठा कर टहलती या जीजी के पास बैठ कर उसके हाथ-पाँव दबाती? उस बेचारी के क्या कोई हजार हाथ थे! किन्तु माता तुझे धन्य है! स्त्रियो की सहन-शीलता कम से कम भारतीय-समाज में तो अद्वितीय ही कही जा सकती है। वेही इतना साहस रखती जो दिन-रात संकटो का सामना करती हुई भी अपने कर्तव्य का यथावत् पालन कर सकती हैं। भारतीय-महिलाओं को उनकी क्षमा वृत्ति के लिए 'भूमाता' (पृथ्वी) की ही उपमा दी जा सकती है। अन्य कोई उपमा उनके योग्य नहीं हो सकती। ऐसी महान्-श्रेष्ठ महिलाएँ, जिस घर मे होती हैं, उसे मैं तो साक्षात् लक्ष्मी-सरस्वती का मंदिर ही मानता हूं। उन देवियो के चरण-कमलों में मेरा मस्तक अनायास झुक जाता है। मैं अन्य देवा-लयों-मंदिरों को नहीं जानता।

हां, तो रंगू के इस प्रकार रोने-चिल्लाने से मेरी माता बहुत संतप्त और क्रुद्ध हुई। क्योंकि उसकी क्षमा और सहन-शीलता के लिए भी तो कोई सीमा हो सकती थी—कोई मर्यादा होनी चाहिए थी! वह उसी क्रोध, दुःख एव संताप के कारण विक्षिप्त-सी हो कर कहने लगी "कहां गया यह दुष्ट? केवल छाती पर चढ़ कर घडीभर खा लेता हैं, किन्तु इधर का तिनका उठा कर उधर तक नहीं रखता! उधर उस जन्म मे तो न क्या दीये लगाये होंगे, और अब यहां आया है माता काजी जलाने के लिए। जरा इस बच्ची को लेकर टहलने को कहा तो बेचारा एरण्ड की तरह फूल गया! मुए को तीनों समय ढकोसने को चाहिए पेटभर! श्याम्या, अरे ओ शैतान! उठाकर ले जा न इसे! कैसे बिलख रही है बेचारी! हिचकी बँध गई! उठाता है या लाऊं छड़ी! बेचारी

गुणवती गरीब बेटी दुःख भोग कर मर रही है, परन्तु तू नहीं मरता। मुझे सताने और जी जलाने के लिए ही छाती पर बैठा है क्या?"

मैं माता के इन दुःख एवं संताप भरे शब्दों को चुपचाप सुनता रहा। किन्तु उसके अन्तिम शब्दों ने मेरे मर्म पर आघात किया और मैं एकदम रोने लगा। रोते-रोते ही मैंने उस असहाय भानजी रंगू को उठाया और बाहर चला गया। उसे छाती से लगाकर शान्त करने के लिए श्लोक और गीत सुनाने लगा। रामरक्षा का स्तोत्र भी पाठ किया। और कंधे पर उठा कर मैं टहलने लगा। थोडी देर में वह सो गई।

किन्तु माता के शब्दों ने मुझे जागृत कर दिया और यह भी मालूम हो गया कि संसार में मनुष्य को जीना किस लिए चाहिए! सच है बिना चकमक झडे चिन्गारी भी तो नहीं पडती! मेरे जीवन मे भी चिन्गारी पडी; उसमें भी तेज और प्रकाश फैल गया। गुणी मनुष्य की ही संसार में चाह होती है। गुणहीन-निकम्मा-अभागा जीवन किस काम का? उसी दिन मुझे यह अनुभव हुआ कि मैं किसी के भी काम मे नहीं आता हू, सबके लिए मेरा जीवन भार-रूप हो रहा है, और सब को उससे कष्ट पहुँचता है। बस, उसी दिन से मेरे जीवन की दिशा बदल गई, मेरी अवस्था मे एकदम परिवर्तन हो गया। यह कहावत झूँठ नहीं है कि प्रत्येक काम के लिए एक खास समय आता है; और तब तक उसकी प्रतीक्षा करनी पडती है। फलतः मैंने भी परमात्मा से प्रार्थना की ऊपर आकाश की ओर देखते हुए नये उगने वाले तारे को लक्ष्य कर के प्रार्थना की कि "हे ईश्वर! मैं आज से अच्छा बनने का प्रयत्न करूगा। मेरे इस निश्चय—प्रण से आप प्रसन्न हों और मुझे अच्छा बनाने के साथ ही मेरी जीजी को भी रोगमुक्त करे।"

और सचमुच ही उस दिन से जीजी की हालत सुधरने लगी। थोड़े ही दिनों में वह बिलकुल स्वस्थ हो गई। वह शरीर से स्वस्थ हुई, और मैं मन से—अन्तःकरण से—शुद्ध हो गया, दोनों का ही पुनर्जन्म हुआ! जीजी को नया शरीर प्राप्त हुआ और मुझे नया हृदय मिला!

२१ सात्त्विक प्रेम की भूख

"क्यों रे गोविन्द! शुरुआत कर दूं न अब ?" श्याम ने पूछा , इस पर गोविन्द ने कहा " जरा देर ठहरो श्याम! वे बूढ़े बाबा अभी नहीं हैं। उन्हें तुम्हारे मुँह का एक शब्द भी खोने— न सुन पाने—से दुःख होता है।

"किन्तु ऐसा मेरे शब्दों मे है ही क्या ? सीधी-सादी बातें ही तो मैं सुनाता हूं ; दुनिया बड़ी विचित्र है। " श्याम ने उत्तर दिया।

"तुम जो कुछ कहते हो, वह तुम्हे अच्छा लगता है, इसी लिए कहते हो या कि वह तुम्हे भी व्यर्थ ही प्रतीत होता है ? यदि अपने लिए व्यर्थ प्रतीत होते हुए भी तुम यह सब स्मृतिया लोगों को सुनाते हो तो, एक प्रकार का पाप करते हो ! यह सब लोगो के लिए धोखे की बात होगी ! क्योंकि जो वस्तु अपने-आप को त्याज्य और अयोग्य जान पड़ती हो, वह दूसरो को कैसे दी जा सकती है ? " माधव ने पूछा।

इस पर गोविन्द बीच मे ही कहने लगा " किन्तु लोगों के हृदय में जो श्रद्धा है उसे क्यों हटाते हो ? उन्हें तुम्हारी बातें सुनने में आनन्द प्राप्त होता होगा तभी तो वे आते हैं, और समय पर आने के लिए उत्सुक रहते हैं ! "

"लो, देखो ! ये बुढे बाबा आ ही गये! आइये, इधर बैठिये " राम ने कहा।

किन्तु बूढे बाबा ने एक तरफ बैठते हुए उत्तर दिया "यहां ही अच्छा है। यों इधर सामने बैठता हू। "

इसके बाद राजा ने कहा " श्याम ! अब करो शुरुआत ! " सब लोग उत्सुक हो चले। श्याम की कथा आरम्भ हुई। उसकी वह मधुर मुरली बजने लगी।

" मुझे पिताजी ने अपने गाँव से छह कोस दूर दापोली नामक कसबे में अंगरेजी पढ़न के लिए भेजा था। मामा के यहां से प्रशसा प्राप्त कर मैं आही चुका था। इसके बाद कुछ दिनों तक घर पर ही

में वेद आदि पढ़ता रहा। किन्तु अंत में पिताजी ने मुझे अंगरेजी पढाने का ही निश्चय किया। क्योंकि दूसरी कक्षा तक तो मैं पढ़ ही चुका था।

दापोली एक छोटा-सा किन्तु बडा सुन्दर कस्बा है। वहां की हवा बड़ी आरोग्य-कारी। समुद्र वहां से केवल चार ही कोस पर है। वहां बड़े-बड़े मैदान भी हैं। किसी समय वहा गोरो की पलटन रहती थी; इसी लिए अब तक उसे केम्प दापोली कहते हैं। बाद में अशिक्षित लोग इस केम्प शब्द को 'कॉप' कहने लगे; और इसी लिए आज वह कॉप-दापोली कहलाती है। वैसे भी यदि देखा जाय तो मेरी तहसील-वाला प्रदेश अगरेजी के अधिकार मे अन्य महाराष्ट्र से पहले ही चला गया था। नाना साहब पेशवा ने आंगरे की जलसेना को अंगरेजों की सहायता से डुबादिया; यह उनके हाथो भयकर भूल हुई थी। क्योंकि आंगरे की जलसेना अंगरेजों के लिए घोढे की पछाड़ के समान थी। उसने केवल अंगरेजों की ही नहीं बरन् अन्य कई विदेशियों की जलसेना का अरब-सागर मे पराभव किया था। महाराष्ट्र मे सबसे पहले छत्रपति शिवाजी महाराज ने ही जलसेना का बड़े प्रयत्न से निर्माण किया था। उनसे पहले मराठो का एक डोंगा तक अरब-सागर में तैरता नहीं दिखाई देता था। किन्तु उन महापुरुष ने जलसेना का महत्त्व समझ लिया था। उनकी राजनीति में यह एक सिद्धान्त ही बन था कि 'जिस का सागर वही धनागर' अर्थात जिसका समुद्र पर अधिकार है वही यथार्थ में सम्पति-शाली है। किन्तु नाना साहब ने खुद ही अंगरेजों के मार्ग की यह बाधा हटा दी। और इसी कारण उन्हें आंगरे की जलसेना को नष्ट करने के लिए बदले में जो प्रदेश मिला उसमे बाणकोट, दापोली आदि समुद्र तटवर्ती गांव थे। परन्तु इसी तहसील के वेलास नामक गाँव के रहने वाले नाना फडनवीस थे, जिन्होंने मनसबदारी की तलवार चमकाई थी। इसी तहसील में देश की स्वतत्रता के लिए आमरण जूंझने वाले तथा "स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और उसे मैं अवश्य प्राप्त करूंगा" की गर्जना करने वाले 'केसरी' और 'मराठा' के सम्पादक एवं गीता-रहस्य के निर्माता लोकमान्य तिलक भी उत्पन्न हुए थे। इसी प्रकार सामाजिक दासता के विरुद्ध विद्रोह खड़ा करने एव केवल तीन ही लड़कियां लेकर .हिंगने (पूना) में आश्रम स्थापित करने वाले

महिला-विद्यापीठ के संस्थापक कर्मवीर 'कर्वे' की जन्मभूमि भी इसी ताल्लुके में है। स्वाभिमानी विश्वनाथ नारायण मंडलिक और गणित-विशारद रघुनाथ पुरुषोत्तम परांजपे भी यहीं के हैं।

दापोली के आसपास जंगल भी खूब है। सुरू वृक्ष की घनी झाड़ी है। उनमें से होकर जब हवा चलती है तो ऐसा जान पड़ता है मानों समुद्र गर्जना कर रहा है। उसमें काजू के वृक्ष भी बहुत हैं। गर्मी के दिनों में लाल, पीले या सिन्दूरिया रंग के काजू के गुच्छे उन वृक्षों पर झाड़-फानूस की तरह डोलते रहते हैं। सारांश, दापोली और उसके आसपास के गाँव प्राकृतिक-सौन्दर्य की लीलाभूमि के समान हैं।

उस समय दापोली का अंग्रेजी-स्कूल मिशन् का था। किसी समय वहां का छात्रालय (बोर्डिंग) सारे बम्बई प्रदेश में विख्यात हो गया था। मिशन-स्कूल एक टेकड़ी पर था। उसके चारों ओर कलमी आम के पेड़ भी बहुत थे। इस कारण स्कूल बहुत सुन्दर दिखाई देता था। उसी स्कूल में मैं भर्ती हुआ; और यथानियम मेरी अंग्रेजी शिक्षा आरंभ हो गई।

दापोली से मेरा गाँव साढ़े छह कोस दूर था। इस लिए प्रथमतः मुझे यह विश्वास नहीं हुआ कि इतनी दूर मैं पैदल जा सकूंगा या नहीं! किन्तु एक बार चलकर जाने पर आत्म-विश्वास हो गया। बस; तभी से मैं प्रत्येक शनिवार को घर जाने लगा। दो-पहर को दो बजे छुट्टी होते ही मैं चल देता और शाम को दिये लगने तक घर पहुँच जाता। इस प्रकार रविवार का दिन घर में माता की प्रेममयी छाया में बिताकर सोमवार को प्रातः फिर चल देता, सो दस बजे तक दापोली-स्कूल में पहुँचा जाता।

इसी नियमानुसार एक शनिवार को मैं घर जाने के लिए निकला। किन्तु उस दिन मेरा चित्त कुछ खिन्न और दुखी था। उस दिन ऐसा जान पड़ता था, मानो संसार में मेरा कोई भी नहीं है। मुझ में बचपन से ही ऐसा भाव रहा है; और इसी लिए कभी-कभी मेरे मन में एकदम यह विचार उठता था कि सचमुच ही संसार में मेरा कौन है? इसी विचार के कारण मैं अनेक बार जी-भर कर रोता रहा हूं। मुझे कितनी ही बार यह भी अनुभव हुआ है कि बिना किसी कारण के ही एकदम आँखें भर

आई और हृदय गद्-गद् हो गया। मैंने देखा कि इस अपार सागर में मैं एक बिन्दू के समान, किसी वृक्ष की एक छोटी-सी पत्ती के समान हू। क्षणभर मे ही सूख जाऊगा, टूट कर गिर जाऊगा। इस प्रकार निराधार-भावना के निराश-पूर्ण विचार मेरे मन मे बचपन से ही उत्पन्न होते रहे है। बाल्यावस्था से ही मै सहानुभूति और प्रेम का भूखा रहा हू। मानों ये दोनो ही वस्तुएँ मुझे सैंकड़ो जन्म से नहीं मिली है; : और इसी लिए हजारो वर्ष से मैं इन दोनों का भूखा हू। ठीक भी है। मनुष्य अन्न के बिना तो जी सकता है, किन्तु प्रेम के बिना उसका जीवन क्यों कर सम्भव है? प्रेम ही तो जीवन का सार है। जो प्रेम स्थिर है, अटूट है, वही जीवन-रूपी वृक्ष का पोषण कर सकता है। वृक्ष के प्रत्येक पत्ते और शाखा-प्रशाखा एव समग्र अग प्रत्यग में आमूलाग्र जिस प्रकार जीवन रस भरा हुआ होता है, उसी प्रकार प्रेम भी होना चाहिए। किन्तु सोडा-वॉटर की बोतल खोलते ही उफन् कर बाहर निकल जाने वाले पानी की तरह; क्षणभर में नामशेष हो जाने वाला प्रेम जीवन में ताजगी, नवीनता, सौन्दर्य, उल्हास और उत्साह का सचार नही कर सकता।

उस दिन मानो मै इसी प्रेम के लिए भूखा हो रहा था। मैं चल दिया। घर की प्रेम की हवा खाने के लिए निकल पडा। लोकमान्य तिलक कहा करते कि "मैं सिंहगढ़ पर जाकर दो महिने रहता हू। इतने समय में वहां की शुद्ध और स्वच्छ हवा, स्वतंत्रता की हवा भरपेट खा लेता हू: और वह मेरे लिए वर्षभर तक काम देती है।" मेरी भी मानो यही दशा हो रही थी। प्रति सप्ताह मैं घर जा कर वहां की प्रेममयी वायु सेवन कर आता; और उसी के बल पर मैं प्रेम-हीन ससार में छह दिन बिताकर फिर घर चला जाता। उस अवस्था मे मैं प्रेम पाने के लिए क्षुधार्त रहता था। किन्तु आज यह अनुभव होता है कि प्रेम पाने की अपेक्षा प्रेम करने-देने में विशेष आनन्द प्राप्त होता है। फिर भी यदि अंकुर को छोटा रहने की दशा में प्रखर ताप से सूखने या जलने न दे कर आवश्यकतानुसार जल से सींचा जाय, तो बड़ा हो कर वही हजारों की प्रेमरूपी छाया दे सकता है। जिन्हें बढ़ती हुई अवस्था-बचपन—में प्रेम की प्राप्ति नहीं होती, वे आगे चलकर जीवन में कठोर स्वभाव के हो जाते हैं। वे संसार के साथ प्रेम

नहीं कर सकते। उन कुछ भी नहीं दे सकते। क्योंकि संसार में जो किसीसे कुछ लेता है, वही दूसरों को दे भी सकता है।

मैं रास्ते में चला जा रहा था और बीच-बीच में मेरी आँखों से आँसू टपक रहे थे। उस साढ़े छह कोस के रास्ते में बीच में कितने ही गाँव आते थे। एक जगह जगल भी था। करंजनी गाँव के किनारे मार्ग में ही एक कुआ था। कहते हैं कि किसी समय उस कुए के पास उधर से जाती हुई एक सारी बरात ही अदृश्य हो गई थी। इसी लिए उस स्थान पर पहुँचते ही मुझे भय-सा लगता था। और मैं राम-राम बोलता हुआ दौड़ कर निकल जाता था। इसके बाद जंगल आने पर यह शंका होने लगती कि कहीं इधर-उधर से बाघ या सिंह तो नहीं आ जायगा! उस समय मैं यही कोई बारह-तेरह वर्ष का था। बहुत बड़ा तो था ही नहीं। मार्ग में चलते हुए मुझे प्यास लगी, इस लिए, एक कुए में उतर कर मैंने पानी पिया। वह घोडा-कुण्ड था। अर्थात उसमें घोडा भी अंदर जा कर पानी पी सके; इतनी चौड़ी सीढ़ियां बनी हुई थीं। मैं पानी पी कर आगे बढ़ा। रात हो जाने के भय से मैंने फुर्ती के साथ पैर उठाना आरम्भ किया।

अन्त में जैसे-तैसे मैं घर पहुंच गया। उस समय दिये जल चुके थे। छोटा भाई श्लोकादि सुना रहा था। माता चूल्हा सुलगा रही थी। दादी किसी के लिए राख की डली पर मन्त्र फूंक रही थी। किसी को बुरी नजर लग जाने पर लोग मेरी दादी के पास आम के पत्ते पर ठंडी राख की चुटकी ले कर आते; और दादी मन्त्र बोलती हुई उस राख को उंगलियों से मसल देती। वह राख ले जा कर जिसे नजर लगी हो उस बच्चे के सिर-कपाल पर लगा देते थे।

मेरे आँगन में पहुँचते ही छोटे भाई "दादा आया, भैय्या आया" कहकर आनन्द के मारे कूदने लगे; और मुझ से लिपट गये। उनके साथ मैं घर में गया। माता ने पूछा "क्या आज देर से चला था! कुछ जल्दी चल देना चाहिए था! रास्ते में ही रात हो गई!"

मैंने कहा "मुझ से चला नहीं जाता था, माँ। मेरे हाथ-पाँव ढीले पड गये थे।"

"तो फिर पैदल क्यों आया ? अगली संक्रान्ति को आना था!" माता ने कहा।

"मैं तुझे देखने—तेरे दर्शन करने को आया, माँ! तेरी ओर श्रद्धा-भक्ति और प्रेम-पूर्वक देख लेने से मुझमे शक्ति आ जाती है। उस शक्ति को ले कर मैं वापस चला जाऊंगा।" यों कहकर मैं माता से लिपट गया और रोने लगा। माता को भी रोना आ गया और भाई भी रोने लगे।

किन्तु क्षणभर में ही माता ने अपने आँसू पोंछ कर साडी के पल्ले से मेरे आँसू भी पोछ दिये और कहा "ले यह गर्म पानी; इससे पाँव धो डाल। किन्तु ठहर। थोडा-सा तैल लगा देती हू; ऊपर से गर्म पानी से धो डालना।" यों कहकर माता ने मेरे पैरों में तैल की मालिश कर दी। वह पैरों में तैल रही थी और मैं उसकी ओर देख रहा। उस समय मुझे कितना आनन्द हो रहा था! उस समय की अवस्था के लिए मैं आनन्द शब्द का भी प्रयोग करना नही चाहता। क्योंकि उसके लिए यह शब्द अपर्याप्त होता है। वह स्थिति अनिर्वचनीय थी, अति पवित्र थी।

मैं हाथ पाँव धो कर चूल्हे के सामने माँ के पास जा कर बैठ गया। इतने ही मे छोटे भाइयो ने आकर कहा "दादा! कहानी सुना! नहीं तो हमे कोई श्लोक ही सिखला।" तब तक पिताजी बाहर से आ गये। वे कहीं त्रस्त (खिन्न) हो कर आये थे। कदाचित् इसी लिए उन्हे मुझको देखकर सदैव की तरह आनन्द नहीं हुआ। वे मुझ से बोले भी नही। बाहर ही पाँव धो कर सध्या करने बैठ गये।

उसी समय उन्होने पूछा "क्यों रे! तूने संध्या कर ली?" मैं उन दिनों संध्या तो करता था; किन्तु सध्या के मत्रो का अर्थ न समझते हुए भी तंत्र (क्रिया) मात्र सब करता था, और मुँह से सब कुछ बोल जाता था।

मैंने कहा "अभी नहीं की; अब करता हू।"

यह सुन उन्होंने क्रोध-भरे स्वर में कहा "तब तू वहां चूल्हे के पास क्यों बैठा है? उठ! पहले संध्या कर; फिर बाते करना।"

इस पर माता ने कहा "यह अभी तो आया है। थक गया है। हाथ पाँव शिथिल रहे हैं। इसी लिए सुस्ताने को बैठ गया था। जा श्याम, उठ! संध्या-वंदन कर!"

मैं पचपात्र मे जल लेकर पाट पर जा बैठा, और कपाल पर भस्म लगा कर आचमन करने लगा। उस समय मेरे आँसुओं के रूप से सैकड़ों अर्घ्य ईश्वर के चरणों मे गिर रहे थे। पिताजी ने फिर पूछा "वहा भी सध्या आदि करता है या नही? और ये सिर पर बाल कितने बढ गये है? क्या वहां नाई नहीं मिलता है? सिर कौए की तरह हो रहा है। मैं जब वहां आया तब भी तो कह आया था कि हजामत बनवा लेना! फिर क्यों नहीं बनवाई? जान पड़ता है अब तेरे सींग निकलने लगे हैं, क्यो? कल सबेरे उस गोंदू या लच्छू नाई को बुलाकर हजामत बनवा ले नहीं तो यहां रहने की जरूरत नही। एकदम वापस दापोली चला जा।"

मैं तो यहा प्रेम की भूख मिटाने आया था, किन्तु मिली मुझे फटकार! चाहिये तो थी रोटी और मिले मुझे पत्थर! मैं अपने हृदय के उफान् को न रोक सका। वह निकल ही पडा। इस पर फिर वे झिडकते हुए कहने लगे "इस तरह रोने को क्या हुआ? क्या किसी ने मारा है? सब ढोंग करना सीख लिया है।"

इस पर माता ने मेरा पक्ष लेते हुए कहा "बनवा लेगा कल हजामत। वहां पैसे देने पडते हैं। पास मे नहीं होंगे इस लिए नही बनवा सका होगा। फिर वहां दस बजे ही स्कूल में भी तो जाना पडता है। श्याम रो मत, चुप हो जा। यदि सध्या हो गई हो तो उठ कर आप आरती कीजिये। मै थालिया परोसती हू। बेचारा भूखा हुआ होगा।"

इस प्रकार माता अमृतमयी वाणी मे मुझे आश्वासन दे रही थी। मुझे जीवन और मृत्यु, अमृत और विष का साथ ही साथ अनुभव हो रहा था। ग्रीष्म और वर्षा, शरद और शिशिर साथ-साथ अपना प्रदर्शन कर रहे थे।

आरती हो गई और थालिया भी परोस दी गई। हम लोग भोजन करने बैठे। माता ने मुझे दही परोसा। किन्तु केवल मेरे ही सामने रखा। पास में छोटा भाई बैठा था, उसे नही परोसा। तब मैंने यह देख कर कि मेरी ओर किसी का ध्यान नही है, अपने पास का दही छोटे भाई के भात में मिला दिया। उसे वह दही देते हुए मैं अपने को धन्य मान रहा था। उस दिन मैं भ्रातृ-प्रेम के कारण गद्-गद् हो रहा था। उस समय

यदि मेरे शरीर में कहीं उंगली भी लगाई जाती तो उसी क्षण पानी निकल आता! मानो मैं अश्रुमय हो गया था, आँसुओं की मूर्ति बन गया था। बडा हो जाने पर मैंने अपने भाइयों को रुपये-पैसे भी दिये होंगे; किन्तु उस रात को दही देने में जो मधुरता थी, जो सहृदयता थी, वह उन रुपये पैसों में नहीं हो सकती।

हम सब भाई बाते करते-करते बिस्तरों पर जा लेटे। उन्हे नींद आ गई; किन्तु मैं जागता रहा। बड़ी देर तक मन ही मन अपने भावावेश को रोकता रहा। अन्त में मुझे भी नींद आ गई। प्रातःकाल उठकर पिताजी खेत पर चला गये। मैं जाग चुका था। माता चौका लगा रही थी, और मुँह से कृष्ण की बाल-लीला के गीत गा रही थी :—

कृष्ण यशोदा का बाल। सुकुमार लडैता लाल॥
कृष्ण यशोदा का प्यारा। प्रिये प्रेम दुग्ध-धारा॥
कृष्णबाल मेघ श्याम। प्यारे भैया बलराम॥*

मैं बड़े ध्यान से गीत सुन रहा था। मेरी माता का नाम यशोदा था और मेरा नाम था श्याम! मानो, माता मुझे ही प्रेमरस का पान करा रही थी। वह प्रेम-रूपी दूध की धार पिला रही थी। मैं एकदम उठा और माता के शरीर से लिपटकर कहने लगा "माँ, तू मुझे अपनी गोद में सुलाकर अपनी साडी चौतही उढा दे। इसके बाद थोड़ी देर मेरी पीठ थप्थपा। रहने दे यह चौका-बर्तन! यह फिर हो जायगा।" भला; बेटे के सामने माँ का क्या वश चल सकता है! मैं उस समय मानो दुधमुँहा बच्चा ही बन गया और झट् से जा कर माँ के पास सो गया। माता मेरी पीठ थप्थपाती हुई गाने लगी :—

नव प्रभात का समय, दूर से कुक्कुट शोर मचावे।
तो भी मेरे लाल लाड़ले, तुझ को निंदिया आवे॥१॥

---

* **कृष्ण यशोदेचा बाळ। सुकुमार लडिवाळ॥**
कृष्ण यशोदेचा तान्हा। त्याला पाजी प्रेमपान्हा॥
कृष्णबाल मेघःश्याम। यशोदेचें प्राशी प्रेम॥

पनिहारिन सब चलीं कुए पर, कटि पे कलसा धारे।
जल भर कर लाऊं मैं झटपट, तू भी सो जा प्यारे॥२॥
सुन्दर पलना, नर्म बिछौना, मेरे लाल को भावे।
गीत सुनाऊं तुझे लाड़ले, मधुरी निंदिया आवे॥३॥
अरुणोदय हो गया वृक्ष पर, कौए बोल सुनावें।
पर तू सुख की नींद सो रहा, मैया बलि-बलि जावे॥४॥
काम-काज की घड़ी अभी तू, कर विश्राम दुलारे।
सोजा सोजा-सोजा प्यारे, श्याम नयन के तारे॥५॥*

मैंने गीत सुनते-सुनते ही कहा "माँ, मैं अभी यहां से चला जाता हूं। अब यहा नहीं ठहरूगा। मेरे आने से पिताजी कितने नाराज हुए! इस लिए उनके खेत से लौटने के पहले ही मुझे चला जाने दे।"

यह सुन माता ने कहा "नहीं, ऐसा मत करे श्याम! भला, यह भी कोई बात है! अरे. यदि वे तुझ पर नाराज भी हुए तो क्या उनके मन में तेरे लिए बुरे भाव हैं? बाहर किसी ने उनका अपमान किया होगा, उसी गुस्से में वे घर आ कर तुझे से इस प्रकार बोले हैं! आज कल अपनी दिन-दिशा बुरी है! तू भी तो इस बातको जाणता है नॅ? उनकी चित्त निराशा के कारण उदास रहता है! उनकी बात पर ध्यान नहीं देना चाहिए! अरे! जब उन्होंने स्वयं कष्ट उठा कर तुम्हें बडा किया, तो क्या उन्हे दो शब्द कहने का भी अधिकार नहीं? इतने वर्षों तक उन्होने लोगों के मुँह से भला-बुरा सुना, अपमान सहन किया और धक्के सहे, कष्ट भोगा और तुम्हे छोटे से बड़ा किया, तुम्हे पढाने के लिए कर्ज लिया और खुद फटी

---

* पहांटेची वेळ। दूर कोंवडा आरवे।
परी बाळा झोंपी जावें। लहान तूं॥ अंगाई॥
पहांटेची वेळ। वाजुं लागती रहाट।
बाळा तूं रे प.ळण्यांत। झोंप घेई॥ अंगाई॥
पहांटेची वेळ। का-का करितो कावळा।
झोंपे परि माझ्या बाळा। उठूं नको॥ अंगाई॥
पहांटेची वेळ। कामाची आहे घाई।
झोंप तूं बाळा घेई। आई म्हणे॥ अंगाई॥

धोती पहन कर भी वे तुम्हे बराबर पैसे दे रहे है! क्या उन सब उपकारों को तू इन दो शब्दों की फटकार से ही भूल जायगा? और उन्होने भी तेरे सिर के बाल बहुत बढ़ जाने से ही ऐसा कहा! पुराने लोगो के ये बाते नहीं सुहाती! तू अभी छोटा है, इसी लिए उन्होने ये बाते तेरे भले के लिए कही हैं। कल को बडा हो जाने पर कौन कहने वाला है? और कौन सुनने वाला! क्या माता पिता को सतुष्ट करने के लिए तू हजामत बनवाने को भी तैयार नहीं हो सकता? माता पिता की धर्म-भावना को आघात न पहुँचाने के लिए तू इतना भी करना नहीं चाहता?"

इस प्रकार माता मुझे समझा रही थी। किन्तु मैंने उसके अन्तिम प्रश्न पर पूछा कि "इन बालों मे किस बात का धर्म है?"

इस पर उसने कहा "धर्म तो प्रत्येक बात और प्रत्येक वस्तु में हैं। क्या खाया जाय और क्या पिया जाय, इसमे भी धर्म हैं। अच्छा, यह तो बतला कि तू सिर पर इस प्रकार बाल ही क्यों बढा रहा है? केवल मोह, सुन्दर दिखाई देने की भावना से ही तो! किन्तु इस मोह-मिथ्या-भाव को छोडने का नाम ही धर्म है।"

मित्रो! माता उस समय भले ही मुझे अपनी बात ठीक तरह पर न समझा सकी हो; किन्तु आज उसका प्रत्येक शब्द मेरी समझ में आ रहा है। हम आश्रमवासियों के लिए यह बतलाने की आवश्यकता नही रह जाती कि हमारी प्रत्येक बात मे, प्रत्येक क्रिया मे धर्म तत्त्व विद्यमान है। प्रत्येक काम को विचार-पूर्वक करने, सत्य-हित और कल्याण के लिए करने का नाम ही धर्म है। बात-चीत, उठने बैठने, देखने-सुनने, खाने-पिने, नहाने-धोने, सोने-जगने, लेने-देने आदि प्रत्येक कार्य मे धर्म है। धर्म का अर्थ है हवा और धर्म का रूप है प्रकाश। हमारे जीवन के लिए धर्मरूपी हवा की सदा-सर्वदा और सर्वत्र ही समान रूप से अनिवार्य आवश्यकता रहती है। मैंने सिर पर जो बाल रखवाये थे; वे केवल अपने आप को सुन्दर दिखलाने की भावना से ही! किन्तु सच्ची सुन्दरता सद्गुण और सदाचार एव स्वच्छता ही में सकती है, यह बात आज मेरी समझ में आ रही है।

उस दिन मैं पिताजी पर अप्रसन्न हो कर दापोली जा रहा था,

किन्तु माता ने नही जाने दिया। वह मुझे प्रेम-दान के साथ ही सन्मार्ग-प्रदर्शन भी करती थी। उसका प्रेम अन्ध और अज्ञान-मय नहीं था।

इस प्रकार समझा-बुझा कर माता अपने काम-काज करने चली गई और मैं अपने भाइयो के साथ कुछ देर तक और सोता रहा। इसके पश्चात् उठ कर मैं नाई को उसके घर से बुला लाया। वह हमारा पुश्तैनी नाई था। उसे वर्ष भर में निश्चित परिमाण मे अनाज दिया जाता था; और बदले मे वह हर आठवे दिन आ कर घर के लोगो की हजामत बना जाता था। साथ ही दिवाली के दिन वह तैल की मालिश करने भी आता था। उसके साथ उन दिनों इस प्रकार शुद्ध प्रेम-मय सम्बन्ध रहता था। किन्तु खेद है कि आज शहरा मे तो क्या छोटे-छोटे गाँवों मे भी वह भाव देखने मे नहीं आता। वहां भी आज यह प्रथा नामशेष होती जा रही है।

गोविन्दा हमारा घरेलू नाई था। उसने मुझे देखते ही पूछा "क्यो श्याम भैया! सिर पर बाल तो बहुत बढा लिये हैं?" मैंने कहा "गोविन्द! तेरा हाथ बडा हल्का है। वे कॅाप (केम्प) दारोली के नाई तो बहुत ही रुलाते हैं।" इन शब्दो को सुन गोविन्द को सन्तोष हुआ।

हमने स्नान किया और पिताजी भी बाहर से लौट आये। आते समय वे साथ मे एक तॅवस (पुरानी ककडी) भी लाये थे। कोंकण मे इस प्रकार ककडियाँ छत मे लटका कर महिनो तक रखते है। वे चार-पाच महिने तक खराब नही होती। वर्षाऋतु के कद्दू और ककडियाँ होली तक खराब नही होते। होली का ढोल वजते ही समझ लिया जाता है कि अब वे काम के नही रहेगे। अस्तु।

पिताजी ने मेरी माता से कहा "यह ककडी लाया हूं। इसके पतोडे बनाना। श्याम को वे बहुत पसद हैं। ये हल्दी के पत्ते भी लाया हू।" इसके बाद हम लोगों की ओर देख कर बोले "मालूम होता है तुम लोगो ने स्नान कर लिया। श्याम, जरा चूल्हे मे इन्धन डाल दे। मैं भी स्नान कर के देवालय में जाता हू। आज आवर्तन (पाठ) करना है। तेरे लिए मैं हर पंदरहवें दिन गणपति पर एकादश-पाठ द्वारा अभिषेक किया करता हूं।"

पिताजी के मधुर शब्दो को सुन कर मैं बहुत झेंपा और शर्माया।

कल ही रात को वे मुझ पर नाराज हुए थे; किन्तु आज उनका कितना हार्दिक-प्रेम मेरे साथ प्रकट हो रहा था! मेरे कल्याण के लिए और मेरा अध्ययन ठीक तरह पर चलता रहे, इसके लिए वे निरन्तर परमात्मा से प्रार्थना किया करते थे! मुझे ककड़ी के पतोड़े बहुत पसद हैं, इस लिए बाहर घूमने जा कर खास तौर पर ये पुरानी ककड़ी लाये! और उन्हीं पर नाराज हो कर मैं दापोली चला जाने को था! यदि बाहर से लौटने पर उन्हें पता लगता कि गुस्सा हो कर मैं वापस दापोली चला गया, तो उन्हें कितनी निराशा होती! उस प्रेममय महान् पितृ-हृदय को कितना दुःख होता? उस समय तो वे यही सोच कर खिन्न होते "क्या यही मेरे पुत्र की पितृभक्ति है! यही सन्तान की कृतज्ञता है! क्या इसी का नाम प्रेम है, कि पिता के दो कटु शब्द भी वह सहन न कर सके! केवल दो कटु बातों से ही वह मर जाय।"

मैंने कृतज्ञ-भाव से पिताजी की ओर देखा। बाहर चूल्हे पर पानी गर्म करने के लिए मैंने उसमे घास-फूस डाल कर आग सुलगाई। इसके बाद घर मे जा कर पिताजी के लाये हुए पुष्पों मे से जसौंधी के डेंट आदि तोड कर साफ किये; और भिन्न-भिन्न रगो के विभिन्न प्रकार के फूलो को थाली मे सजा कर रख दिया। तुलसी, दूर्वा (दूब) और बेलपत्र भी ठीक तरह पर रख कर चुटकी भर चावल भी पूजा के लिए रख दिये। इस प्रकार पूजा की सारी तैयारी कर दी। कोरंटा के गुलाबी फूल बहुत कोमल दिखाई देते थे; साथ ही उनमें गुलाब और कर्ण (कनेर) आदि के फूल भी थे। चरणामृत की छोटी-सी घण्टी मे नैवेद्य के लिए दूध भी रख दिया था। इसके बाद पिताजी के लिए सध्या का पाट (पटला) रख कर उसके पास ही भस्म का गोला भी रख दिया।

इस प्रकार पिताजी के लिए पूजन की तैयारी करने के बाद मैं माता के कार्य मे सहायता देने लगा। ककड़ी को छील कर मैंने उसे किसनी पर कसा। हल्दी के पत्ते पोंछ कर साफ किये और इसके बाद मैं पत्तो पर आटा लपेटने लगा। यह काम माता ने मुझे पहले ही सिखा दिया था। चावल का आटा ककडी के कीस में मिला कर उसे गुड़ के पानी में घोल लेते हैं, और तब वह गाढ़ा गाढ़ा पत्तो पर फैलाया जाता है। आधे पत्ते पर

वह घोल फैला कर बाकी आधा उस पर ढँक दिया जाता है इसके बाद उन्हें भाफ पर पकाया जाता है। उबल जाने पर पत्ता अलग हो कर पतोडा तैयार हो जाता है।

जब पिताजी की संध्या पूजा समाप्त होने आई; तो मैंने उठ कर सरकण्डे के टुकडे को चूल्हे मे से सुलगा कर नीरांजन (दीपक) जलाया और वह पिताजी के पास रख दिया। हम लोग निरर्थक दिया-सलाई नहीं जलाते थे। घर की पूजा समाप्त करके पिताजी मंदिर मे गये इधर तब तक मैंने एक नारियल फोडा। क्योंकि पतोडे के साथ लगावन भी तो चाहिए था। वह और किस वस्तु के साथ खाया जाता? कोकण में घी की तो वैसे ही कमी रहती है; इसी लिए गरीब लोग छाछ की बूंदो से ही अन्नशुद्धि कर लेते है! इस प्रकार घी की कमी कोकण-प्रदेश में नारियल से पूरी कर ली जाती है। कच्चा नारियल किसनी पर कस कर उसे थोडे-से गर्म पानी मे नमक डाल कर मिला देने के बाद हाथों से मसल कर निचोड लिया जाता है। यह नारियल का 'स्वरस' कहलाता है। यह बडा ही स्वादिष्ट और रुचिकर होता है। इसके साथ कोंकण में पतोडे, मोदक, खाडवी (खाद्य-विशेष) आदि पक्वान्न भी खाये जाते हैं। मैंने अच्छा गाढा अगरस तैयार किया। भोजन की तैयारी हुई; पिताजी आये और बडे ही आनन्द के साथ भोजन हुआ। उस दिन मुझे सब से अधिक आनन्द हो रहा था। पिताजी ने कहा "अरी, श्याम को एक पतोडा और रख. मेरी तरफ का परोस।" माता की तरह वे भी अत्यंत प्रेमी थे। उन्होंने शारीरिक-दण्ड (मार-पीट) हमे कभी नही दिया। वे दस बार उठने-बैठने, आँगन मे का घास उखाडने, किसी वृक्ष को चार बडे पानी पिलाने, देवता को दस बार नमस्कार करने, आदि की ही सजाएँ देते थे। कभी-कभी वे गुस्से में दो-चार कड़ी बाते भी कह जाते; परन्तु मार-पीट कभी नही करते थे।

हमारा भोजन समाप्त हो जाने के बाद माता भोजन करने के लिए बैठी; और मैं उसके पास बैठ कर बाते करने लगा। इतने ही में सबसे छोटा भाई जो कि पाच-छह वर्ष का था, वहां आ कर पूछने लगा "माँ, जाऊ क्या?"

मैंने कहा "कहां जाना है रे बाबू!"

उसने कहा "माँ जानती है: जाऊं क्या?"

इस पर माता ने कहा "जा, परन्तु वहाँ श्लोक गाते हुए मत बैठ रहना।" यह सुन सदानन्द हँसता हुआ चला गया। उस छोटे भाई का नाम ही सदानन्द था। पिताजी उसे इसी नाम से सम्बोधन करते थे, परन्तु हम उसे बाबू कह कर पुकारते थे।

मैंने पूछा "क्या वह करदीकर के यहां झूले पर बैठने के लिए गया है?"

माता ने कहा "नहीं रे, उसे टट्टी जाना होगा। किन्तु वह बडा शरारती है! टट्टी जाने के लिए भी पूछने आता है! वैसे कहीं किसी के घर जाना हो तो कभी पूछता तक नहीं। लुच्चा कहीं का! वहां खुड्डी पर बैठकर जोरों से श्लोक बोलने लग जाता है: पागल!" इन बातों को सुन मुझे हँसी आ गई। बात ही बात मे माता ने कहा "श्याम, यदि आज तू चला जाता तो उन्हे कितना दुःख होता! उनका अन्न जहर हो जाता, ग्रास गले के नीचे न उतरता। किसी समय जब उन्हे हिचकी आती या हाथ मे का ग्रास नीचे गिर जाता है; तो वे उसी क्षण कहने लगते हैं कि "कौन याद कर रहा है! गजानन या श्याम?" और उनकी हिचकी रुक जाती है। उनका तुम पर कितना अधिक प्रेम है! अरे मैं भी बीमार ही बनी रहती हूं। सच मानना, मै अब अधिक दिन नहीं जियूंगी, उन्हे अकेला छोडकर मुझे चला जाना पडेगा। उन्हे भाई बहन भी नहीं पूछते। गरीब का सहायक कौन हो सकता है? तुम लडके ही। तुम्हारी ओर देखकर ही वे जी रहे हैं। तुमसे ही उन्हे आशा और सुख हो सकता है। कहते-कहते माँ का गला भर आया। कुछ क्षण पश्चात् उसने फिर कहा "बेटा! वे हमेशा कहा करते है कि यदि ये लडके अच्छे हुए तो मेरा कालक्षेप हो जायगा; नहीं तो ये ही मेरे लिए भी काल बन जायँगे। इस लिए फिर कहती हूं श्याम, तुम उनके लिए काल-स्वरूप मत बनना, बल्कि यदि काल आवे तो उसे मार भगाना, उन्हें सुखी करना।"

माता का भोजन समाप्त हो जाने के बाद मैंने उसके काम मे मदद

देना आरम्भ किया। पानीसे धोकर पटिये अलग रख दिये, क्योंकि भोजन करते समय बैठने के पटिये पर जूँठन पड जाती है, इस लिए उन्हें पानी से धोकर अलग रखा जाता है। इसके बाद पूजन और रसोई के सब बर्तन-भाडे उठाकर माँजने के लिए इकट्ठे किये और उन्हें बाहर रख दिया। माता ने वर्तन माँजे और मैंने उन्हें धोकर पोंछ डाला। तत्पश्चात् माता ने छाछ और दही की हँडियाएँ गर्म पानी से धोकर अन्त मे सदानन्द की छोटी-सी हँडिया भी धोई। उसमें केवल उसीके लिए दूध जमाकर दही बनाया जाता था। उन बर्तनों को धोकर चूल्हे के पीछे की ओर गर्म करने (सुखने) के लिए रख दिया। दूध गर्म करने के बर्तन के नीचे आँच की देख-भाल कर के माता अपना सब गृहकार्य समाप्त कर रही थीं। हम जा कर चबूतरे पर बैठ गये। पिताजी के साथ हम कंकडों मे खेलने लगे। प्रत्येक बार उन्होंने हमें हराया। मेरे पास के सब कंकड उन्होंने जीत लिए। इस प्रकार आनन्द में दिन कट गया।

माता ने मेरी फटी हुई धोती मे पैवंद लगा कर उसे सी दिया। रात को पिताजी ने बडी अच्छी कहानी सुनाई। विलंब से भोजन होने के कारण रात को किसी को भूक नहीं लगी। फिर भी माता ने मठे को छौंक कर एक एक प्याला सब को दिया और हम सबने उसे बडे प्रेम से पिया।

प्रातःकाल हम सब उठे। मैंने स्नान किया। माता ने भात बना रक्खा था, वह परोसा और साथ ही उड़द का पापड़ एवं मसाला भी रख दिया। भात बनाते समय उसी मे दो कचरियाँ भी माता ने डाल दी थीं। मुझे कचरियाँ अच्छी लगती हैं, यह जान कर पडोसिन जानकी मौसी ने वे माता को दे दी थीं। भोजन समाप्त कर के मैं दापोली जाने को तैयार हुआ। माता को प्रणाम किया। उसने बडे ही प्रेम से कहा "अब मकर-संक्रान्ति पर आना। यदि पाँव बहुत दुखने लगें तो बैलगाडी मे आने दो-आने दे कर बैठ जाना। सामान की गाडियाँ तो आती ही रहती हैं। सब तरह सावधान रहना और शरीर का ध्यान रखना।" इसके बाद मैंने पिताजी को प्रणाम किया। वे कहने लगे "श्याम, मैंने तुझे दो-चार कडी बातें कहीं, इस लिए चित्त मे बुरा न मानना। अच्छी तरह रहना और खूब मन लगा कर विद्याभ्यास करना।" इसके बाद मैं अपने दोनों

है। पशुओं के लिए मन्त्र मँतरवाते समय साथ में कड़वी (रटेले) का टुकड़ा भी लाया जाता था, और वह अभिमन्त्रित टुकड़ा गाय या भैंस को खिला दिया जाता तो वह दूध देने लगती थी। इसी प्रकार हमारी दादी शरीर के दर्द करने वाले भाग पर तैल-मलना भी अच्छी तरह जानती थी। किसी के पैर सडकते हो, पेट दुखता हो या पीठ में चीस उठती हो, तो लोग दौड़कर सीधे ही दादी को तैल-मलवाने के लिए बुलाने आ जाते थे; और उसके हाथ से तैल लगते ही दर्द मिट जाता था। मानो उसके हाथ में धन्वतरि का ही गुण न हो। जब मेरी आँखें खराब हुईं, तब वह मेरे पॉव के तलभाग मे प्रतिदिन ही दूध—गाय के दूध—की मालिश करती और उसे सुखा देती थी।

दादी के पास सब प्रकार के फल-फूल के बीज भी बोने के लिए संग्रहीत रहते थे। उसके पास एक बड़ी-सी बांस की नली रहती थी; जिस मे वह भिंडी, परवल, सेम, तुरई, ककड़ी, करेले, लौकी आदि के बीज रखती थी। चौसर, पासे और कौडियो के खेल मे भी वह बहुत कुशल थी। कौडियाँ खेलने के लिए वह जमीन पर चाक या खरिया मिट्टी से बड़े ही सुन्दर चित्र बनाया करती थी। उसकी खींची हुई रेखाएँ अत्यन्त सरल होती थीं। मगला गौरी के उत्सव मे भी दादी सब जगह हाजिर रहती थी। लडके-लडकियों को वह अनेक प्रकार के खेल खेलने में लगा देती ती। "दुबक्-पिछोरी" का खेल उसे बहुत प्रिय था। इस खेल मे लडके किसी ओढ़ने के कपड़े में छिप जाते हैं और तब ढूंढने वाला दूसरी तरफ से आ कर उन लडकों के नाम बतलाता है। दादी हमें इस प्रकार छिपा देती और यदि हम-में कोई भी शरीर में बडा होता; तो उसे वह छोटा होने और शरीर चुराने के लिए कहती और यदि कोई छोटा होता तो उसे शरीर फैलाने की सूचना देती। मतलब यही था कि खोजने वाला सहज ही मे न पहचान सके। यह खेल बड़े मजे का होता था। इसी प्रकार वह देवी-देवताओं एवं अन्य प्रकार के कई गीत भी गाना जानती थी। दशावतार, द्रौपदी को चिन्दी (पट्टी), उषाहरण, पारिजातक आदि कई लीलाएँ उसे मुकाग्र थीं।

घर में दादी के सिपुर्द खास काम था, शाक सब्जी को काट-छील कर तैयार कर देना। साथ ही छोटे बच्चों को खेलाने का काम भी वही करती

थी। उस दिन हमारे घर सतुआ (थालीपीठ) तैयार किया जाने को था। इसमें सब तरह का अनाज भूंज कर पीसा जाता है। इसे पीसने में चक्की मांगी ला जाती है। माता ने इसी भरोसे पर यह काम हाथ में लिया था कि चक्की चलाने में दादी भी मदद करेगी। किन्तु दादी तो मनमौजी थी। पहले दिन उसीने कहा था कि "कल को अनाज भून कर आटा तैयार करेंगे।" किन्तु दिन निकलते ही दादी के लिए खरेसा० के घर से बुलौआ आगया।उनसे मेरी दादी का दूर का मैके (नैहर) का नाता था। इसी लिए समय-समय पर उनके यहां जाया करती थी। वैसे भी वह गाँवभर की दादी थी ही। सबके साथ उसका घरोपा था और सभी उसे बुलाते रहते थे। उस दिन खरे साहब के घर पापड बनाये जाने को थे। इसी लिए दादी को वहीं भोजन करने और पापड बेलने के लिए उनका नौकर बुलाने आया था। दादी ने उसे यह कह कर लौटा दिया कि "तू जा, मैं आ जाऊंगी।"

इस पर माता को बहुत चिढ छूटी। उसने कहा "अगर तुम वहां चली गई तो इस भूजे हुए अनाज की पिसाई कैसे होगी? मैं अकेले चक्की कैसे खींचूंगी?"

यह सुन दादी ने तत्काल उत्तर दिया "तो क्या मैंने तेरे घर का सब काम करने का ठेका लिया है? धन्य है तुझे बाई! कहती है सत्तू की पिसाई कैसी होगी? पर मुझ से चक्की नहीं खींची जायगी, समझी!" वह जोरों से चिल्ला रही थी।

माता को भी रोष आ गया, वह बोली "घर का तो काम नहीं होता और दूसरों के घर काम करने के लिए तुम्हारे शरीर में शक्ति मौजूद है। तो क्या घर में हाथ टूट जाते हैं? गाव-भर में तारीफ कराना है; किन्तु यहां हाथ लगाने की भी सौगंध खाई है! यहां काम करने से मानो भ्रष्ट हो जाओगी! यहां जरा-सा हाथ लगाने में दर्द होने लगता है, और जरा-सी मेहनत होते ही मा-बहन को याद करने लग जाती हो। परन्तु दूसरों के घर खडे हो कर मूसल से पौवे खांडने एवं बडे-बडे बर्तन उठा कर पानी भरने में भी तुम्हें कष्ट नहीं होता। यह सब केवल तुम्हारा ढोंग है।"

इन शब्दों को सुनते ही दादी कड़क कर बोली " हां, करूगी दूसरों के घर का काम! तू कौन मुझसे पूछनेवाली? मै क्या तेरे घर का खाती हू! मेरे भी तो खेत है। यशोदे, आज से तू मेरे साथ सम्हल कर ही बोलना, मै तेरी बातें कभी सहन नहीं करूगी। लोगों के घर काम करने की बात कहते तुझे शर्म नहीं आती? तेरे लिए वे पराये होंगे, मेरे लिए तो सभी घर के लोगों की तरह हैं। जैसे तुम हो वैसे ही खरे के घर वाले भी हैं। कहती है मैं सब ढोंग करती हू; किन्तु तू ढोंगी बतलाती किसे है? मैंने आज तक किसी के मुँह से ऐसी बातें नहीं सुनी। तू अब बहुत इतरा चली है, क्यों?" इस प्रकार दादी झगड़ने लगी।

इस पर माता ने उत्तर दिया कि " यदि तुम्हें खरे के यहां जाना था तो मुझे से कल ही क्यों कह दिया था कि सबेरे सत्तू तैयार करेंगे? मैंने सब तैयारी कर ली, चक्की धो कर साफ कर ली। किन्तु ऐन् वक्त पर तुम्हारा पाँव तीसरी ही ओर जा रहा है! इस तरह दूसरों को लाचार करना ही तुम्हें आता है। हम चाहे तिल्-तिल् हो कर जायें, किन्तु तुम हाथ लगाने में भी पाप समझती हो।"

" मैंने कब हाथ लगाने (मदद देने) से मना किया है! सितम है तेरे बोलने की। ले, मैं खरे के यहां नहीं जाती। तेरी आँखों में खटकता है तो मैं क्यों जाऊं! कहती है दूसरों से प्रशंसा कराने की मुझे इच्छा है। ठीक है बाई, जो तेरे जी में आवे सो कह ले। मैं बुरी और तू भली, अब तो हुआ संतोष तेरे जी को। "...मित्रो! कई लोगों का यह स्वभाव होता है कि घर के बाहर वे बड़े सीधे-सादे और भोले बने रहते हैं। दूसरों के यहां सब तरह के काम करते हैं; किन्तु घर में कभी इधर का तिनका उठाकर उधर नहीं रखते। दूसरों से प्रशसा पाने, या दुनिया की वाहवाही लूटने के लिए मनुष्य ललचाता रहाता है। घर वालों को तड़पते छोड़ कर बाहर वालों से आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए चल देता है। यह सब वह प्रेम या दया-भाव के कारण नहीं करता, बरन् स्वार्थ के लिए--प्रशंसा प्राप्त करने के लिए ही करता है। इसी लिए यह भावना त्याज्य है। मेरी माता के कथन में भले ही कुछ अतिशयोक्ति हो, किन्तु उस में तथ्यांश अवश्य था।

माता और दादी में इस प्रकार की लड़ाई प्रायः सदैव ही होती

रहती थी। यह कोई नई बात नहीं थी। किन्तु उनकी लड़ाई अधिक देर टिकती नहीं थी। वह बीच में आजाने वाले तूफान की तरह होती थी। एक दूसरे के विरुद्ध मन में जो विष-संग्रह हो जाता था उसे वे इस प्रकार उगल देती थी। और इस रूप में वह गंदगी दूर होते ही फिर दोनों के मन निर्मल हो जाते थे। जो आंधी उठती वह शान्त होने के लिए ही उठती है। रोग भी शरीर में की गंदगी बाहर निकालने के लिए ही उत्पन्न होते हैं। मृत्यु भी पुनर्जीवन के लिए ही आती है।

मेरी माँ चुप हो गई। उससे बोला नहीं गया। दादी फिर भी बीच-बीच में कुछ न कुछ कहती ही जाती थी। "कहती है—दूसरो के घर काम करती हो ! मेरे हाथ हैं; मैं जहां चाहूंगी काम करूंगी ! तू कौन मुझ पर दबाव डालने और सख्ती करने वाली ? तुझे क्यों मेरी ईर्ष्या होती है ? मुझे लोग बुलाते हैं तो तू क्यों मन ही मन कुढ़ती है ?"

किन्तु माता का मुँह बन्द ही रहा। इसी लिए थोड़ी देर के बाद दादी भी चुप हो गई। चित्त स्थिर होते ही माता ने दादी के पास जाकर कहा "मैं भूली, हो काकी ! जो मुझे नहीं कहना चाहिए था, वह मैं बोल गई। भला, तुम्हें भला-बुरा कहने वाली मैं कौन ? तुम मुझ से कितनी बड़ी हो ! किन्तु आज कल इन सब झंझट, चिन्ता और दुःख-दर्दों के कारण मेरा चित्त ठिकाने नहीं रहता, और इसी कारण मैं आवेश में आकर न जाने क्या क्या कह जाती हूं। मैं अपना भान ही भूल जाती हू। मुझे इस बात का ध्यान तक नहीं रहता कि किससे क्या कह रही हूं। धिक् है मुझे ! ऐसा जीना भी किस काम का ! मुझे क्षमा करो काकी !"

"अरी, ऐसी अमंगल वाणी क्यों मुख से निकालती है कि मुझे जीकर क्या करना है ? तेरे बच्चे अभी छोटे हैं। यदि तू न रही तो उनकी सार-सम्भाल ही कौन करेगा ? तू कई दिनों तक जीती रह; यशोदा ! लड़को-बच्चों के विवाह होने बाद बहुएँ घर आने दे और उनकी सेवा का सुख भोग ! व्यर्थ ही उलटे-सीधे विचार मन में मत ला। अरी, तू जब बोलने लगती है तो मुझे भी आवेश आ जाता है; किन्तु फिर पीछे से बुरा लगता है।" इस प्रकार दादी ने हृदय हल्का कर दिया।

"तुम खरे के यहां अवश्य जाओ, काकी ! तुमने कहलवा दिया है

के '' मैं आती हूं।'' यह काम तो कल भी हो सकता है। चक्की पुती हुई हने मे कोई अड़चन नहीं पडेगी। उस पर दुसरी कोई चीज न पीसने से चल जायगा। मै तुम्हारे लिए चाय बना देती हू, जिससे वहां परिश्रम करने का तुम्हारा श्वास न फूलने लगे। आज बाहर बहुत ठंडी हवा चल रही है।'' इस प्रकरण माता ने उस प्रकार को मधुर बना दिया।

उन दिनों घर मे चाय थोडी बहुत रहती ही थी। क्योंकि कभी कोई बीमार होता या किसी को दमा शुरू हो जाता; तो माँ उसे चाय बना कर पिलाती थी। माता ने दादी का उसका बडा रानपात्र भर कर चाय पिलाई और उसका क्रोध दूर हो गया। वह खरे के घर जाते हुए बोली "जाती हूं यशोदा! नाराज मत होना, मन मे बुरा न मानना।"

इस पर माता ने कहा "तुम्हीं अपने मन मे कोई बात मत लाना। किसी भी तरह से क्यों न हो, तुम मुझ से अवस्था में बहुत बडी हो। मै तो तुम्हारे लिए बहू की तरह हू; लडकी की तरह हू। मेरी बात पर ध्यान मत देना।"

दादी चली गई और माँ घर का काम करने लगी। मित्रो! मेरी माता पूर्ण निर्दोष नहीं थी। किन्तु संसार में दोष किस में नहीं होते? भूल किस से नहीं होती? निर्दोष तो केवल परमात्मा ही हो सकता है। बाकी तो सभी को भूल और दोषों के आभूषण पहन कर ही उस जगन्माता की सेवा में पहुँचना है! भूल करना मनुष्य का भूषण है और क्षमा करना देवता का! मेरी माता के हाथों भूलें होती थीं; किन्तु वह उनका मार्जन भी कर लेती थी। भूल करने मे ही वह गौरव नहीं मानती थी।"

२३ आनंदमयी दिवाली

दिवाली नजदीक आ रही थी। स्कूलों में छुट्टियां हो चुकी थी। मै दापोली में घर से पास ही पढ़ता था, इस लिए छुट्टियां शुरू होते ही घर पहुँच गया। मेरे और छोटे भाई के लिए पिताजी ने एक एक नया कुर्ता बनवाया। किन्तु उनकी खुद के पहनने की धोती बहुत फट गई

थी। माता ने उसे कई बार सीकर कितनी ही जगह पेवन्द भी लगा दिये थे। किन्तु अब तो वह इतनी जीर्ण-शीर्ण हो कर गल गई थी कि उसे सीना कठिन हो गया था। हमारे लिए उन्होंने नये कपड़े बनवा दिये, परन्तु अपने लिए नई धोती तक नहीं खरीदी।

माँ को भी बहुत बुरा लग रहा था, परन्तु वह बेचारी क्या कर सकती थी? उसके पास कहा पैसे रक्खे थे? कई दिनों से उसे भी तो नई साड़ी नहीं मिल सकी थी। यद्यपि उसे अपनी दशा पर इतना खेद नहीं हो रहा था: किन्तु मेरे पिता की दीनता देखकर उसका जी विकल हो उठता था। प्रतिदिन ही धोती का फटा हुआ भाग सामने की तह मे छिपाकर पिताजी दिन काट रहे थे।

बम्बई-पूना की तरफ के लोग प्रायः दिवाली पर घर आया करते हैं। उन्हीं दिनों समुद्र मे स्टीमर भी चलने आरम्भ हो जाते है। समुद्र उन दिनों शान्त रहता है। बम्बई से घर आने वाले लोग साथ में बच्चो के लिए पटाखे, खिलौने और नये वस्त्रादि भी लाते हैं। मेरा बड़ा भाई पूना में मामा के यहां रह कर पढता था; वह घर नहीं आ रहा था। किन्तु पूना से कोई व्यक्ति हमारे गॉव में आया था, उसके हात मामा ने मेरी माता के लिए भैया-दूज के तीन रुपये; और हम लोगों के लिए भी मेवे-मिठाई भेजे थे।

उन तीन रुपयों को देख कर माता बहुत प्रसन्न हुई। उसने सबके कुशल समाचार पूछे। इसके बाद रुपये दे कर वह व्यक्ति चला गया। हम माता को घेर कर खड़े हो गये; और मामा का भेजा हुआ मेवा-मिठाई मांगने लगे। वहां से खुमानियां (जर्दालू) और पीपरमेण्ट की टिकिया आदि आये थे। माता ने एक-एक जर्दालू और दो-दो टिकिया हम लोगों को दीं। मेरा छोटा भाई दो जर्दालू पाने के लिए अड गया। माता ने कहा "अरे वह सब तुम्हारे लिए ही तो है। क्या आज ही सब समाप्त कर देना है? थोडा-थोडा खाया तो तुम्हारे लिए कई दिनों तक काम देगा।" इस पर वह बोला "अच्छा, मन ने बस एक टिकिया तो और दे, और इसे बदल दे। मुझे गुलाबी रंग की टिकिया चाहिए" माता ने उसकी टिकिया बदल दी और एक नई टिकिया और भी दे दी।

हम आँगन में खेलने लगे। पुराने चिथड़ों की गेंद बनाई थी, उसके साथ ही धप्पा-मार भी खेल रहे थे।

माता ने वह सब सामग्री भंडरिये में ऐसे बंदोबस्त के साथ रख दी, जिसमें कि चींटियां उसे न खा सकें। इसके कुछ देर बाद उसने मुझे बुलाया। मैं घर में गया तो उसने कहा कि "उस अमृतलाल सेठ की दूकान पर जाकर पूछ कि नये धोती जोड़े की कीमत क्या होगी? उनके लिए लेना है, यह बात सेठजी से कह देना। यदि पूछे कि वे घर पर हैं, तो कह देना-बाहर गाँव गये हैं; कल आवेंगे। मुझे पूछ आने को कह गये थे, इस लिए आया हूं।"

मैं तत्काल ही अमृत सेठ की दूकान पर पहुँचा। वहां उनके मोहन और बद्री नाम के दो लड़के थे। मोहन ने पूछा "क्यों श्याम! क्या चाहिए? तस्वीरें (चित्र) मांगने आया है, क्यो?"

मैंने कहा "नहीं, जब तू देता ही नहीं, तब मैं तुझ से क्यों मांगू। मैं अब कभी तुझ से चित्र-तस्वीरें मांगने नहीं आऊंगा। आज तो मैं धोती जोड़े का भाव पूछने आया हूं।"

उसने पूछा "किस के लिए चाहिए धोती जोड़ा? तेरे लिए?"

मैंने कहा "नहीं, पिताजी के लिए। अच्छा लम्बा-चौड़ा होना चाहिए। पोत भी अच्छा होना चाहिए, और कीमत उस जोड़े की क्या होगी? यदि दो-तीन नमूने दे सके तो मैं घर जाकर पसंद करा लाऊंगा।"

मोहन मारवाड़ी ने दो-तीन तरह के धोती जोड़े मुझे दिये। अमृत सेठ ने कहा "दिखला कर झटपट ले आना, हो श्याम।"

इस पर मैंने ठसक के साथ कहा "हां-हां, घबराते क्यों हो। हम उन्हें घर थोड़े ही रखलेंगे? और रखें भी तो उनकी कीमत देंगे।"

इस पर सेठजी ने खीज कर कहा "तेरे पास पैसों की थैली भर गई जान पड़ती है। बाप के पास तो फिसी पाई भी नहीं है।" मुझे ये शब्द सुनकर बड़ा दुःख हुआ। अमृतलाल सेठ का हम पर कर्ज था; इसी लिए उन्होंने ऐसे मर्म-वचन कहे थे। सच है, स्वाभिमान-पूर्वक जीवित रहने की इच्छा करने वाला मर भले ही जाय, परन्तु कर्ज भूल कर भी न करे।

मैं नमूने की धोतियां लेकर घर आया और माता को दिखाई।

उनमें से एक जोड़ा माता ने पसंद किया। कीमत भी मामूली ही थी। तीन-साढ़े तीन रुपये तक का था। माता ने वे रुपये दे कर कहा कि "इसे ले आना और बाकी के वापस कर देना।" तदनुसार दो जोड़ वापस कर पसंद किया हुवा जोड़ा मैं खरीद लाया। माता ने उसकी दोनों धोतियां अलग-अलग कीं, और प्रत्येक सिरे पर कुंकुम की अंगुली लगाई।

इसके बाद पिताजी बाहर से आये; किन्तु उन्हें इस बात का कुछ भी पता नहीं था। दिवाली के दिन प्रातःकाल मांगलिक-स्नान करने के बाद माता वह नई धोती पहनने के लिए पिताजी को देने वाली थी। हम सबने इस बात को जानते हुए भी प्रकट नहीं किया। इस प्रकार माता के कौतुक में हम उसके पुत्र भी शामिल हो गये थे।

कल ही दिवाली थी। हमने पँवारिया की फलियां लाकर उनमें के इन्द्रजौ निकाले। उन्हें पीस कर माता ने हमारे शरीर पर लगाने का उबटन तैयार कर दिया। पैरों तले नरकासुर को कुचलने के लिए हमने कचरियां ढूंढ़कर इकट्ठी कीं। आँगन को झाड़ बुहार कर साफ़ कर लिया यथार्थ में गंदगी दूर करने का नाम ही नरकासुर-वध है। क्योंकि नरक ही असुर (राक्षस) है। नरक का अर्थ है गंदगी। भला, इस गंदगी से बढ़कर राक्षस कौन हो सकता है? राक्षस तो सौ-पचास आदमियों को ही खा सकता है; किन्तु इस गंदगी से उत्पन्न रोगरूपी राक्षस तो लाखों प्राणियों को खाकर भी तृप्त नहीं होता। इसी लिए कहा जाता है कि गंदगी के जैसा कोई शत्रु नहीं। चौमासे में चारों ओर गंदगी बढ़ जाती है। मल-मूत्र, गोबर, कूड़ा, कर्कट आदि चारों ओर पड़े हुए सड़ते रहते हैं। इस गंदगी को दूर करने का नाम ही नरकासुर का वध करना है। इसमें भी मजे की बात यह है कि सत्यभामा ने नरकासुर का वध किया। उसने भगवान कृष्ण से कहा कि "आपसे यह नहीं मरेगा। अन्त को मैं ही इसे मारूंगी।" और यथार्थ में गंदगी दूर कर के स्वच्छता निर्माण करना स्त्रियों के ही हाथ में होता भी है। पुरुष-वर्ग घर में गंदगी करता है और स्त्रियाँ उसे साफ़ करती हैं। स्त्रियों के अन्यत्र चले जाने पर जब पुरुषों के हाथ में घर के सब सूत्र होते हैं, तब वे न तो पूरा झाड़ू ही लगाते और न चुल्हे-चौके की ही सफाई करते हैं। न गोबर से लीपते

और न वर्तन ही ठीक तरह से साफ करते हैं। इसी प्रकार लेम्प-चिमनी आदि भी कभी नहीं पोछते! चार ही दिन में वे घर को घूरे जैसा बना देते हैं। किन्तु स्त्रियाँ उस घर को आईने की तरह साफ रखती हैं। नरकासुर को सत्यभामा ही मार सकती है। गंदगी को स्त्रियाँ ही दूर कर सकती हैं। किन्तु आज-कल की स्त्रियाँ घर मे की गंदगी को रास्ते में फैंक देती हैं! पर राक्षस को रास्ते में रखना भी है तो बुरा ही। इस लिए उसे रास्ते में कभी न फैंक कर म्युनिसिपालिटी की रखी हुई कोठियों या पेटियों में ही डालना चाहिए।

हम सब घर-द्वार की सफाई में जुटे हुए थे। माता ने तुलसी की नई क्यारी बना कर तैयार की थी। इसी प्रकार नये सिकोरे (दीये) भी धो कर उसने तैयार रखे थे। रुई की वत्तियाँ भी बना ली गई थीं। सध्या-समय हमने दिए सुलगा कर जगह-जगह रख दिये। सबेरे जल्दी उठना था, इस लिए हम सब लडके बच्चे शीघ्र सो गये। किन्तु माता बहुत देर तक काम करती रही; उसने उबटन आदि तैयार कर लिया था।

बडे सबेरे उठ कर माता ने बाहर के चुल्हे में आग सुलगाई और पानी गर्म रक्खा। इसके बाद अपना स्नान समाप्त कर वह हम में से एक-एक को उठाने लगी। तैल के साथ उसने हमारे शरीर पर उबटन लगाया। इसके पहले उसने तैल की पांच बूंदें पृथ्वी पर डालीं। स्नान के लिए भी उसने हमें खूब गर्म पानी दिया। पिताजी पर हमसे पहले ही उठ कर देवपूजा के लिए पुष्प लेने चले गये थे। हमारे स्नान निपट जाने के बाद पिताजी स्नान करने लिए गये।

हमने घर के देवता को प्रणाम किया और मंदिर में भी हो आये। माता ने पिताजी के स्नान के लिए गर्म पानी दिया; और उन्होंने भी अभ्यंग स्नान कर लिया। पुराना रेशमी पीताम्बर पहन कर उन्होंने देव-पूजन किया। देव-प्रतिमाओं को भी उन्होंने सुगन्धित तैल लगा कर गर्म जल से ही स्नान कराया। वैसे प्रतिदिन उन बेचारों को ठडे पानी के ही अभिषेक-द्वारा कुड़कुड़ाया जाता था; किन्तु आज उन्हें भी गर्म पानी मिला। यथाविधि पूजन हो जाने पर देवता के सम्मुख गुँजिएँ और अनारसे का नैवेद्य रखा गया। प्रातःकाल से ही देवी के उपासक भिक्षा के लिए

अम्बा माता के गीत गाते हुए घूम रहे थे। वे लोग पाई, पैसा, पौंत्र (पोहे) और गुँजिए मांगते फिरते थे। हमने भी उन्हें ये सब वस्तुएँ भिक्षा में दीं। इसके बाद पिताजी ने हमें पुकार कर देवता का प्रसाद दिया। प्रतिदिन के नियमानुसार वे सूर्य-नमस्कार कर के मंदिर में पूजा के लिए गये और थोड़ी देर में लौट आये।

आते ही उन्होंने पूछा " मेरी धोती कहां है। आज वह कहीं दिखाई नहीं देती! कहा गई ? "

माता ने कहा " मैंने उसके दो अगौछे बना लिये हैं। वह कितनी फट गई थी! "

" तब मैं क्या पहनूंगा ? वह तो अभी और महिना-भर काम दे सकती थी! "

" लेकिन उसका भी कहां तक अन्त देखा जाता ? उस धोती को धोते हुए मुझे प्रतिदिन शर्म आती थी और बुरा लगता था। "

" मुझे भी तो उसे पहनते हुए लज्जा लगती थी, परन्तु किया क्या जाय? हमें शर्म लगने से कहीं आसमान पैसे थोड़े ही बर्सा देता है।"

" यह धोती पहनिये आज!" यों कह कर माता ने नई धोती आगे बढ़ाई!

"यह कहां से आई? कौन लाया?" पिताजी ने आश्चर्य से पूछा।

" अमृतलाल सेठ के यहां से मँगवाई! "

"परन्तु वह तो मुझे मांगने पर भी उधार नहीं देता था। कई बार मांगने पर भी जब उसने इन्कार कर दिया तब मैं निराश हो गया। उसके पास जाने पर पहला प्रश्न ही उसका यह रहता है कि " पिछली बाकी कैसे वसूल होगी; इसी की मुझे चिन्ता लग रही है। तुम्हें उधार दे कर मैंने धोका उठाया। जान पड़ता है तू खुद जा कर ले आई है। "

" नहीं; मैंने उसे खरीद कर मँगवाया और श्याम खुद जा कर लाया "

" परन्तु श्याम के पास पैसे कहां से आये ? " उन्होंने पूछा।

" मैंने दिये! "

" तेरे पास कहां से आये ? "

" पूना से भैया-दूज की भेट के भैया ने उस कृष्णराव के हाथ भेजे थे।"

" कृष्णराव काले ! कब आया पूना से ? " उन्होंने पूछा।

" अभी दो दिन हुए, वह आया है।"

" परंतु मेरे लिए धोती मँगवाने की अपेक्षा तुझे अपने लिए साड़ी मँगवा लेनी चाहिए थी । वह भी तो बहुत फट गई है। तेरे भाई की भेजी हुई भेट पर तेरा ही अधिकार हो सकता है। उसे लेने का मुझे क्या हक है ! "

" परंतु आप में और मुझ में क्या कोई भिन्नता है ? इतने वर्ष साथ रह कर गृह-संसार चलाया, सुख-दुख भोगे, अच्छे-बुरे अनुभव किये। इतने पर भी क्या हम परस्पर अलग ही रहेंगे ? मेरा जो कुछ है वह सब आप ही का तो है; और आप का जो कुछ है सो मेरा ही है। अभी मेरी साड़ी पहनने जैसी है। उसीमें मुझे आनन्द है, प्रसन्नता है। मैंने इसे कुंकुम की बिंदी लगा दी है। "

" किन्तु मैं नई धोती पहनूं तो मेरे साथ तुझे भी तो नई साड़ी पहनानी चाहिए; क्या यह विचार मुझे नहीं आता होगा ? इस भेद-भाव से मुझे बुरा नहीं लगता होगा ? तुझे आनन्द हो रहा है, परन्तु मुझे दुःख होता है। तूने तो अपने चित्त की प्रसन्नता का साधन कर लिया, परन्तु मेरे लिये......! " उनसे अधिक बोला न जा सका।

" मेरी प्रसन्नता भी तो आप ही की है। आपको बाहर के चार आदमियों में आना-जाना पड़ता है। गंगाधरजी के यहां आज चौसर खेलने बुलावेंगे; वहां आपको जाना चाहिए। मुझे कहां किसी के घर जाना है ? आगे जब सुविधा हो तो पहले मेरे लिए ही साड़ी ला दीजियेगा। इस प्रकार व्यर्थ ही चित्त को दुःखित मत कीजिये। आज दिवाली है। आज तो सब हँसना चाहिए, आनन्द में रहना चाहिए। कम से कम हमें प्रसन्न करने के लिए ही आप हँसें और आनन्दित हों।"

" अरे, तुझ जैसी जीवन-संगिनी और ऐसे गुणवान एवं सुशील मृदुभाषी पुत्रों को पाकर भी क्या मैं प्रसन्न न होऊंगा ? मैं आज दरिद्री नहीं, बरन् धनाढ्यों से भी अधिक धनवान हूं। तब फिर मैं क्यों न हर्षित

होऊंगा, क्यों न सुख का अनुभव करूंगा? ला वह धोती।" यों कहकर उन्होंने माता के हाथ में से धोती ली और उसे पहनकर देवता को प्रणाम किया।

पिताजी को नई धोती पहने देख कर हमें भी बड़ा आनन्द हुआ। किन्तु सच्ची प्रसन्नता यदि किसी को हुई हो तो केवल माता को ही। वह आनन्द स्वयं अनुभव की बात हो सकती है। प्रेम-पूर्वक किये गये त्याग का आनन्द—उसका स्वाद त्याग करते रहने से ही अनुभव में आ सकता है। एक बार उसका चस्का भर लग जाना चाहिए।

२४ अर्धनारी नटेश्वर

मई महिने की छुट्टी में मैं घर आया था। उस समय मैं चौथी कक्षा में था। घर जाने पर माता को मुझ से काम-काज में बड़ी सहायता मिलती थी; क्योंकि वह बेचारी हमेशा बीमार ही बनी रहती थी। एक दिन बुखार आता और दूसरे दिन उसके उतरते ही वह फिर काम में लग जाती। बुखार आते ही पड़ जाती और उसके उतरते ही फिर वह उठ खड़ी होती। किन्तु उस समय वह बहुत निर्बल हो गई थी। इसी लिए मेरे आने से उसे सन्तोष हो जाता था। मैं उसे पानी भरने, कपड़े धोने, झाड-बुहार करने आदि प्रत्येक काम में मदद करता था। कभी-कभी रात को चक्की-पीसने में भी मैं सहायता-करता था। उसके हाथ-पैर दबाना तो मेरे छुट्टी के दिन का निश्चिन काम था ही।

एक रात को जब कि बाहर अच्छी चांदनी खिली हुई थी हम सब भोजनादि से निवृत्त हो चुके थे; और पिताजी कहीं बाहर चले गये थे, तथा छोटे भाई सो रहे थे; एव माता भी चौका-बर्तन कर चुकी थी; अचानक उसने मुझे बुलाकर पूछा "श्याम! थोडा-सा पीसना है रे! तेरे हाथ तो नहीं दूखते! संध्या-समय ही तूने जमीन खोद कर खट्टी भाजी के लिए क्यारी तैयार की है; इस लिए यदि हाथ दूखते हो तो रहने दे!"

मैंने कहा "नहीं, मेरे हाथ बिल्कुल नहीं दूखते। साथ ही चक्की के हत्थे पर तू भी तो हाथ रखे ही थी। तेरे प्रेममय हाथ के स्पर्श-मात्र से मेरे शरीर में शक्ति आ जाती है। चल! क्या मैं आँगन में ओले पर चक्की उठा कर रख दूं ?"

माता ने कहा "हां, बेटा! रख दे!"

मैंने चक्की उठा कर आँगन में रख दी। माता पीसने का अनाज ले आई। दूसरे दिन खट्टे चीलहे बनाने थे। मुझे वे बहुत अच्छे लगते हैं। माँ-बेटे आंगन में बैठे चक्की चला रहे थे और ऊपर आकाश से चन्द्रमा अमृत की वर्षा कर रहा था। शीतल-मंद समीर बह रहा था। माता गीत गाती हुई उसमें "श्याम बालक" के रूप में मेरा नाम भी जोड़ती जाती थी। मुझे वे गीत सुन कर बड़ी प्रसन्नता हो रही थी।

चक्की-पीसने का मुझे बचपन से ही अभ्यास है। क्योंकि इसके द्वारा माता की सेवा की जा सकती है। माता के साथ पीसते हुए मैंने चक्की में अनाज डालना सीख लिया था।

इधर हम माँ-बेटे चक्की चला ही रहे थे कि इतने में रात को चक्की की आवाज सुन कर पड़ौसिन जानकी मौसी वहां आ गईं!

"अरे, यह क्या! श्याम चक्की चला रहा है? मैंने सोचा कि देखूं तो सही आज रात को अकेले ही तुम कैसे पीसने को बैठ गई? अरे, यह क्या करता है श्याम! तू तो अंगरेजी पढ़ता है न?" जानकी मौसी ने पूछा।

मैंने माँ से पूछा "क्यों माँ! पीसने में हाथ लगा देने से क्या बुराई हो गई?"

माँ ने कहा "अरे, ये तो वैसे ही हँसी कर रही हैं। तुझ पर इनका प्रेम है: इसी लिए तो ये तुझे देखने चली आई। भला, काम करने वाले को कभी कोई बुरा कह भी सकता है? और तुझे, अपनी माँ को ही, मदद करने में किस बात की शर्म। माता की मदद करने वाले की जो हँसी उड़ावे, उसे जंगली (असभ्य) समझना चाहिए! तूने "भक्ति-विजय" ग्रंथ में नहीं पढ़ा था कि जनाबाई के साथ प्रत्यक्ष भगवान पाण्डुरंग ने आकर चक्की पीसी थी?"

"हां, सच है माँ! परन्तु क्या यह बात सत्य होगी? ईश्वर कबीरदास का कपड़ा बुनते; जनाबाई के साथ चक्की पीसते, कपड़े धोते नामदेव के पीछे खड़े हो कर कीर्तन में ताल बजाते, और नाचते थे. क्या ये सब बातें सत्य हैं माँ?" मैंने पूछा।

"बैठो न जानकीबाई! यों खड़ी क्या रह गई!" इस प्रकार जानकी मौसी को बैठाते हुए माँ ने मुझसे कहा "श्याम! यह सब बातें सत्य ही होनी चाहिए! जिनकी ईश्वर पर श्रद्धा होती है, और मन में उसका निरन्तर स्मरण करते हुए जो सब काम करते हैं उनकी सहायता वह अवश्य करता है। तू जो मेरी सहायता करता है, यह भी उस ईश्वर की प्रेरणा से ही कर रहा है। मई का महिना आते ही वह परमात्मा तेरे रूप में मेरी मदद करने के लिए आ जाता है। वह अनेक रूप में भक्तों की सहायता करने के लिए उद्यत रहता है। कभी श्याम के रूप में तो कभी जानकीबाई के रूप में।

"तो क्या वह परमात्मा मुझे मिल सकेगा?" मैंने एकदम पूछा।

"पुण्यवान को मिलता है। खूब पुण्यकार्य करने और सबके उपयोग (काम) में आने से अवश्य परमात्मा मिल सकते है।" इस प्रकार माता ने उत्तर दिया और तब जानकी मौसी ने मुझसे कहा.

"क्या तेरा विचार साधु-बावाजी बनने का है? तो फिर अंगरेजी क्यो पढ़ा रहा है? अरे अगरेजी पढ़ कर अच्छी-सी नौकरी करना और तब वहा माँ को अपने साथ ले जा कर रखना, समझा!"

मैंने कहा "हां, मुझे साधु होने, भक्त बनने की बड़ी अभिलाषा है। माँ! बालयोगी ध्रुव भी तो केवल 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' का जप करते-करते परमात्मा को पा गया था! क्या मैं भी यदि इसी मंत्र का जप करने लगूं तो परमात्मा मुझे मिल सकेगा?"

माँ ने कहा "बेटा! ध्रुव की पूर्व—पुण्याई—तपस्या कितनी महान् थी! उसका संकल्प कितना दृढ़ था! पिता के राज्य देने पर भी वह वापस नहीं लौटा! इतना दृढ वैराग्य कहां से लाया जाय! इसी लिए इस जन्म मे अच्छे बनने का प्रयत्न कर; तो आगे चलकर किसी जन्म में तुझे भी परमात्मा का दर्शन हो सकता है!"

जानकी मौसी ने कहा "श्याम छोड़ दे तू, मैं चक्की पीसने में हाथ लगाती हू। तू थक गया होगा।"

इस पर मैंने कहा "माँ मेरे बदले तू ही छोड़ दे तो जानकी मौसी के साथ अभी सब पीस डालता हू। मौसी! मुझे अब चक्की में दाने डालना भी आ गया है। आँखें बन्द कर के भी मैं डाल सकता हू। इसमें मैं होशियार हो गया हूं। माँ, छोड़ दे नँ थोड़ी देर के लिए तेरा हाथ!"

माता ने हाथ छोड़ दिया और मैं मौसी के साथ चक्की पीसने लगा। उसमें दाने भी मैं ही डाल रहा था। पीसते-पीसते मैंने पूछा "क्यों मौसी! कैसा आ रहा है आटा! आँखों में आँजने पर भी नहीं चुभ सकता! देखो न, कितना बारीक है?"

यह सुन मौसी ने मेरी माता से कहा "बहन्! श्याम को तो तुमने बिल्कुल लड़की ही बना दिया है!"

माता ने कहा "मेरे घर में मदद देने वाला दूसरा है भी कौन? अभी बहू थोड़े ही आ गई है घर में! श्याम यदि मदद न करेगा तो फिर दूसरा कौन आवेगा? जानकीबाई! कभी-कभी स्त्रियों को पुरुषों के काम भी तो करने पड़ते हैं। यदि पुरुष स्त्रियों के काम करने लगें तो इसमें कोई बुराई थोड़े ही है। श्याम, दाल-चावल बीनने में मेरी मदद करता है, कपड़े धोने, बर्तन धो कर पोंछने आदि सभी कामों में मेरा हाथ बँटाता है। उस दिन तो इसने मेरी साड़ी भी धोई थी! मैंने कहा 'श्याम! तुझे लोग हँसेंगे' तो इसने उत्तर दिया माँ, तेरी साड़ी धोने में ही मुझे यथार्थ आनन्द प्राप्त हो सकता है। जब मैं उस साड़ी की चौतही को ओढ़ता हूं; तो उसे धोने में मुझे क्यों शर्म आनी चाहिए!' जानकीबाई, इसे किसी भी बात में बुरा नहीं लगता। इसे मैंने लड़की जैसा बना दिया तो भी यह प्रसन्न है!"

मित्रो! माता के वे स्फूर्तिमय शब्द मुझे आज भी स्मरण होते हैं। पुरुषों के हृदय में कोमलता, प्रेम सेवावृत्ति, कष्ट-सहन करने की तत्परता' सहनशीलता और चुपचाप काम करते रहने की शक्ति आदि भाव उत्पन्न हुए बिना उनका पूर्ण-विकास हो सकने की बात नहीं मानी जा सकती। इसी प्रकार स्त्रियों के हृदय में धैर्य, अवसर आने पर कठोर होने एवं घर

में पुरुष-वर्ग के न होने पर दृढता-पूर्वक घर का प्रबंध करने आदि के गुण उनन्न होने पर ही उनका पूर्ण-विकास हो सकता है। इसी को मैं विवाह कहता हू। विवाह कर के यही साधना की जाती है। विवाह कर के पुरुष कोमलता सीखता है, हृदय के गुण सीखता है, और स्त्री बुद्धि के गुण सीखती है। विवाह का अर्थ है, हृदय में बुद्धि और भावना और विचारों का मधुर मिश्रण, मधुर सहयोग। पुरुषों के हृदय में स्त्रियों के और स्त्रियों में पुरुषों के गुणों का अविर्भाव होने का नाम ही विवाह है। अर्ध नारी-नटेश्वर ही मानव जाति का आदर्श है। अकेला पुरुष जिस प्रकार अपूर्ण है, उसी प्रकार अकेली स्त्री भी ही है। किन्तु दोनों एक साथ मिलकर पूर्ण व्यक्ति का निर्माण करते हैं। दो अपूर्णों के विवाह से दो पूर्ण जीव तैयार होते हैं। माता इस प्रकार उपदेश दे कर मानों मेरे लिए अलग से विवाह की आवश्यकता ही नहीं रख रही थी। प्रेम, दया, कष्ट, सेवा आदि स्त्रीत्व के गुणों से ही वह मेरा विवाह वर देना चाहती थी!

---

२५ सोमवती अमावस

जो अमावास्या सोमवार को आती है, उसे सोमवती कहती हैं उस दिन सोमवती के व्रतवाली सौभाग्यवती ब्राह्मणियां पीपल की पूजा करती हैं। इसी प्रकार उस दिन कोई भी वस्तु १०८ की संख्या में देवता को अर्पण की जाती हैं। फिर भले ही वे १०८ पान हों या १०८ आम अथवा १०८ रुपये, १०९ पैसे, १०८, केले, १०८ वस्त्र, १०८ नारियल, १०८ पेड़े या १०८ साड़ियां, कुछ भी क्यों न हो! जितकी जैसी शक्ति हो तदनुसार वह वस्तु दान करता है। जिनका जो उपाध्याय (कुलगुरु) होता है, उसे वे सब वस्तुएँ मिलती हैं। किन्तु वह खुद ही उन सब चीजों को अपने घर में नहीं रख लेता, बरन् पीपल के चबूतरे पर अन्य जो उपाध्याय बैठते हैं, उन सब को बराबर बाँट देता है। यह बहुत ही अच्छी प्रथा है। इस का निर्माण त्याग की भित्ती पर किया गया है;

और इसी कारण उपाध्यायों में परस्पर द्वेष या ईर्ष्या करने का अवसर ही नहीं आ सकता।

मेरी माता जब संयुक्त-परिवार में थी, भरेपूरे घर में धन-जन-सम्पन्न अवस्था में थी, तभी उसने सोमवती का व्रत ले लिया था। और उसने अपनी अच्छी दशा में १०८ चवन्नियां, १०८ पानबीडे, पेडे आदि के द्वारा सोमवती व्रत सम्पन्न किये थे। किन्तु आज तो हम गरिबी में थे। उसे खुद ही जब पहनने के लिए फटी साडी काम में लानी पडती थी, तब वह १०८ साडी अथवा धोतियाँ कहा से लाकर देती? उसे ही जब खाने को यथेष्ट नहीं मिलता था, तब वह दूसरों को क्या दे सकती थी? साथ ही सोमवती का व्रत सहसा छोडा भी नहीं जा सकता! इधर घर में भी पति से वह किस मुँह से कोई वस्तु मांग सकती थी? बेचारे पति (मेरे पिता) के पास था ही क्या?

किन्तु उन दिनों बडे दिन की छुट्टियों में मैं घर पर ही था। उसी अवसर में सोमवती आ गई। मैंने माता से पूछा कि "इस बार सोमवती पर तू किस वस्तु से परिक्रमा देगी? तूने क्या निश्चय किया है। जानकी मौसी तो १०८ सुपारियों से परिक्रमा करेंगी!"

माता ने कहा "बेटा, मैं सुपारियों से परिक्रमा एक बार कर चुकी हूं। उस समय सीता बुआ ने कच्ची सुपारियाँ भेज दी थी।"

"तो फिर तू किस वस्तु से प्रदक्षिणा करेगी? केवल दो ही दिन तो रह गये हैं; अब तो अवश्य कुछ न कुछ निश्चय कर लेना चाहिए! क्यों माँ! क्या १०८ गुड का मतलब गुड की १०८ बट्टियाँ और १०८ तैल का मतलब १०८ डिब्बे तैल देने का होजाता है?"

यह सुन माता ने कहा कि "यदि कोई १०८ गुड की बट्टियाँ, १०८ डिब्बे तैल के दे सकता हो तब तो कहना ही क्या है; किन्तु यदि वह व्यक्ति गरीब हुआ, तो यह निश्चय करेगा कि मैं १०८ छटाक या १०८ आधपाव या पाव के परिमाण से ये वस्तुएँ प्रदक्षिणा में चढाऊंगा। कोई सवामन गुड या तैल भी चढाता है। सारांश, कोई कितना ही सामान ले, उसके १०८ भाग करने पडते हैं।"

मैं पूछा "तो माँ, तू १०८ छटाक गुड से प्रदक्षिणा क्यों नहीं देती!"

"किन्तु बेटा श्याम, घर में तो विष खाने को भी एक कौडी नहीं; अरे! गले में फाँसी लगाने को रस्सी का टुकड़ा तक नहीं; तब भला गुड के लिए पैसे कहां से आ सकते हैं? अपने घर में पैसों को क्या कोई वृक्ष लगा हुआ है; जिसे हिलाते ही पैसों का ढेर लग जायगा! हम गरीब लोग हैं श्याम!"

इस पर फिर मैंने पूछा "यदि १०८ आँवले मिल जाँय तो?"

माता ने कहा "आँवले से प्रदक्षिणा भी मैं कर चुकी हूं। वे सोवली (गाँव) से ले आये थे! वहां से तुकाराम ने दे दिये थे।"

यह सुन मैं बोला "यदि १०८ चींये (इमली के बीज) से परिक्रमा की जाय तो ठीक न होगा।"

माता ने कहा "ठीक क्यों न होगा, परंतु लोग हँसी करेंगे।"

"किन्तु लोगो के हँसने हमारा क्या बिगड़ता है! जो हँसेगा उसीके तो दांत दिखाई देगे? लोगो का क्या जाता है; और कोई हमें कुछ देने को थोडे ही बैठा है? हँसने को सभी तैयार हैं, किन्तु मदद करने को एक भी तैयार नहीं होगा! अस्तु। परमात्मा तो नहीं हँसेगा, वह तो अप्रसन्न नहीं होगा?"

माता ने कहा "श्याम! परमात्मा भला क्यों कर अप्रसन्न हो सकता है? उसने तो श्रद्धा-भक्ति से भेट किये हुए केले के छिलके और चावल की चूरी तक बड़े स्वाद से ग्रहण की है। यही नहीं बरन् हाथ बढ़ा-बढ़ाकर और मुँह से तारीफ कर कर के उसने इन वस्तुओं को खाया; और थाली चाटने पर भी उन्हें तृप्ति न हुई। उन्हीं भगवान् ने सुदामा के तंदुल का इस प्रकार प्रेम से भोग लगाया; मानों कई दिन के भूखे और उपवास किये हुए हों! रुक्मिणी को मांगने पर भी एक मुट्ठी चावल तक नहीं दिये। और यह सच ही है कि परमात्मा तो हमेशा भूखा ही रहता है। उसे प्रेम और भक्ति-भाव से कौन भेट चढाता है? लाखों में एक-आध ही प्रेम-पूर्वक उसे यदि कुछ भेट करता है तो वही उसके पेट मे पहुँच पाता है! भूखे भगवान को द्रौपदी के यहां की भाजी की पत्ती खा कर ही तृप्ति की डकार आ गई थी। अरे, यदि प्रेम-पूर्वक पानी भी पिलाया जाय तो वह दूध के समुद्र से बढ़ कर हो जाता है।

शबरी के जूँठे बेर राम ने किस प्रकार प्रेम से खाये, यह कथा भी तू रामायण में पढ़ चुका है! परमात्मा को सब वस्तुएँ स्वीकार हो सकती हैं। आवश्यकता है केवल भक्ति-भाव के घी-शकर को उसमें मिलाने की। उसमें हृदय की आर्द्रता होने से काम चल सकता है। फिर भले ही वे १०८ चींये (इमली के बीज) तो क्या पत्थर भी यदि भेंट किये जायँ; तो वे भी उसे मिश्री की डली के समान मीठे लगेंगे। प्रेम से भेंट किये हुए कंकड़ को भी वह चूसने लग जायगा! यहां तक कि एक जन्म ही नहीं, सौ जन्म तक उनका स्वाद लेता हुआ वह यही कहेगा कि 'भक्त ने मुझे अपूर्व मेवा भेंट किया है; जो न तो जल्दी से फूटता है और न शीघ्र पिघल पाता है। एक-एक कंकड वह वर्षों तक मुँह मे रखे रहेगा!' बेटा, श्याम! परमात्मा, को जो कुछ भी वस्तु भेंट की जाय, वह अन्तःकरण-पूर्वक करनी चाहिए। भला मुझ में द्रौपदी या शबरी की तरह भक्ति कहां है! मैं कैसे उस भक्ति-भाव से चींये (इमली के बीज) तर कर के उसे भेंट कर सकती हूं? बेटा, हमारी योग्यता उस दर्जे की नहीं है!"

"तो फिर तू किस वस्तु से प्रदक्षिणा देगी? कुछ तो निश्चय किया ही होगा?" इस प्रकार मैंने फिर पूछा।

इस पर माता ने कहा "इस बार मैं १०८ फूल चढ़ाना चाहती हूं। फूल जैसी निर्मल, शुद्ध और सुन्दर वस्तु और क्या हो सकती है? इसी लिए मैंने १०८ पुष्प से प्रदक्षिणा देने का निश्चय किया है!"

यह सुन मैं बोला "माता, इस पर तो सारे ही भट्ट (ब्राह्मण) लोग हँसेंगे और चबूतरे पर आई हुई स्त्रियाँ भी तेरी फजीहत करेंगी। उपाध्यायजी भी वे फूल नहीं लेंगे।"

माता ने कहा "श्याम! जो कुछ अर्पण किया जाता है वह देवता-परमेश्वर के लिए होता है, किसी भट्टजी या उपाध्याय के लिए नहीं! परमात्मा के चरणों में सब कुछ अर्पण किया जा सकता है। उसके चरणों में अर्पण किये हुए फूल यदि किसी भट्टजी को लेना होंगे; और उन्हें वह ईश्वर का महान् प्रसाद समझता होगा-तो ले जायगा, नहीं तो वे ईश्वर के चरणों में तो अर्पित रहेंगे ही। जब हम और कोई वस्तु नहा दे सकते तो क्या करें! जो दिया जा सकता है, वही तो देंगे!"

"तो फिर किस वृक्ष के १०८ पुष्प अर्पण करने का सोचा है? यहां अच्छे फूल भी तो नहीं मिलते हैं? नहीं, तो मैं समझता हूं, १०८ पत्ते अर्पण करना ही अच्छा है! तुलसी या बेल-पत्र अथवा दूर्वाङ्कुर के १०८ पत्ते भी तो भेट किये जा सकते हैं। माँ, देवताओं को फूल की अपेक्षा पत्तियां ही अधिक पसंद क्यों हैं? कितनी ही प्रकार के पुष्प चढ़ा देने पर भी उनके लिए तुलसी, बेल-पत्र या दूब की आवश्यकता तो रहती ही है। भगवान विष्णु के लिए तुलसी-पत्र और शंकर-महादेव के लिय बेल-पत्र एवं गणपति के लिए दूर्वाङ्कुर ही विशेष प्रिय वस्तुएँ हैं। किन्तु उन्हें ये अधिक प्रिय क्यों हैं?

इस पर माँ ने कहा " ये वस्तुएँ लाने में विशेष कष्ट नहीं उठाना पड़ता। ये जहां भी चाहें मिल सकती हैं। थोड़े-से जल के सींचने से ही इनका काम चल सकता है। फूल तो निश्चित ऋतु में ही मिल सकते हैं; किन्तु पत्ते तो हमेशा ही मौजूद हैं। जबतक वृक्ष जीवित हैं, तब तक पत्तियां मिलना कठिन नहीं है। पत्तियों का अभाव अधिकतर नहीं होता; इसी लिए ऋषि-मुनि एव सन्त-महात्माओं ने बतला दिया कि परमात्मा को ये पत्तिया ही अधिक प्रिय हैं। जिससे कि भक्ति-भाव-पूर्वक ये चीजें देवता को अर्पण करने में भक्त को विशेष कष्ट न उठाना पड़े। मुझ जैसी गरीब स्त्री को तो ये सादी पत्तियां अर्पण करने में कोई लज्जा अनुभव नहीं करनी चाहिए। दूसरों की ओर से देवता को अर्पण किये हुए रुपये, खन (जरी का वस्त्र) या नारियल आदि देख कर किसी के मनमें मत्सर (द्वेष) भाव उत्पन्न न हो, इस लिए सन्त-पुरुषों ने निश्चय कर दिया कि देवता को पत्ते भी प्रिय हैं। धनाढ्य के लिए अपनी सम्पत्ति का गर्व करने की आवश्यकता नहीं; और न गरीब के लिए अपनी गरिबी पर लज्जित होने की ही आवश्यकता है! यही इस पत्र-पूजा का आशय है। धनाढ्य व्यक्ति चाहे कितनी ही बढ़ी दाक्षिणा दे, तो भी उसे ऊपर से तुलसी-पत्र तो रखना ही पड़ता है। इसमे भी उद्देश्य यही है कि धनाढ्य को अपनी ओर से दी हुई वस्तु के बहूत अधिक या मूल्यवान होने का अभिमान न हो। बल्कि वह यही समझे कि मैंने केवल एक तुलसी-पत्र ही दान किया है। गणपति, हरतालिका और मंगलागौरी की पूजा में तो इन पत्तियो की सब से पहले आवश्यकता होती है।

ये साड़ी और सुन्दर पत्तियां उन्हें विशेष प्रिय हैं। मैं आगे किसी समय १०८ तुलसी-पत्र द्वारा प्रदक्षिणा करने ही वाली हूं।"

इस पर मैंने अधीर हो कर पूछा "तो फिर इस बार तू काहे के फूल चढ़ाना चाहती है? झटपट बतला दे नँ!"

माता ने उत्तर दिया "परसों मैंने उनसे कहा था कि इस बार सोमवती पर अच्छे सुगन्धित पुष्प-द्वारा प्रदक्षिणा करने का सोचा है! गेंदा, कनेर या सफेद चंपे के फूल तो यहां मिलते ही हैं? किन्तु यदि अच्छे सुगन्धित पुष्प कहीं मिल सकें तो प्रयत्न कीजिये।"

"तो क्या पिताजी इसी लिए बाहर गाँव गये हैं?"

"हां, वे इसी लिए जालगाँव गये हैं। वहां सेठजी का एक बहुत बड़ा बगीचा है। उसमें हरे चंपे के फूल हैं। यदि उसके १०८ फूल मिल सके तो बड़ा अच्छा होगा, इसी लिए वे इतनी दूर गये हैं। वे बोले 'अपने पास खर्च करने को पैसे नहीं तो क्या हुआ, चलने को भगवान ने पाँव तो दिये हैं' इस प्रकार उत्तर दे कर वे जालगाँव गये हैं!"

मित्रो! चंपे अनेक प्रकार के होते हैं। सफेद, हरा, स्वर्ण-चंपा और नाग-चंपा आदि। इनमें सफेद चंपे को छोड़ शेष सभी विशेष-रूप से सुगन्धित होते हैं। स्वर्ण-चंपे की सुगन्ध बहुत तीव्र होती है। किन्तु नाग-चंपे की बास मधुर होती है। चारों ओर चार शुभ्र स्वच्छ चौड़ी पँखडियां और बीच मे पीला पराग-पुंज होता है। यह फूल बहुत ही सुंदर दिखाई देता है।

इस प्रकार गरीबी में रह कर भी अपना ध्येयवाद बतलाने और तदनुसार आचरण करने वाली मेरी माता थी। जो वस्तु पति न दे सके, वही उससे मांगकर उसे रुलाने या खिन्न करने वाली वह नही थी। वह पति को लजाने या उसका सिर नीचा करने वाली पत्नी नहीं थी। उससे सादे फूल मात्र ही मांगने वाली, किन्तु यदि प्रयत्न-पूर्वक वे कुछ दूर जाने से मिल सकें तो उन्हीं को लाने के लिए निवेदन करने वाली, पति को भी ध्येय-वाद सिखाने वाली, ईश्वर के लिए परिश्रम करने वाली वह साध्वी थी।"

२६ प्रभु की समदर्शिता

सायंकाल के चार-पांच बजने का समय था। छुट्टी होने से मैं भी घर आया था। माता उस समय देव-दर्शन के लिए मंदिर में गई थी। किन्तु मैं घर ही पर था। माता के मंदिर से लौटते ही मैंने पूछा "क्या मैं भी थोड़ी देर के लिए बाहर हो आऊं? कमला-कर या शिवराम के घर जाऊंगा, यदि बापू यहां आवें तो उसे उन्हीं के घर भेज देना!"

माता ने कहा "तू भले ही अपने मित्रों से मिलने के लिए जा; किन्तु जाने से पहले मेरा एक काम अवश्य करदे। बालकराम दादा के दरवाजे के पास एक महारिन बैठी हुई है। बिल्कुल बूढ़ी है बेचारी! उसके सिर पर का लकड़ी का गट्ठा नीचे जमीन पर पड़ा हुआ है। वह उसके सिर पर रख देना है। वह बेचारी बिल्कुल अशक्त और बीमार दिखाई देती है। इस लिए उसके सिर पर वह गठा उठाकर रख दे; और यहां आकर स्नान कर ले। मैं तेरे लिए पानी लाकर रखती हूं।"

"किन्तु माँ, यदि लोग मुझे ऐसा करते देखेंगे तो हँसेंगे; इतना ही नहीं, मारने को भी दौड़ेंगे! चिल्ला कर कान फोड़ देंगे। तो भी क्या मैं वहां जाऊं? क्या सचमुच वहां जाकर उसके सिर पर गट्ठा रखवा दूं?" मैंने पूछा।

"लोगों से कह देना कि 'मैं घर जाकर स्नान कर लूंगा। वह बेचारी कब तक यहां बैठ कर किसी महार के आने की राह देखती रहेगी? लकड़ी का गठा बेचकर उसे दूर महार-वाड़े तक वापस जाना होगा!' इत्यादि बातें कह कर घर आ जाना।"

मैं तो केवल माता की आज्ञा पालन करना जानता था। इस लिए उसी क्षण चल दिया। चलते हुए भी मैं उस बूढ़ी महारिन को यह दिखलाना चाहता था, कि मैं अपने रास्ते से ही जा रहा हूं; खास उसीके लिए गट्ठा उठवाने को नहीं आया हूं। इसी लिए मैंने उसके पास जाकर पूछा "क्योंरी बुढ़िया, क्या यह गट्ठा तेरे सिर पर उठा देना है! ले मैं उठाता हूं।" यों कह कर मैं उस गट्ठे को एक तरफ से उठाने लगा।

किन्तु वह बेचारी मुझे ऐसा करते देख भयभीत हो कर निवेदन करने लगी "नहीं भैया; तुम बामन लोग! कोई अगर देख लेगा तो मुझे मारेगा! नहीं दादा; जा बाबा! अभी कोई न कोई महार-बाड़े की तरफ से आता ही होगा, वह उठा कर सिर पर रख देगा। तू अपने रास्ते से घर जा भैया!"

"अरी, मैं घर जाकर स्नान कर लूंगा। ले उठ और सम्हाल गट्ठे को।" यों कह कर मैंने वह गट्ठा उसके सिर पर चढ़ा दिया।

मुझे इस प्रकार उसकी मदद करते देख कहीं से श्रीधर भट्टजी टपक् पड़े, और चिल्लाकर कहने लगे "अरे श्याम! वह महारिन थी नँ? उसे तूने छी लिया? क्या इतने ही में अंग्रेजी पढ़कर साहब बन गया! भाऊराव से कहना पड़ेगा।" उनके इन शब्दों को सुन पास ही के घर में से एक महाशय और भी बाहर निकल आये और कहने लगे "श्याम; तू बहुत इतरा गया है। तुझे कुछ भी शर्म है या नहीं।"

मैंने उनसे कहा "घर जाकर मैं स्नान कर लूंगा। केवल घर में जाने से ही घर भ्रष्ट नहीं हो जायगा। वह बेचारी कब तक यहां बैठी हुई राह देखती रहती? उसे वापस जाते-जाते अँधेरा (शाम) हो जायगा। नदी में हो कर जाना पड़ेगा! मैं अभी जाकर स्नान कर लेता हूं। 'स्नानात् शुद्धिः' का मंत्र मुझे भी मालूम है।"

इसके बाद मैं घर आया तो माता ने पूछा "उस बुढ़िया को तू इधर ही बुलाकर ले आ। कहां दूर जायगी वह बेचारी, इतना बड़ा गट्ठा उठा कर फिर कहीं रास्ते में गिर जायगा। अपने यहां भी तो ईंधन समाप्त हो चुका है, यहीं ले लेंगे। जा झटपट उसे बुलाकर ले आ!"

तत्काल ही मैंने पुकारा 'अरी' ओ! गट्ठेवाली!' आवाज को सुन कर वह हमारे घर के आहाते मे आई और माता ने उसका गट्ठा गिरवालिया। उसने बुढ़िया को सवा सेर चावल देने का विचार किया; और मैंने तत्काल कोठार में से चावल निकाल कर उसके पल्ले में डाल दिया। इसके बाद माता ने उससे पूछा बुढी माँ, क्या तू बीमार है?"

उसने कहा "हां माई, बुखार बड़े जोर का आता है। क्या करें, पेट के लिए भी तो कुछ करना चाहिए!"

इस पर माता ने फिर पूछा " दो-पहर का भात बचा है, ठंडा है। दे दूं क्या तुझे ? "

उसने अत्यन्त दीन-भाव से कहा " दे दो माई ! भगवान तुम्हारा बहुत भला करे ? गरिबो का संसार में कोई नहीं है। तुम्हीं लोगों का तो आसरा है। "

माता ने एक पत्तल पर वह बचा हुआ भात लाकर रक्खा और मैंने उसे उठा कर बुढ़िया को दे दिया। उसने बड़े प्रेम से वहीं आँगन के एक कोने मे बैठ कर वह भात खा लिया। इसके बाद बोली:— "थोड़ा-सा पानी भी पिला दो बाबा ! " तत्काल ही मैंने एक लोटे में पानी लेकर दूर से उसे पिला दिया, और वह आशीर्वाद देती हुई चली गई।

इसके बाद माता ने मुझे स्नान करने के लिए कहा और केल के वृक्ष के पास बैठा कर ऊपर से मेरे शरीर पर पानी डाल दिया। इस प्रकार सारा शरीर भीग जाने पर मैं दूसरे एक पत्थर पर जा बैठा। वहां मैंने अपने हाथों से पानी लेकर अच्छी तरह स्नान किया। स्नान कर के मैं घर मे गया और माता से कहा " माँ, उस दिन जो खरे साहब के यहां ज्योनार हुई, वहाँ भी एक गरीब महारनी मण्डप के दरवाजे पर खड़ी हुई भीख मांग रही थी। हम लोग उस समय मण्डप के नीचे बैठे हुए भोजन कर रहे थे। पूरन-पोली* परोसी जा रही थी, और लोगो से भोजन में आग्रह भी किया जा रहा था। भास्कर भट्ट से तो इतना अधिक आग्रह किया गया कि वे क्रुद्ध हो कर उठ खड़े हुए, तब आप-टेजी ने उन्हें समझा कर बैठाया। किन्तु बाहर खडी हुई उस महारनी को किसी ने रोटी का एक टुकडा नहीं दिया। वह बेचारी धूप में तिल-मिला रही थी। जब कि पक्ति में बैठे हुए लोगों पर पानी से भीगे पंखो द्वारा हवा की जा रही थी। खस की सुगन्ध-वाला पानी सब को पिलाया जा रहा था, किन्तु उस गरीब भिखारिनी के चिल्लाने पर भी कोई ध्यान नहीं दे रहा था। वह ग्रास-भर अन्न माँग रही थी; किन्तु

* चने की दाल को गुड़ के पानी के साथ उबालकर, पत्थर पर पीसने के बाद उस लुगदी को लोई में रख कर बनाई हुई रोटी। —अनु०

उसे उतना-सा अन्न और घूंट-भर पानी तक किसी ने नहीं दिया। इतना ही नहीं बरन् एक सज्जन-जिन का नाम मैं नहीं जानता, वे बम्बई में नौकरी करते हैं—पीताम्बर पहने हुए परोस रहे थे; वे एकदम क्रुद्ध हो कर मण्डप से बाहर गये और उस भिखारिनी को धिक्कारते हुए कहने लगे " शर्म नहीं आती तुझे. इस समय भीख मांगते हुए। ' अभी ब्राह्मणों का भोजन भी समाप्त नहीं हुआ और तू आकर चिल्लाने लगी ! जा, अभी। ब्राह्मणों का भोजन समाप्त हो जाने पर जूँठन उठा ले जाना। भीतर ब्राह्मण लोग भोजन कर रहे हैं और बाहर से तू चिल्ला रही है! तुम लोग बहुत सिर चढ़ गये हो ! हटती है या फेंकूं जूता! " यों कह कर सचमुच ही उस पीताम्बर-धारी व्यक्ति ने जूता उठाया। यह देख वह बेचारी ' मत मार रे दादा, मैं यह चली ' यों कहती हुई वहांसे तत्काल ही चुपचाप चली गई। माँ, ये लोग बम्बई में ईरानियों के होटलों में खाते और दूसरों के जूते तक साफ करते हैं; किन्तु यहां हमारे गाँव में आ कर इतनी ऐंठ दिखाते हैं। वह बेचारी गरीब महारनी तेरे सामने कह रही थी नँ कि ' गरीबों का कोई नहीं ' सो यह बात सत्य है। माँ, यदि कल की महार का कोई लड़का तहसीलदार बन कर आ जाय, तो उसे यही पीताम्बर-धारी अपने घर बुला कर बड़े आदर से भोजन करावेंगे और हार-फूल से स्वागत करेंगे। उसका छत्रपान करेंगे, और अपने को धन्य समझेंगे ! तो क्या माता ! सत्ता और सम्पत्ति के सामने सिर झुकाना ही इन लोगों का धर्म है ? क्या यही इनके परमात्मा हैं ? हाथ में जूता उठा लेने से इनका पीताम्बर अपवित्र नहीं हुआ ? पैरों में जूते पहन कर हाथ में ये पीताम्बर लिए हुए मौज से चले जाते हैं, किन्तु जिन्होंने ये जूते बना कर इनके पाँव में पहनाये हैं, उनसे घृणा करते और उनकी छाया भी अपने ऊपर पड़ने देना नहीं चाहते। माँ, यह कैसी मनोवृत्ति है री ! यह कैसी पवित्रता और किस प्रकार का धर्म है ? क्या परमात्मा को इनका यह पाखण्ड सहन हो सकता है ? इनके लिए तो एकमात्र पैसा ही परमात्मा है; क्यों माँ ! "

माता ने कहा " बेटा ! संसार में सब लोग पैसे और सम्पत्ति को ही सिर झुकाते हैं। उन पंढरीनाथ बाबा की कहानी में बतलाया गया है न

कि, वे जब गरीब थे, तब उन्हें सब लोग पंड्या-पंड्या कर के बुलाते थे। किन्तु जब वे बाहर जाकर पढ़ने-लिखने के बाद वकील बन गये और अपार धन कमा कर घर लौटे, तब उन्होंने सोमेश्वर-महादेव में बहुत बड़ा उत्सव मनाया। उसी दिन से लोग उन्हें, 'पढरीनाथ बाबा' कहने लगे। एक दिन वे किसी घर मिलने गये, वहां उन्हें बैठने लिए पाट दिया गया। किन्तु उन्होंने उसे दूर हटा कर कहा 'भाई, तुमने यह पाट (आसन) मुझे नहीं, मेरी सम्पत्ति को दिया है; इस लिए, यह सोने की पहुँची निकाल कर मैं इस पाट पर रखता हूं। मेरे लिए तो जमीन ही अच्छी है। तुम लोग तो सम्पत्ति का सम्मान करते हो, मनुष्य का नहीं। मनुष्य के हृदयस्थ देवता का आदर नहीं करते, अन्तःकरण की धनाढ्यता का सम्मान नहीं करते। तुम्हारे लिए तो ये सफेद और पीली धातु के टुकड़े एवं कागजी नोट ही पूज्य हैं!' बेटा, इस प्रकार उत्तर देकर वे लोगों का अज्ञान दूर किया करते थे। महार या मांग जैसे गरीब अछूत (हरिजन) के पास पैसा न होने से हम उन्हें दूर रखते हैं; किन्तु कल को यदि ये ही धनाढ्य हो जायँ; तो फिर महार मांग बन जायँगे। किन्तु श्याम! भले ही कोई महार हो या मांग, हमें बराबर उसकी सहायता करनी चाहिए; और घर आकर स्नान कर लेना चाहिए, क्योंकि हमें समाज में रहना है। समाज की निन्दा का हम सामना नहीं कर, इसी लिए इन्हें पापी समझते हैं, इनसे छू जाने के कारण नहीं। किन्तु पापी तो हम सब ही हैं।"

"सच है, पाप से किसका छुटकारा हुआ है? इस संसार में छाती पर हाथ रख कर कौन कह सकता है कि 'मैं निष्पाप हूं'। अपने शारीरिक-श्रम और पसीने की कमाई एवं प्रामाणिक उद्योग-द्वारा रोटी कमाने वाले महार-मांग ही अधिक पुण्यवान हैं, सच है नँ माँ?" इस प्रकार मैंने पूछा।

"श्याम हमारा वह जो विठनाका की तरफ का खेत है, वह भी असल में महार का ही है। मुझे सब मालूम है। पहले किसी समय उसे आधा मन गल्ला (अनाज) दिया गया था। उसकर सवाया-ड्योढ़ा कर के हमने वह खेत छीन लिया है। बेटा परमेश्वर के सामने हम्हीं पापी

सिद्ध होंगें। हमें सिर नीचा कर के खड़ा रहना पडेगा, समझा ! " इस प्रकार खिन्न हो कर माता ने अपने भाव प्रकट किये।

" माता ! दामाजी के लिए क्या परमात्मा स्वयं विठू महार नहीं बन गया ? यदि ईश्वर महार को घृणित या पापी समझता तो स्वयं उसका रूप क्यों धारण करता ? "

" माता ने कहा " श्याम ! परमात्मा को सभी जीव पवित्र जान पडते हैं। उसने मछली का रूप धारण किया, कछुए का रूप लिया। शूकर का और सिंह तक का रूप धारण किया। इसका मतलब यही है कि परमात्मा के लिए सारे ही आकार (शरीर) पवित्र हैं। ईश्वर ब्राह्मण के शरीर में है, मछली के शरीर में है, और महार के शरीर में भी है। वह गजेंद्र की पुकार सुन नंगे पैर दौड़ता है; तो भक्त के लिए घोडे का खुरा करता और गायें तक चराता है। उसे कुब्जा भी प्रिय है और शबरी भी। उसे गुह निषाद प्यारा है, और जटायु पक्षी एवं हनुमान वानर भी प्रिय है। श्याम ! ईश्वर को सभी प्रिय हैं; क्योंकि सब उसीके बनाये हुए हैं ! जैसे तू मेरा है, इस लिए मुझे प्रिय हैं; उसी प्रकार हम सब उस ईश्वर के है, इस लिए हम सब उसे प्रिय है। मुझे जो अच्छा लगे, वही तू करता है, वैसे ही हम सबको उस ईश्वर के प्रिय कार्य करने के लिए प्रयत्न-शील रहना चाहिए। किन्तु श्याम, जिसका अपने माता-पिता पर या भाई-बहन पर प्रेम नही है, वह महार, मांग (हरिजन) के साथ प्रेम कर सकेगा ! इस लिए पहले हमें घर के सब लोगों पर प्रेम करना चाहिए; इसके बाद तो एकनाथ महाराज की तरह महार की लडकी को भी हृदय से लगा लेने की शक्ति हममें आ सकती है। जब प्रेम का समुद्र हृदय में नहीं समा सकेगा, तब वह उफन् कर सब की ओर फैल जायगा। इस लिए बेटा, सब के प्रति हृदय में प्रेम-भाव रक्खो ! इससे अधिक मैं तुझे क्या कह सकती हूं। पुराणों में कहा गया है कि ईश्वर सर्वत्र है। मुझ पगली को क्या मालूम ! मैं क्या जान सकती हूं ? तू जब बड़ा होगा, तब तुझे सब कुछ ज्ञात हो जायगा ! "

इस प्रकार माता की बातें सुनते सुनते शाम हो गई। इतने ही में

किसीने मुझे पुकारा " श्याम ! ओ श्याम ! " इस पुकार को सुनत ही मैं बाहर चल दिया।

मित्रो ! आओ, हम ऊंच-नीच या खरे-खोटे का वाद अथवा सिद्धान्त ही दूर करदें; और इस बात को हृदय में अंकित करले कि समाज-सेवा करने वाला प्रत्येक व्यक्ति पवित्र है। ऐसा जब तक नहीं होता, तब तक मैं तो यहि कहूंगा कि :—

भरत-भूमि में शेष नहीं, अब ईश्वर का कुछ अंश रहा।
फल गया है अंधकार चहुँ और न रवि अवतंस रहा॥
जहां नहीं है दया, स्नेह, हरि-धाम उसे किस भांति कहें।
बन्धुभाव हो जहां न तिलभर प्रभु कैसे उस ठौर रहें।
मंदिर में वह नहीं, न मूरति में उसका आभास कहीं।
प्राणिमात्र में उसका दर्शन पा सकते हम सदा यहीं॥*

२७ बंधुप्रेम की सीख

मई महिने की छुट्टी थी। हम सब भाई-बहन उस समय घर पर ही इकट्ठे हो गये थे। पूना में मामा के घर रह कर पढ़ने वाला मेरा बड़ा भाई भी घर आया था। वह पूना में चेचक निकल आने से बहुत दिनों तक बीमार रहा था। उसके सारे ही शरीर पर सीतला के दाने निकल आये थे। कहीं भी तिल रखने तक के लिए जगह नहीं थी। बड़ी कठिनाई से उसके प्राण बच सके। मैं तो दापोली में घर से पास ही

*** माझ्या भारतिं या देव तो मुळिं नुरला।**
सगळा अंधार रे भारतान्तारिं भरला॥ माझ्या०॥
नाहिं दया स्नेह तिथें देव का असे।
बन्धुभाव तिळ न, तिथें प्रभु कसा वसे।
देव मंदिरीं ना। देव अंतरीं ना।
देव तो अजि मेला॥ माझ्या०॥

रह कर पढता था, इस लिए प्रत्येक छुटी में घर आ जाता था। शनिवार-रविवार को इच्छा होते ही मैं घर हो आता था। किन्तु मेरा बड़ा भाई दो वर्ष मे एक बार घर आता था। इस समय भी वह दो वर्ष बाद ही आया था, और कठिन बीमारी से अशक्त हो कर आया था।

चेचक (सीतला) की बीमार से उठने वाले मनुष्य के शरीर में गर्मी बहुत बढ़ जाती है। माता (चेचक) की बड़ी गर्मी रहती है। इस लिए उस समय रोगी के पेट में कोई ठण्डी वस्तु पहुँचाने की विशेष आवश्यकता होती है। ऐसी दशा मे गुलकद देना सबसे अच्छा है। किन्तु वहां गाँव में हमारे घर गुलकन्द कहां से आ सकता था? उसके लिए पैसे कहां से लाये जाते? फिर भी मेरी गुणमयी माता ने इस के लिए गरीबों का ही एक उपाय खोजा निकाला।

कांदा (प्याज) बहुत ठण्डा होता है। साथ ही वह सस्ता और पौष्टिक भी होता है। डॉक्टरों के मतानुसार उसमे ' फॉस्फरस ' होता है। जेल में रहते समय हम कांदे (प्याज) को राष्ट्रीय-खाद्य कहते थे। क्योंकि वह प्रायः हर समय मिल सकता था। कांदा (प्याज) रोटी खाने वाले मावलों (दक्षिणी पहाडो मे रहने वाली भीलों की ही एक जाति) ने कैसे-कैसे पराक्रम किये है! यथेष्ट शारीरिक श्रम करने वाले के लिए भी कांदे (प्याज) से कोई हानि नहीं होती; केवल बौद्धिक-श्रम करने वाले के लिए ही वह अच्छा नहीं है।

कांदे (प्याज) के गुणधर्म चाहे जो हों; किन्तु मेरी माता ने तो कुछ प्याज ले कर उन्हें थोडी देर तक भाफ में रखा और उनका ऊपरी छिल का निकाल कर गुड़ की चाशनी में डाल दिया। यह "कांदा-पॉक" बहुत ठण्डा बताया जाता है। मेरी माता बड़े भय्या को उस पाक में से दो तीन कांदे प्रतिदिन खिलाने लगी।

एक दिन मैंने माता से कहा "माँ, मुझे तू उस पाक में से एक भी कांदा मत देना, समझी! मैं तो तेरे लिए अन-मानैता लड़का हूं ही, जो कुछ है सो दादा के लिए है। कांदा-पॉक भी उसीसे लिए है। भात (चावल) पर घी भी उसीको ज्यादा परोसा जाता है, दही भी उसी अधिक मिलता है, हमें भला, ये सब चीजें क्यों मिलने लगी, हम

तेरे कौन होते हैं। हम तो पास रहते हैं, बार-बार घर आते रहते हैं, हमें कौन पूछता है? सच है, पास रहने वाला कोने में बैठाया जाता है और दूर रहने वाला स्वप्न में दिखाई देता है। अच्छा है भाई दादा की पाँचो उँगलियां घी मे हैं। मुझे भी यदि चेचक (माता) निकलती तो बड़ा अच्छा होता। ऐसा होनेपर आज मुझे भी कांदा-पाक तो मिलता, दूध-दही मिलता और यथेष्ट गाय का घी भी मिलता!"

मेरी बात सुन कर दादा को बुरा लगा। किन्तु वह बहुत ही उदार चित्तवाला भाई था। पढ़ने में उसे भी बड़ा कष्ट सहना पड़ता था। किन्तु वह चुपचाप सब सहन करता था। मेरी तरह उपद्रवी और कुचेष्टी वह न था। उनका स्वभाव शान्त और धीमा था। जिस प्रकार समुद्र भीतर ही भीतर बड़वानल से जलता रहता है; उसी प्रकार वह भी भीतर-मन में दुःख और अपमान से जलता रहता था, किन्तु मुँह से कभी एक अक्षर तक न निकालता था। साथ ही वह अपने मन की व्यथा किसीसे कहता भी न था। उसकी यह धारणा थी कि अपना दुःख या अपनी करुण-कहानी दूसरे को सुना कर क्यों व्यर्थ के लिए दुखी किया जाय? अस्तु।

मेरी बात सुन कर दादा ने माँ से कहा "सच है माता, मुझे अकेले ही ये सब चीजें खाते हुए शर्म लगती है! कल से मुझे ये सब चीजें मत देना। यदि सबको देती हो तो मुझे भी देना। चेचक तो निकल गई, अब क्या रक्खा है? बरनी मे जितना भी पाक बचा है, उसे चार दिन हम सब मिल कर खाएँगे।"

माता ने कुछ अप्रसन्न-सी हो कर कहा "अरे, तुम क्या कोई मेरे सौतेले लड़के हो? श्याम! इस प्रकार के आक्षेप-भरे शब्द तू क्यों मुख से निकालता है! उस बेचारे के पाँव के तलवों और आँखों में दिनरात जलन होती है, रात को भी वह तड़पता रहता है, उसे नीन्द नहीं आती; क्या ये सब बातें तू नहीं जानता है? उसे थोड़ी-सी ठण्डक मिले इसी लिए तो यह दवाई—गरीबी का उपाय—तैयार की है। अरे क्या खाने के लिए तूने जन्म लिया है? कहता है मुझे चेचक (माता) क्यों नहीं निकली? श्याम! अरे, इस तरह कोई बोलता भी है? परमात्मा को क्या प्रतीत होगा? अच्छा भला, हृष्ट-पुष्ट शरीर मिला है, तो तुझे बिना काम के

भूतों का स्मरण होता है। ऐसा नहीं कहना चाहिए श्याम! अब तू क्या छोटा बच्चा है? और फिर ये पोथी-पुराण क्यों पढ़ कर सुनाता है? राम पर लक्ष्मण का, और भरत का कितना प्रेम था! क्या उनकी कथाएँ तूने व्यर्थ ही पढ़ी हैं? अरे, उनमें से कोई गुण भी तो ग्रहण करना चाहिए नँ! वह तेरा ही तो बड़ा भाई है; या कोई पराया है? अरे पराये का भी द्वेष नहीं करना चाहिए। पराया भी यदि बीमार हो तो जो कुछ हो सके उसे देना चाहिए। तू जब घर आता है, तब क्या तेरे पैंव में तैल में नहीं लगाती? गर्म पानी से तेरे पैंव नहीं धुलाती? घर आने पर तुझे कोई अच्छी सी मीठी चीज बना कर नहीं खिलाती नारियल-पाक या इसी तरह की कोई मिठाई तुझे साथ ले जाने के लिए नहीं बना देती? भला, बड़े भाई का कोई इस प्रकार द्वेष करता भी है? इससे तो जान पड़ता है कि बड़े होने पर तुम एक दूसरे का मुँह भी नहीं देखोगे! बेटा श्याम! ऐसा न करना, समझे!"

दादा ने कहा "माँ, तू व्यर्थ ही अपने चित्त को दुखी करती है। श्याम के मन में ऐसी कोई बात नहीं है। हां, तो अभी तू हमें नाश्ता देने वाली थी नँ! लाऊं क्या केल के पत्ते तोड़ कर?"

माता ने कहा "जा रे श्याम, ला पत्ते तोड़ कर। देखना, नये कोमल पत्ते मत काटना। वह हँसिया ले, और ऊपर के बड़े पत्ते काट कर ले आ।"

मैं गया और केल के पत्ते जो ऊंचे चले गये थे, काट कर घर ले आया। मेरे छोटे भाई ने केल का मोठा-सा डठल देख कर कहा "दादा, वह डंठल मुझे बजाने के लिए दे दे। मैं फट्फटा बनाऊंगा।"

माता नाश्त बनाने लगी। थोड़ी ही देर में हम गर्मा-गरम नाश्ता उड़ाने लगे। ऊपर ले मक्खन परोसा जाने से उसका स्वाद बहुत बढ़िया हो गया था। इतने ही में माता ने कहा "अरे, प्रातःकाल तुलसी को मक्खन-मिश्री का जो नैवेद्य रखा था, वह वहीं सीपी में रखा होगा, उसे भी लेलो। मेरी माता प्रतिदिन सबेरे तुलसी के सम्मुख मक्खन-मिश्री का नैवेद्य रखती थी। दादा ने बरनी में से 'कांदे-पॉक' ला कर नाश्ते के साथ सब की पत्तल पर रख दिया। माता ने कहा "श्याम! कल मत मांगना

समझे ! तुम्हारे भाई पर नजर न लगनी चाहिए ! समझ गया नँ ? श्याम ! अब तुझे समझदार बनना चाहिए ! "

किन्तु मैं उस दिन सबेरे से ही रूठा हुआ था। किसी से भी मैं अच्छी तरह नहीं बोला। दादा ने मुझे गुल्ली-डंडा या गेंद-बल्ला खेलने को बुलाया, परन्तु मैं नहीं गया। तब वह छोटे भाई के साथ धनुष्य-बाण से खेलने लगा। छोटे भाई ने छाते की तीली को घिस कर बाण बना लिया था। दादा निशाने लगा रहा था। वह पौधों पर बाण चलाता और उनमें से रस—दूध—टपकने लगता ! यह देख मैंने गुस्से मे आकर कहा "दादा, तू उन अबोले वृक्षों को क्यों कष्ट पहुँचाता है ? उनके शरीर में से रक्त क्यों निकालता है ? "

यह सुन दादा ने कहा " तो फिर तू मेरे साथ गेंद-बल्ला खेलने आता है ? "

किन्तु इसके जवाब में मैं यह कहता हुआ सन्नाटे से निकल गया कि "मेरे क्या जूते को गरज पड़ी है ? मैं नहीं आता जा ! " भाई के साथ मेरा प्रेम नहीं था, किन्तु वृक्ष-पौधों पर मैं प्रेम दिखाना चाहता था ! वह केवल वंचना (पाखंड) ही थी। जो भाईसे प्रेम नहीं करता वह वृक्ष और पौधों से कैसे प्रेम कर सकता है ?

दो-पहर का भोजन चुकने के बाद दादा लेटा हुआ था। वह अपने पांव के तलवे हाथों से सुहला रहा था ! उसके तलवे में निरन्तर जलन हो रही थी। आज इतने वर्ष हो जाने पर भी उसकी जलन कम नहीं हुई थी, उसमें भी फिर इस समय तो वह चेचक की बीमारी से उठा था। मैं प्रति-दिन दादा के पैरों पर खड़ा हो कर उन्हे दबाता और इससे उसे आराम मिलता था। किन्तु उस दिन तो मैं रूठा हुआ था। दादा मेरी ओर देख रहा था; मूक स्वर में मुझे बुला रहा था। किन्तु मैंने निश्चय कर लिया था कि आज उसके पाँव हर्गिज नहीं दबाऊंगा। मैं दुष्ट हो गया था। उस दिन मेरे हृदय का सारा ही प्रेम मर गया था ! उस दिन मैं पत्थर हो गया था। अन्त मे दादा ने मुझे पुकार कर कहा "श्याम आज तू मेरे पैरों पर खड़ा हो कर उन्हें नही दबावेगा ? मुझे तुझ से इसके लिए कहते हुए बड़ा संकोच होता है। प्रतिदिन ही तुझ से कब तक यह काम लेता

रहूं! किन्तु, श्याम! पूना चले जाने पर मैं थोड़े ही तुझ से इसके लिए कहने आऊंगा! तू यहां है, इसी लिए कहता हू! जरा पैरों से दबादे तो भैया!"

दादा के करुण-शब्दों से मैं भीतर ही भीतर पिघल रहा था। परन्तु मेरे मन में तो अहंकार भरा हुआ था। वह अभी नहीं पिघला था। बर्फ के पहाड़ जैसे सूर्य-किरणों से पिघल जाते हैं; उसी प्रकार अहंकार का पर्वत प्रेम के स्पर्श से पिघल कर बह जाता है। किन्तु उस समय तो मैं हठ धारण कर चुका था। निश्चय कर चुका था। इसी लिए मैंने दादा के शब्दों पर ध्यान नहीं दिया। मैं अपने स्थान से हिला तक नहीं!

माता उस समय भोजन कर रही थी, और उसके कान पर दादा के वे करुण शब्द पड़ रहे थे। वह बेचारी हाथ धोकर वहां आई। उस समय भी उसने देखा कि मैं अपने स्थान से हिला तक नहीं हूं। उसने दादा के पास जाकर कहा "गजू! (गजानन) मैं दबाती हूं तेरे पाँव, बेटा! तू उसे क्यों कहता है? उसे क्यों कष्ट देता है? वह तेरा कौन है? सगा भाई होने पर भी स्वभाव का भेद तो है ही।" यों कह कर सचमुच ही वह दादा के पैर दबाने लगी। उधर चौके में जूँठन और रसोई के बर्तन आदि ज्यों के त्यों पड़े हुए थे। टोकरे-भर बर्तन माँजने के थे; किन्तु माता ने उन्हें वैसे ही पड़े रहने दिया। केवल रसोई-घर का दरवाजा बन्द कर के वह दादा की सेवा के लिए आ गई थी। मेरी उस प्रेममूर्ति, त्यागमयी एवं कष्टसहिष्णु माता, उस उदार और महान् हृदय वाली माता ने मुझ से एक शब्द तक नहीं कहा। वह मुझ पर जरा भी नाराज नहीं हुई!

अन्त को मैं ही लज्जित हुआ और मेरा सारा अहंकार दूर हो गया। मैंने माता के पास जाकर कहा "माँ, तू जा। मैं दादा के पैर दबाता हूं। जा झट्, तुझे घर का सब काम करना है।"

इस पर माता ने कहा "यदि तू दबाता ही है तो अच्छी तरह और धीरे-धीरे दबा; बेगारी के तरह पाप टालने के जैसा मत करना। इसे नींद आ जाने तक दबाना और तब खेलने के लिए चले जाना। अरे, यह तेरा ही तो दादा है न श्याम!" यों कह कर माता चली गई। जूंठन पर गोबर से लीप कर वह बर्तन माँजने के लिए बाहर आई। इधर मैं दादा के

पैरों पर खड़ा हो कर दबा रहा था। अपने पैरों की उंगलियों से उसके तलवों को सुहला रहा था। अन्त में मेरे उस उदार एवं निरहंकारी दादा को नींद आ गई।

मेरा गुस्सा उतर चुका था। ज्यों-ज्यों सूर्य अस्ताचल की ओर जा रहा था, त्यों-त्यों मेरा क्रोध भी अस्त होता जा रहा था। संध्या के बाद रात्रि का भोजन हो चुकने पर माता ने चौका-बर्तन कर डाला। हम लोग आँगन में बैठे हुए थे। तुलसी पर रखी हुई गलती अभी टपक रही थी। गर्मी के दिनों में एक मटके या कलसे के पैंदे में बारीक-सा छेद कर के उसमें पानी भर कर तुलसी पर लटका दिया जाता है, और आते-जाते हुए उसमें पानी डालते रहते हैं। उसे गलती कहते हैं। जैसी कि शिवजी के मंदिर में प्रायः देखने को मिल सकती है। इससे तुलसी को ठण्डक मिलती है और धूप के कारण वह कुम्हलाने नहीं पाती। तुलसी के पास घी का दीपक भी जल रहा था। किन्तु आँगन में दीपक की जरूरत थी ही नहीं; क्योंकि वहां तो खासी चांदनी छिटक रही थी। मेरे दादा के निर्मल मन की तरह शुभ्र चान्द्रिका फैली हुई थी। दादा, मैं, पुरुषोत्तम और छोटा भैय्या, हम सब आँगन में बैठे हुए थे। दूधवाली दादी और माता भी बैठी हुयी थी। पड़ौसिन जानकी मौसी भी आगई थी। भीगे हुए 'वाल' (धान्य-विशेष) के बीज निकाले जा रहे थे। थोड़ी ही देर के बाद मैंने माता से कहा "माँ! तू वह अभिमन्यु-वाला गीत सुना! मुझे वह बहुत अच्छा लगता है:—

अभिमन्यु गिर पड़ा भूमि पर चक्रव्यूह में फँसकर।
सात वीर ने मारा छल से, तदपि गिरा वह हँसकर ॥१॥
गुरुवर द्रोणाचार्य रचित था, विकट व्यूह वह भारी।
फिर भी वीर घुस पड़ा उसमें, जरा हिम्मत हारी ॥२॥*

हां, तो इसके आगे क्या है? गाती है न माँ! भगवान कृष्ण और अर्जुन उस रात को रण भूमि पर घायल अभिमन्यु का शरीर ढूंढने के

*** पडला अभिमन्यु, मन्युवीर रणीं। चक्रव्यूह रचिला द्रोणांनीं पडला अभिमन्यु।**

लिए जाते है और अभिमन्यु पड़ा हुआ मन्द-स्वर में कृष्ण-कृष्ण उच्चारण कर रहा है। उस मधुर-ध्वनि पर से वे दोनों जान लेते है कि अभिमन्यु यहीं कहीं होगा!...अहा कैसा सुन्दर गीत है! गाती है न माँ।"

माता ने कहा " अरे, आज तो दादी ही बढ़िया गीत सुनाने वाली हैं। आज उन्हींका गीत सुनो ! हां गाओं न वह चिन्दी (पट्टी) का गीत ! मैंने भी कई दिन से वह गीत नहीं सुना हैं।" इस प्रकार माता ने हमारी दादी से अनुरोध किया। यह बात मैं पहले ही बता चुका हूं कि हमारी उस दूबवाली दादी को अनेक प्रकार के गीत आते थे। किन्तु वह चिन्दी (पट्टी) वाला गीत मैंने कभी नहीं सुना था। इस लिए यह सोचकर कि वह योंही कोई गाना होगा; मैंने कहा "नहीं वह नहीं, चिन्दी का कोई भिखारी गीत होगा! उससे तो अच्छा पीताम्बर वाला कोई गीत सुनाओ दादी।" दादी ने कहा "अरे श्याम! तू जरा सुन तो सही। उस चिन्दी के गीत में भी पीताम्बर और साड़ियां ही हैं।"

दादी गाने लगी। उसका स्वर बहुत मधुर था। वह यथा-स्थान जोर देकर एवं हाथ-मुँह हिला कर गा रही थी। वह भावनामय हो कर गीत गा रही थी। विषय से एकरूप हो कर गा रही थी। उसका प्रारंभिक पद इस प्रकार था :—

द्रौपदी के बंधु माधव कृष्णचन्द्र मुरारि रे!*

यह गीत जिसने बनाया, वह कोई महान् कवि होना चाहिए। इसमें अत्यन्त सहृदयता-पूर्ण एवं रम्य-कल्पना भरी हुई है। कृष्ण का द्रौपदी पर हार्दिक प्रेम था, और द्रौपदी भी कृष्ण के प्रति अचल स्नेह रखती थी। अर्जुन और कृष्ण दोनों ही एक रूप होने से अर्जुन का नाम भी कृष्ण ही है, उसी प्रकार कृष्ण और द्रौपदी में भी अभिन्नता होने से इनका अद्वैत-भाव दिखलाने के लिए ही द्रौपदी को कृष्ण भी कहा जाता है। इस गीत में कवि ने घटना-प्रसंग की बड़े ही सुन्दर-रूप में कल्पना की है। कृष्ण का अपनी सगी बहन सुभद्रा पर उतना प्रेम नहीं था, जितना कि द्रौपदी

---

* द्रौपदीसि बन्धु शोभे नारायण।

पर (जोकि मानी हुई बहन थी)। इसका कारण क्या हो सकता है ? इसी शंका का कवि ने अपने इस गीत में निरसन किया है।

घटना इस प्रकार है कि एक दिन तीनों लोक में विचरने वाले नारदजी ब्रह्म-वीणा कांधे पर रख कर भक्ति-भाव से स्तुति करते हुए भगवान कृष्ण के पास आये। नारदजी तीनों लोक, अर्थात् सुर, नर और असुर तीनों के लोक में, अथवा—सात्त्विक, राजस, तामस या श्रेष्ठ, मध्यम और कनिष्ठ इस प्रकार के तीनों लोक में भ्रमण करते रहते थे। इसी कारण उन्हें अनेक प्रकार के अनुभव प्राप्त होते थे; और नाना प्रकार के दृश्य भी देखने को मिलते थे। किसी की महिमा बढाना और किसी का गर्व दूर करना, और यदि किसी कोने में कोई सुगन्धित पुष्प खिला हुआ हो तो उसकी सुगन्ध सर्वत्र फैलाना, आदि उनके नित्य के काम थे। उनका सब जगह सन्मान होता था, क्योंकि वे निःस्पृह थे। साथ ही वे सबके कल्याण के लिए निरन्तर प्रयत्न-शील भी रहते थे।

उन दिनों भगवान कृष्ण पाण्डवों के यहां मेहमान बन कर आये थे। नारदजी को देखते ही कृष्णचंद्र उठे और उनसे प्रेम-पूर्वक गले मिले। कुशल-प्रश्नादि हो जाने पर नारदजीने कहा "भगवान, मैं आज आपसे अपनी एक शंका का समाधान करने आया हूं। मैं सर्वत्र यही कहता फिरता हूं कि भगवान कृष्ण समदर्शी और निःपक्षपाती हैं। किन्तु एक स्थान पर किसी ने मुझ से कहा कि "नारदजी! बस रहने दो तुम्हारे कृष्ण की स्तुति। अरे, सगी छोटी बहन की अपेक्षा उस मानी हुई बहन पर ही उनका विशेष प्रेम है। भला, यह कैसी समदृष्टि है? सो भगवान मैं इसका क्या उत्तर देता ? इसी लिए विचार किया कि स्वतः आपके ही पास पहुंच कर इस शंका का समाधान कराना ठीक होगा! अतः आप इस भेद-भाव का रहस्य मुझे समझाइये। अपनी सगी बहन जो सुभद्रा है, उस पर आप का प्रेम कम क्यों है, सो बतलाइये।"

भगवान ने कहा "नारदजी, मैं निष्क्रिय हूं। जो मुझे अपनी ओर खींचता है, उसीकी ओर मैं चला जाता हूं। हवा चारों ओर चलती है, परन्तु मकान बन्द कर के बैठने वाला या घर की सब खिड़कियाँ बन्द कर लेने वाला यदि यह कहे कि 'हवा केवल खिड़की-दरवाजे खुले

रखने वाले के ही घर में क्यों जाती है, मेरे घर में क्यों नहीं आती ?' तो क्या उसका यह कहना ठीक समझा जायगा ? जिसने अपने सब खिड़की-दरवाजे खुले रक्खे हैं; उसके घर में ही वायु और प्रकाश का प्रवेश होगा। जितने द्वार खोले जायेंगे, उतनी ही हवा और रोशनी भीतर प्रवेश कर सकेगी। ठीक यही दशा मेरी भी है। द्रौपदी की डोर बलवान होगी, अतः उसने मुझे खींच लिया। सुभद्रा की डोर टूटी हुई होगी या मजबूत न होगी तो इसके लिए मैं क्या करू ? मैं तो स्वतः निष्क्रिय हूं। मेरा सच्चा स्वरूप **'लोकों में निस्पृह सदा अजित मैं, अंतः उदासीन मैं'*** जैसा ही है। किन्तु यदि तुम्हारी इच्छा परीक्षा कर के देखने की हो तो जैसा मैं बतलाता हूं, उस प्रकार थोड़ी-सी देर के लिए प्रयत्न करो। अर्थात् इसी क्षण सुभद्रा के पास दौड़ते हुए जाकर कहना कि 'कृष्ण की उंगली कट गई है, उस पर बाँधने के लिये कपड़े की एक चिन्दी दो।' यदि वह दे दे तो ले आना; और न दे तो द्रौपदी से जाकर मांगना।"

नारदजी चले और प्रथमतः सुभद्रा के पास पहुँचे। इन्हें आते देख सुभद्रा ने बड़े प्रेम से सत्कार किया, और पूछा "कहिये नारदजी! कैलास पर ब्रह्म-लोक में या पाताल लोक में क्या-क्या हो रहा है। कहीं कोई नई बात देखी हो, तो सुनाइये। आप का यह अच्छा धन्धा है; उठाई वीणा और चल दिये। जहां जी चाहा पहुँच गये। किन्तु इस तरह घूमते हुए उकताहट भी कभी नहीं होती होगी। क्योंकि नित्य नये प्रदेश में विचरण करते रहते हो। आज नन्दनवन में तो कल मधुवन में; किन्तु आज ऐसी जल्दी क्या है! बैठते क्यों नहीं ?"

नारदजी ने कहा "सुभद्रा बहन, बैठने का समय नहीं है। भगवान कृष्ण की उंगली कट गई है, धग्-धग् रक्त निकल रहा है। उनकी उंगली पर बाँधने के लिए कपड़े की एक चिन्दी चाहिए।"

इस पर सुभद्रा ने उत्तर दिया "अरे तुमने ऐसी वस्तु मांगी है, जो बिना ढूंढ़े मिलना कठिन है। भला, मैं चिन्दी कहां खोजूं ? यह पीताम्बर उन्होंने उत्तर-दिग्विजय के समय लाकर दिया था, और यह साड़ी कुतिभोजराजाने भेंट-स्वरूप भेजी थी। नारदजी इस समय तो घर में कपड़े

*** लोकीं निःस्पृह मीं सदा अजित मीं चित्तीं उदासीन मीं :**

की चिन्दी मिल सकना असम्भव है। बहुमूल्य साड़ी और वह शाल.... नहीं नारदजी, घर में चिन्दी नहीं है ! "

" अच्छा, तो मैं द्रौपदी देवी के यहां जाता हूं। " यों कह कर नारदजी चल दिये।

द्रौपदी 'कृष्ण-कृष्ण' गुनगुनाती हुई फूलों का हार गूंथ रही थी। नारदजी को देखते ही एकदम उठ खड़ी हुई और बड़े प्रेम से उनका स्वागत करते हुए बोली " आओ नारद ! यह हार मैं तुम्हें ही पहना देती हू। आओ, बैठो इस आसन पर। आज-कल भैया कृष्ण यहीं हैं, उन्हींसे मिलना आये हो, क्या ? उन्हींके आसपास तुम सब भौंरे की तरह एकत्रित हो जाते हो ! किन्तु देखना, सारे हो कृष्ण को मत लूट लेना, थोड़ा-सा मेरे लिए भी छोड़ना, समझे ! "

यह सुन नारदजी ने घबराते हुए कहा "द्रौपदी, यह समय हँसी-ठठ्ठा का नहीं है। बात चीत करने के लिए भी समय नहीं है। भगवान कृष्ण की एक उंगली कट गई है, उस पर बाँधने को चिन्दी चाहिए."

" क्या सचमुच ? कितनी कट गई है ? अरे-अरे मेरे भैया की उगली कट गई ! " यो कहते हुए अपने शरीर पर धारण किए हुए पीताम्बर में से ही फाड़ कर एक चिन्दी नारद को दे दी।

देह पर का जरि पिताम्बर तुरत दीन्हा फाड़ि रे।
द्रौपदी के बन्धु माधव कृष्णचन्द्र मुरारि रे॥*

दादी ने वह गाना इतने भाव-पूर्ण स्वर में गाया कि सुनते-सुनते मैं तल्लीन हो गया। दानें छीलना तक भूल गया।

गीत समाप्त होते ही माता ने पूछा " क्यों श्याम ! गीत पसंद आया ? तूने अच्छी तरह ध्यान से सुना है नँ ! "

मैं माता के उद्देश्य को समझ गया और बोला " माँ, आज तूने दादी से यही गीत गाने के लिए क्यो कहा, सो बतलाऊं ? "

माता बोली " हां, बतला ! क्या तू मन की बात भी जानने लग गया है ? "

*** भरजरि ग पितांबर दिला फाडून। द्रौपदीसि बंधू शोभे नारायण॥**

मैंने कहा " आज दो-पहर को मैं दादा के पैरों पर खड़ा हो कर उन्हें नहीं दबा रहा था। सबेरे उसे कांदा-पॉक खाने नहीं देता था, जैसे सुभद्रा सगी बहन होते हुए भी भगवान के लिए एक चिन्दी तक फाड़ कर न दे सकी; उसी प्रकार मै सगा भाई होते हुए भी अपने दादा से प्रेम नहीं करता। यही बात मुझे इस गीत-द्वारा बतला देना तुझे अभीष्ट था; क्यों यही बात है नँ ? मुझे लज्जित करने के लिए ही तूने दादी को यह गीत सुनाने के लिए कहा था ? सचमुच यही बात थी नँ माँ; मेरा अनुमान मिथ्या तो नहीं है ? "

माता ने कहा " हां; परन्तु तुझे लज्जित करने के लिए नहीं बरन् बंधु-प्रेम सिखलाने के लिए ही ! " मैं एकदम उठा और सीधा अपने दादा के पास गया। वहां जाकर मैंने उसके हाथों पर हाथ रख कर गद्गद् स्वर में कहा " दादा, मैं आज से तेरी किसी भी बात के लिए नाहीं न करूंगा। मैं तेरे साथ प्रेम करूंगा, तेरी भक्ति-सेवा करूंगा। मेरे दो-पहर के अपराध के लिए क्षमा कर ! "

दादा ने कहा " श्याम ! यह तू क्या कर रहा है ? क्षमा किस बात की मांगता है ? मैं तो दो-पहर की बात को भूल भी गया था। जिस प्रकार आकाश में बादल क्षणभर ही टिकते हैं, उसी प्रकार तेरा क्रोध भी क्षणस्थायी होता है। तेरे मनमौजी स्वभाव का मुझे पता है; और इसीके साथ-साथ मैं यह भी अच्छी तरह जानता हूं कि तेरा हृदय स्फटिक की तरह निर्मल है। माँ हम कभी एक दूसरे से दूर न होंगे, एक दूसरे को नहीं भूलेंगे। यदि क्षणभर के लिए कभी लड़-झगड़ भी लिये, तो भी फिर एक दूसरे के गले लग जायँगे "

माता ने कहा " तुम परस्पर प्रेम करो; इसीमें हमारा और परमात्मा का आनन्द है "

---

२८ उदार पितृहृदय

हमारे घर उस समय गाय जनी थी। इस लिए माता ने गाय के दूध का चीका (अच्छे दूध मे मीठा और नव-प्रसूता गाय का दूध मिला कर उसे गर्म करते और फट जाने पर उसे जमा कर वर्फी-नुमा काट कर खाते हैं।) बनाया था। उस समय माता मुझे याद कर रही थी। क्योंकि चीका मुझे बहुत पसद है, जब मैं बच्चा था तब राधा ग्वालिन यदि उसके घर 'चीका' होता तो अवश्य लाकर मुझे दिया करती थी। किन्तु वह बेचारी थोड़े ही दिनों बाद मर गई! माता ने पिताजी से कहा "यदि कोई आने-जाने वाला होता तो उसके हाथ श्याम के लिए चीका भेज देती!" यह सुन पिताजी बोले "किसी आने-जाने की राह देखने का क्या काम, मैं खुद ही लेकर चला जाता हू। घर की गाय का चीका पाकर श्याम को बड़ी प्रसन्नता होगी। कल सबेरे जल्दी उठ कर मैं खुद ले जाऊगा। परन्तु किस बर्तन में ले जाना ठीक होगा?"

माता ने कहा "उस सेर-भर नाप वाले बर्तन में बना दूंगी, उसे ही किनारे तक चीके से भरा हुआ ले जाना ठीक कर रहेगा।"

प्रातः काल माता ने बढ़िया चीका तैयार किया और उसे ले कर पिताजी पैदल ही मेरे पास आने के लिए दापोली चल दिये।

स्कूल में दो-पहर की छुट्टी हो चुकी थी; और पिंजरे मे बन्द पक्षी की तरह सभी लड़के बाहर निकल आये थे; अथवा बाड़े में घिरे हुए बछड़े बाहर खुले मैदान में खुली हवा में खेल रहे थे। पाठशाला के चारों ओर घनी झाड़ी थी। कलमी आम के पेड़ों में बहुत नीचे से शाखाएँ फूटने लगती हैं। वे शाखाएँ जमीन से टिक कर ऐसा भास कराती हैं, मानों भू-माता के गले लग कर आलिंगन कर रही हैं। इसी लिए दो-पहर की छुट्टी में लड़के इन्हीं आम की शाखाओं पर कूद-फांद कर खेला करते थे। उस समय वे एक प्रकार से बन्दर ही बन कर उड़ियां लगाने लगते और छुट्टी का समय आनन्द से बिताते थे।

उस समय लड़के इधर-उधर भटक रहे थे। कोई घर से लाया

हुआ नाश्ता उड़ा रहा था, तो कोई आम की शाखा पर बैठा हुआ गा रहा था। कोई लम्बी डाली पर बैठ कर झूल रहा था, तो कोई दूसरा खेल खेल रहा था। कोई पढ़ रहा था और कोई वृक्ष की छाया में लेटा हुआ था। इसी प्रकार कोई भीतर पाठशाला मे ही बैठ कर पुस्तक पढ़ रहा था। किन्तु मैं अपने एक साथी को लिए हुए वृक्ष के नीचे बैठा कविताएँ सुना रहा था। मुझे बहुत-सी कविताएँ मुखाग्र थीं। लगभग सारा ही 'नवनीत' (काव्यसंग्रह) कंठस्थ था। संस्कृत के स्तोत्र गंगा लहरी, महिम्नस्तोत्र आदि भी याद थे। साथ ही मुझे खुद भी कविता बनाने का शौक था। 'ओवी' (दोहे की तरह का पद्य) तो मैं बहुत ही शीघ्रता से बना लेता था। ओवी, अभंग, दिण्डी, साकी, आदि के समान छोटे-छोटे और सुगम वृत क्वचित् ही कहीं दिखाई देंगे। ये जन्मजात मराठी-वृत्त (पद्य-छंद) हैं। मैं अकेला एक ओर होता और दूसरे सब लड़के दूसरी ओर। फिर भी मैं उनसे अच्छी कविता सुना कर बाजी मार ले जाता था। लड़के मजाक मे मुझे 'बाल-कवि' कहते थे।

इधर हम अपने काव्यालाप में लगे हुए थे, कि इतने ही मे कुछ लड़के "श्याम, अरे ओ श्याम!" की आवाज लगाते हुए वहां आ पहुँचे। उनमें से एक ने मुझ से कहा "श्याम!" तुझे कोई खोज रहा हैं। वह पुछ रहा हैं "हमारा श्याम कहां है?" इतने ही में मेरे पिताजी खुद मुझे खोजते-खोजते वहां आ पहुँचे।

मैंने पूछा "भाईजी, आप यहां कैसे आये? अब हमारी घंटी होने वाली है। मैं घर पर ही आपसे मिल लेता।" पिताजी की वह अस्त-व्यस्त वेशभूषा देख कर मुझे शर्म लग रही थी। उन दिनों मैं अंगरेजी पाठशाला में पढ़ते हुए लड़कों के बीच विचरता था। अन्य किसी बात का महत्त्व न समझ सकने पर भी साफ स्वच्छ और फेशनेबल पोषाक की महत्ता मैं अवश्य समझने लगा था। अतः उस समय छह कोस पैदल चल कर आने वाले पिताजी के हार्दिक-प्रेम का मुझे ध्यान नहीं हुआ; और मेरी द्रष्टि उनकी देहाती वेष-भूषा की ओरही गई! मैं उस समय अंधा हो रहा था। आधुनिक-शिक्षा के कारण मेरे हृदय का विकास नहीं बरन् संकोच ही हो रहा था। उस शिक्षा-द्वारा अंतर्द्रष्टि प्राप्त होने के बदले मैं अधिकाधिक

बाह्यदृष्टि होता जाता था। शिक्षा के द्वारा वस्तु के अंतरंग में जानेके बदले में उसके बाह्य-स्वरूप पर ही मुग्ध हो रहा था। जो शिक्षा मनुष्य को दूसरे के अंतःकरण में प्रवेश नहीं कराती; दूसरे के हृदय-मंदिर की सत्य-सृष्टि नहीं दिखाती, वह शिक्षा शिक्षा ही नहीं कही जा सकती। शिक्षा के द्वारा तो प्रत्येक वस्तु और प्रत्येक व्यक्ति एक प्रकार से ज्ञानमंदिर ही जान पड़ना चाहिए। इन सब बाह्य आकारों के भीतर जो दिव्य और भव्य सृष्टि होती है, इसका प्रत्यक्ष दर्शन होना चाहिए। ऐसा जब तक नही होता, अस्पष्ट-रूप से भी नहीं होता, तब तक प्राप्त की हुई सब शिक्षा व्यर्थ समझनी चाहिए। हृदय का विकास एक अत्यंत महत्त्व-पूर्ण एवं जीवन में सुन्दरता और कोमलता लाने वाली वस्तु है।

छह कोस पैदल चलकर पिताजी आये। किन्तु क्यों आये? वह चीका उसकी एक बर्फी अपने पुत्र को (मुझे) देने के लिए। कितना निःस्वार्थ प्रेम! उस प्रेम मे उन्हें यह सब कष्ट भी आनद-प्रद जान पडता था! और सच्चा प्रेम भी उसीका नाम हैं; जिसमें अनत कष्ट, विपत्तियां और सकट भी मधूर प्रतीत होते हैं। इस प्रकार का दिव्य प्रेम मुझे बाल्यावस्था में प्राप्त हुआ था। किन्तु आज तो मैं अपने माता-पिता के उस दिव्य-प्रेम में भी दोष ढूंढने लगूगा। यदि उन्होंने अपने गाँव के ही किसी गरीब लड़के को वह चीका दे दिया होता? या किसी हरिजन-बालक को वह स्वादिष्ट खाद्य दिया होता; तो उसे कितना आनन्द होता? पड़ौसी के बच्चे उन्हें श्याम के रूप में क्यों नहीं जान पड़ते? अमुक आकार और अमुक रंग का, अमुक नाम वाला विशिष्ट नामरूपात्मक मिट्टी का एक लौंदा ही उन्हें अपना क्यों जान पड़ा?

किन्तु यह महान् और व्यापक द्रष्टि एकदम ही प्राप्त नहीं हो जाती। मनुष्य धीरे-धीरे ही बढ़ता और आसक्तिमय जीवन से निरासक्त जीवन की ओर मुड़ता जाता है। मेरे माता-पिता मुझे अपरिमित प्रेम-रस का पान कराते थे; इसी लिए आज मैं उसका कुछ अंश दूसरों को भेंट कर सकता हूं। उस समय मेरे अंतःकरण में प्रेम के बीज बोये जा रहे थे, उन्हींमें से आज यह अंकुर निकल रहा है। मेरे अनजाने में और स्वतः भी अज्ञात-भाव से वे भोले माता-पिता मेरे जीवन में, मेरी हृदय-वाटिका में कोमल और

प्रेममयी भावना के बीज बो रहे थे, उसके पौधे लगा रहे थे। इसी लिए आज मेरे जीवन में थोड़ा-सा आनन्द दिखाई दे रहा है, कुछ सुगन्ध मिल रही है। वह उजाड या रुक्ष अथवा बीभत्स नही है।

मुझे यही चिंता हो रही थी कि पिताजी को देखकर लडके मेरी हँसी उडावेंगे और कहेंगे "क्योंरे, क्या वही तेरे पिता थे? अहा! कैसी विचित्र पगडी बाँधे हुए थे, और कैसा उनका कोट था!" किन्तु पिताजी के हृदय की ओर मैं बिलकुल ही नहीं देख रहा था। मुझे तो अपनी ही चिन्ता थी। अपनी ही प्रतिष्ठा की रक्षा का मैं विचार कर रहा था। हम सब आज कल 'अहंवेद' हो रहे हैं। न हम द्विवेदी हैं न त्रिवेदी और न चतुर्वेदी। हम सब तो केवल एकवेदी हो रहे हैं और उस वेद का नाम है 'अहं'। निरंतर हम अपना ही विचार करते रहते हैं। अपने सम्मान, अपनी प्रतिष्ठा, अपने सुख और अपनी महत्ता, अपनी इज्जत और जो कुछ भी चिंता है वह सब अपनी ही। इसी कारण आज हम बड़े नहीं बन सकते हैं। भला, जो अपने आपको नहीं भूल सकता, वह दूसरों से क्या प्रेम करेगा?

पिताजी ने कहा श्याम, तेरी माता ने यह 'चीका' तेरे लिए भेजा है; और इसी लिए मैं खुद इसे ले कर आया हूं। सो तू अपने मित्रों के साथ इसे खाकर बर्तन मुझे वापस दे दे। यों कह कर वह छोटी-सी पतीली उन्होंने मेरे सिपुर्द कर दी। दूसरे लडके मेरी ओर देखते हुए खिल-खिला कर हँस रहे थे। इससे मैं बहुत लज्जित हुआ। इतने ही में पिताजी फिर बोल उठे "श्याम! इस तरह बैठा हुआ देख क्या रहा है! झट-पट समाप्त कर डाल! इसमें शर्माने को क्या हुआ? आओ, लडको! तुमभी लो! श्याम को अकेले खाते हुए शर्म लगती होगी! और अकेले को खाना भी तो नहीं चाहिए। चार मित्रों को दे कर ही खाना उचित है।" तब तक दूसरे सब लडके चल दिये थे; केवल मेरे मित्र ही वहां ठहरे थे। उनमें से एक ढीठ लड़का आगे बढा और उसने बर्तन पर बँधा हुआ कपड़ा खोलकर कहा "आओ श्याम, आओ मित्रो, हम सब मिलकर अभी इसे समाप्त कर देते हैं। यों कहकर हम सब उस पर टूट पड़े। पिताजी वृक्ष की छाया में एक ओर लेटकर सुस्ताने लगे। उन्होंने वह चीका नहीं लिया।

हम उन्हें देते रहे; किन्तु उन्होंने कहा " तुम्हीं खाओ। लड़को के खाने में ही आनंद और मजा है।"

हमने थोड़ी ही देर में उसे खाकर समाप्त कर दिया। बहुत ही स्वादिष्ट बना था वह। उधर थक जाने के कारण पिताजी को नींद लग गई; इतने ही मे घंटी बजी और पिताजी जग पड़े। उन्होंने पूछा "क्यों श्याम, खा चुके? लाओ वह बर्तन, मैं जाते हुए नदी पर साफ कर दूंगा।" हमने वह बर्तन वैसा ही उन्हें दे दिया; और तत्काल पिताजी जाने के लिए उठ खड़े हुए। जाते-जाते उन्होंने कहा "श्याम, अच्छी तरह पाठ याद करना और स्वास्थ्य को सम्हाले रहना। गाय का नया बच्चा अच्छा है।" इसके बाद वे उधर चले गये और हम स्कूल में!

मुझे अपनी दशा पर शर्म आ रही थी कि ऐसे प्रेमी माता-पिता का मैं कैसा कृतघ्न लड़का हूँ। मैं मन ही मन यही तो सोच रहा था। घटना तो हो चुकी; किन्तु अंतःकरण में वही बारबार खटक रही थी। केवल चीके जैसी साधारण-सी वस्तु लेकर छह कोस पैदल आने और उसका एक कण भी स्वतः न खाते हुए वापस छह कोस जानेवाले प्रेमी पिता एव उन्हें भेजनेवाली मेरी प्रेममयी माता, दोनों के अनन्त शुद्ध प्रेम रूपी ऋण से मैं कैसे मुक्त हो सकूंगा? यदि मैं अपने सैकड़ों, भाई-बहनों के साथ इसी प्रकार निरपेक्ष प्रेम कर सका; तो भले ही उससे कुछ उऋण हो सकता हूं; अन्यथा नहीं।

२९ "सांब सदाशिव जल बसों"

उस वर्ष पहले तो अच्छी वर्षा हो गई; किन्तु बाद मे पानी बरसना बिलकुल बन्द हो गया। खेतों मे अनाज अच्छी तरह जम चुका था; किन्तु पीछे से धूप के कारण जमीन सूख गई। गड्ढों और नालों का पानी भी सूख गया और बीड़ का घास भी सूखने लगा! लोगों की चिन्ता हो चली। किसान लोग आशाभरी द्रष्टि से आकाश की ओर देखने लगे। वे इस बात के लिए उत्सुक हो रहे थे कि कहीं कोई

काला बादल तो नहीं दिखाई दे रहा है? वर्षा कृषि का—किंबहुना संसार का मुख्य आधार है। वर्षा के ही कारण संसार चल रहा है। यदि वर्षा न हो तो कुछ न हो। जीवन के लिए जल की आवश्यकता है; इसी कारण जल को जीवन कहा गया है। मुझे कभी-कभी संस्कृत भाषा की महत्ता का विशेष रूप से भान होता है। उस में पृथ्वी, जल आदि के लिए जो शब्द रखे गये हैं, वे कितने काव्यमय हैं! पृथ्वी के लिए 'क्षमा' शब्द की जिसने योजना की वह कितना महान् कवि होना चाहिए! इसी प्रकार जल के लिए जिसने 'जीवन' शब्द की योजना की, उस का हृदय भी कितना विशाल होना चाहिए! जल के लिए और भी कई मृदु और मधुर नामों की संस्कृत भाषा में योजना की गई है। जिन पूर्वजों ने उसे अमृत, पय, जीवन आदि सुन्दर नामों से अभिहित किया, उनकी विद्वत्ता पर मुग्ध हो जाना पड़ता है। यदि जल को अमृत न कहा जाय तो फिर अमृत और क्या हो सकता है? कुम्हिलाये हुए पौधे या फूल पर थोड़ासा पानी छींटते ही एकदम उसमें जीवन-कला, प्रफुल्लता दिखाई देने लगती है! सूखे हुए घास पर थोड़ासा पानी छींटते ही वह एकदम ताजा हो जाता है। इस प्रकार मरते हुए को जीवन देने वाला एक मात्र जल ही हो सकता है। थोड़ा-सा पानी पीते ही तत्काल थकावट दूर हो जाती है। चैतन्य आ जाता है। जल को वैदिक ऋषियों ने माता के नाम से भी संबोधन किया है। माता बच्चे को दूध पिलाती है; किन्तु दूध से भी पानी का दर्जा बड़ा है। पानी की हमेशा जरूरत रहती है। जल-रूपी रस की तो जन्म से लेकर मृत्युपर्यंत आवश्यकता रहती है। इसी लिए उन ऋषियों ने जल को प्रेममयी माता के समान बताया है। पानी में जो जीवनी-शक्ति है, वह अन्य किस वस्तु में हो सकती है? जल की महिमा का यथार्थ वर्णन कौन कर सकता है? उसमे भी फिर वह निरुपाधि है। उसका कोई रंग नहीं; आकार नहीं और न उसमें कोई गंध ही है। उसमें जो रंग मिलाया जाय अथवा जैसी सुगन्ध डाली जाय, वैसा ही वह बन जाता है। इस प्रकार जल मानों प्रत्यक्ष परमेश्वर का ही एक रूप है।

हां, तो उस वर्ष पानी न बरसने से खेती सूखने लगी। जब अवर्षण सूखे) के चिन्ह दिखाई देने लगे; तो इस संकट को टालने और वर्षा

होने के लिए अपने गाँव के शिवजी को जल में डुबो देने विषयक प्राचीन प्रथा से काम लेने की बात सोची गई। इस कार्य में शिवजी की पिण्डी को जल में डुबो देने के लिए मंदिर का समग्र भीतरी भाग जल से भर दिया जाता है। ब्राह्मण लोग रुद्रपाठ करते हैं और कुछ व्यक्ति हांडे भर-भर कर पानी लाकर मंदिर में डालते रहते हैं। सात दिनों तक अहोरात्र यह अभिषेक होता है। यदि सात दिन से भी काम नहीं चला, तो फिर वर्षा होने तक गाँव भर के ब्राह्मण पारी-पारी से रुद्राभिषेक करते हैं। जिन-जिन को रुद्र-पाठ करना आता है, उनकी सूची बनाकर समय बाँध दिया जाता है। इसी प्रकार पानी भरने की पारी भी निश्चित कर दी जाती है। उस दिन शिवालय में बड़ी भीड़ हो रही थी। रुद्र का गभीर स्वर सुनाई दे रहा था। वैसे भी रुद्रसूक्त अत्यंत गंभीर, तेजस्वी और उदात्त है। उस कवि-ऋषि के सम्मुख सारा ब्रह्माण्ड विद्यमान प्रतीत होता है। साथ ही यह भी जान पड़ता है कि सारी सृष्टि उसके नेत्रों के सामने से सपाटे के साथ चली जा रही है। सृष्टि के समस्त मनुष्यों की आवश्यकताएँ उसके सामने उपस्थित हैं। वह मानों विश्व के साथ एक-रूप होता-सा जान पड़ता है। मेरे पिता भी रुद्रपाठ जानते थे; अतएव उनकी पारी रात को बारह बजे बाद की रखी गई थी।

माता ने मुझसे कहा " अरे, तू मंदिर में जाकर पानी भरने का ही काम क्यों करता ? जा वहाँ ! "

इस पर मैंने उत्तर दिया, " परतु मुझ से वे बड़े-बड़े हांडे क्यों कर उठ सकेंगे ? "

यह सुन माता ने कहा " तो तू घर से यह छोटी कलसी क्यों नहीं ले जाता? यह भी नहीं तो लोटा ले जाने से भी काम चल सकेगा। बावली में से एक-एक लोटा जलभर कर लाना और महादेवजी पर चढा देना। गणपति की बावली में उतरना भी सरल है। सीधी सीढ़िया बनी हुई हैं। जा, वह लोटा ले जा। "

मैंने कहा " इतना-सा लोटा लेकर क्या जाऊं! तू तो कह देगी कि वह सुराही या पचंपात्र ही लेजा। परंतु लोग तो मेरी हँसी करेंगे नँ? "

इस प्रकार मैंने नाराजगी प्रकट की।

किन्तु माता ने फिर भी यही कहा कि " श्याम ! इससे तो कोई भी तेरी हँसी नहीं करेगा; किन्तु यदि तू बड़ा कलसा उठाने लगा तो अवश्य लोग तेरे कार्य पर हँसेंगे। अपनी शक्ति से बाहर का काम करना भी बुरा है; और जितना हम कर सकते हैं उतना भी न करके आलसी की तरह बैठना भी बुरा है। यह सारे गाँव का काम है। तुझे रुद्रपाठ करना नहीं आता, तो केवल जल ही चढ़ा। इस काम में तेरा भाग तुझे पूर्ण करना चाहिए। प्रत्येक को इसमें यथा शक्ति हाथ बँटाना ही चाहिए। काम से मुँह छिपाना बुरा है। गोवर्धन पर्वत को जब भगवान कृष्ण ने उठाया; तो प्रत्येक ग्वाल-बाल ने उसके नीचे अपनी अपनी लठियों का सहारा दिया था ! क्या उन सबकी शक्ति बराबर थी ? फिर तो तू व्यर्थ ही इतने पोथी-पत्र पढ़ता है। इस प्रकार कोरे पढ़ने से क्या लाभ? सारी बुद्धि गोबर में मिल जायगी। वह समुद्र का पुल बनाने की बात क्या तू भूल गया ? उसके लिए जब हनुमान, सुग्रीव, अंगद आदि सभी बड़े-बड़े वानर पर्वत उठा उठाकर ला रहे थे; तब एक छोटीसी गिलहरी की भी इच्छा हुई कि समुद्र का पुल बनाने में मैं भी भगवान रामचंद्र की कुछ सहायता करू ! क्योंकि यह बड़ा पवित्र कार्य है। रावण का विनाश सारे संसार के हित के लिए आवश्यक है। इस लिए समग्र संसार की ओर से उस काम में सहायता देना आवश्यक था। यही सोच कर वह छोटी गिलहरी समुद्र की रेत में लोटने लगी; और इस तरह उसके शरीर अथवा रोमावली में बालू के जो कण लग जाते उन्हें ले जाकर वह सेतु के निकट बदन झाड़कर गिरा देती। इस प्रकार उसमें जितनी शक्ति थी उतना वह काम कर रही थी। ठीक उसी तरह तुझे भी यदि मोटा हांडा न उठाया जा सके तो कलसी लेकर जाना चाहिए; और उससे यदि थक जाय तो लोटा भर-भर कर पानी लाना चाहिए। और वह भी न उठ सके तो ग्लास भर-भर कर शंकर पर जल चढ़ाना चाहिए ! जा बेटा, तुझे कहां तक समझाती रहूं ! " इस प्रकार माता ने बड़े प्रेम से मुझे उत्साहित किया।

अंत को मैं उठ खड़ा हुआ और छोटी-सी कलसी उठाकर मंदिर में गया। वहां कई लड़के पानी भर-भर कर ला रहे थे और भगवान् शंकर को

जल में मूंद रहे थे। बाहर मंडप में रुद्राभिषेक के मंत्र पढ़े जा रहे थे। लगातार पानी के हांडे उँडेले जा रहे थे। बड़ा गंभीर दृश्य था। मुझ से भी छोटे-छोटे लड़के पानी भर कर ला रहे थे। मैं भी उनमें मिल गया। प्रथमतः मुझे शर्म-सी लगने लगी! इस पर एक भट्टजी ने मुझ से कहा "क्यों श्याम, क्या तू आज ही आया है! अंग्रेजी पढ़ता है, इस लिए तुझे शर्म लगती होगी, क्यों ? किन्तु मैंने कोई उत्तर नहीं दिया। छोटे-छोटे लड़के पानी भर कर लाते हुए मत्र-पाठ करते आते थे। किन्तु वह कोई वेदमंत्र नहीं था। संस्कृत नहीं, भाषा का ही मत्र था।

हे शिव, शंभो वर्षा कर! वर दे, हमको हर्षा कर।
खेती-बारी खूब पके। पैसे का दो शेर बिके॥*

यही उन का मंत्र था। अच्छी वर्षा हो, खेती-बारी में अच्छा और यथेष्ट अन्न उत्पन्न हो। खूब सस्ताई हो, यही बात वे लड़के शिवजी से माँग रहे थे। मुझे प्रथमतः लज्जा प्रतीत होने लगी। उधर संस्कृत में रुद्रपाठ नहीं आता था, इधर यह बालमंत्र बोलने भी शर्म लगती थी। किन्तु उन लड़कों के उत्साह के कारण मेरी लज्जा दूर हो गई। मैं भी जोरजोर से उनके स्वर मे स्वर मिलाकर गाने लगा। इतना ही नहीं उनके साथ मिलकर नाचने भी लगा।

इस प्रकार सामुदायिक कार्य में हमसे जो कुछ हो सके, वह काम अवश्य करना चाहिए! इसमें शर्म किस बात की? चींटी को चींटी के समान काम करना चाहिए और हाथी को हाथी के समान।

---

* **सांब सदाशिव पाउस दे। शेतेंभातें पिकूं दे। पैशानें पायली विकूं दे।**

३० बड़ा बनने के लिए चोरी

हमारे गाँव से कुछ दूर 'लाटवण' नामक फड़के इनामदार का गाँव है। वहां उनके वंशज आज भी रहते हैं। हरिपंत फड़के सरदार एक प्रसिद्ध व्यक्ति हुए हैं, उन्हीं के वंशज ये लोग हैं। मेरे पिता के साथ उनका बड़ा घरोपा था। लाटवण के बलवंतराव फड़के हमेशा पिताजी के पास आते-जाते रहते थे। हम लड़कों के साथ भी वे बड़े प्रेम से गप्पें लड़ाया करते थे। उन्हें अहंकार जरा भी न था। अत्यंत सीधे और भोले सज्जन थे। मैं जब बात ही बात में उनकी उंगली में से अंगूठी निकाल-कर छिपा देता; तब वे कहने लगते "श्याम! क्या तुझे अंगूठी चाहिए; और उनके इतना पूछने पर मैं उस अंगूठी को अपनी उंगलियों में पहनने लगता था। किन्तु वह मेरी एक भी उंगली में न बैठती और ढीली होने से गिर जाती! तब वे हँसकर कहते 'अरे, पहले तू कुछ मोटा-तगड़ा हो तब वह तेरी उंगली में आ सकेगी।

उन दिनों मैं दापोली से घर आया था; और बलवतरावजी एवं अन्य कोई मेहमान भी हमारे घर पर ठहरे हुए थे। दापोली में मुझे पुस्त-कादि पढ़ने का शौक लग गया था; किन्तु वहां अच्छी पुस्तकें पढ़ने के लिए नहीं मिलती थीं। दाभोळकर-मंडली की पुस्तकें मैं पढ़ा करता, परन्तु वे मेरी समझ में नहीं आती थीं। स्पेन्सर का जो चरित्र मैंने पढ़ा था, उसका कुछ अंश मुझे आज भी स्मरण है। उन्हीं दिनों श्रीयुत भास्कर विष्णु फड़के 'रामतीर्थ-ग्रंथावली' खंडशः प्रकाशित करने लगे थे। मुझ पर श्री. फड़के के लेखों का बहुत प्रभाव पड़ा है। उनकी तेजस्वी, सोज्ज्वल और आवेश-युक्त मराठी भाषा मेरे हृदय को गुद्गुदा देती थी। राम-तीर्थ के ग्रंथ मानों मैंने कंठस्थ से कर लिए थे। किन्तु उस समय मुझे सब भाग मिल नहीं सके थे। बाद में अपने किसी रिश्तेदार के घर एक दिन मुझे उसका एक भाग देखने को मिला और वह मुझे बहुत पसंद आया। किन्तु उन महाशय ने वह ग्रंथ मेरे हाथ में से छीनते हुए कहा "अरे, तू इस में क्या समझ सकता है?" मुझे इस पर बहुत बुरा लगा

कदाचित् उनकी अपेक्षा मैं ही उसे अच्छी तरह समझ सकता था; क्योंकि मैं सहृदय था, कवि-हृदय था। माता-पिता ने मेरी मनोभूमिका तैयार की थी। मराठी के पोथी-पु॰।गादि पढ़कर मेरा अंतःकरण प्रेम-मय, भक्तिपूर्ण एवं श्रद्धा और भावनायुक्त हो गया था। मैंने सोचा, किसी प्रकार यह ग्रंथ खरीद लिया जाय! किन्तु पैसे कहां से आवें? अपने कोर्स की ही पूरी पुस्तकें मेरे पास नहीं थीं। अंगरेजी पढ़ रहा था, किन्तु एक भी कोष-ग्रंथ मेरे पास नहीं था। अंदाज से ही मैं शब्दों के अर्थ निकाल लेता था। फिर भी मुझे यही प्रतीत हुआ कि रामतीर्थ के सब ग्रंथ अपने पास होने चाहिए।

हमारे यहां आये हुए मेहमान के जेब में खूब पैसे थे। नोटों की एक गड्डी-सी थी; इस लिए उसमें से केवल एक नोट निकाल लेने की बात मैंने सोची। यद्यपि दूसरे के रुपये-पैसे चुराना पाप था; किन्तु वह पाप कर के भी मैंने उत्तम पुस्तक पढ़ने का पुण्य कमाने की बात सोची!

इसके बाद मैंने चुपके से एक नोट निकाल लिया। रात को जब वे महाशय अपने रुपये-पैसे-नोट गिन रहे थे; तब मैं अपने छोटे भाई को श्लोक सिखा रहा था :—

> आश, ये मुझे, हे प्रभो सदा।
> दे दयानिधे, बुद्धि तू भली॥*

अर्थात् उसे तो अच्छी बुद्धि माँगने के लिए श्लोक सिखा रहा था, और स्वयं चोरी किये हुए बैठा था। मेरे पिता और वे मेहमान दोनों ही पास-पास बैठे हुए थे। उन्होंने बारम्बार नोट गिने, किन्तु पांच रुपये का एक नोट कम था!

उन्होंने पिताजी से कहा "भाऊराव पांच रुपये कम पड़ते हैं; एक नोट नहीं मिलता।"

इस पर पिताजी ने कहा "अच्छी तरह जेबों को टटोल लिया है! किसी को दिया तो नहीं; याद कर लीजिये।" इधर उक्त बात-चीत को सुन मेरा श्लोक सिखाना बन्द हो गया।

---

* आस ही तुझी फार लागली। दे दयानिधे बुद्धि चांगली॥

चोर को भला कहां शांति (चैन) मिल सकती है ? घर में माता भोजन कर रही थी, अतएव मैं उसके पास जाकर इधर-उधर की बातें करने लगा।

"माँ, तेरे लिए इतने से भात से क्या होगा ? क्या आज बचा नहीं ?" इस प्रकार मैंने प्रेम से पूछा। इसपर उसने कहा "अरे बेटा, मुझे भूख ही कहां है ? जैसे-तैसे चार ग्रास पेट में डाल लेती हूं। क्योंकि घर का सारा कामकाज भी तो होना चाहिए ? पेट में पानी पीने के लिए कुछ आधार चाहिए नँ ! अब तो सब का ध्यान इसी ओर लगा है कि तुम कब झटपट बड़े होते हो !"

मैंने कहा "हां, माता ! मैं सचमुच ही बड़ा बनूंगा और खूब पढ़ूंगा और ऊंचे दर्जे की शिक्षा प्राप्त करूंगा।"

"अवश्य पढ़ लिख कर सुशिक्षित हो और अच्छे विद्वान् बनो। क्योंकि बहुत पढ़े-लिखे लोग प्रायः बिगड़ जाते हैं, इस लिए भय लगता है। सो, बहुत पढ़ लिख न सको और बहुत बड़े न भी बन सको, तो भी स्वभाव से अच्छे रहो। मेरे बच्चे बड़े न हों तो हानि नहीं, परन्तु गुणवान होने चाहिए। यही मैं परमात्मा से प्रार्थना करती रहती हूं।" इस प्रकार माता ने मुझे उपदेश किया। वह प्रेममयी, उदार माता कितनी मधुर वाणी में शिक्षा दे रही थी ? मुझे रह रह-कर इसी बात पर आश्चर्य होता था कि उस अशिक्षिता माता के हृदय में इस प्रकार के अच्छे विचार कहां से उत्पन्न होते हैं ! हज़रत मुहम्मद साहब से अरब के लोग कहा करते कि "यदि तुम ईश्वर के पैगम्बर हो तो कोई चमत्कार दिखाओ !" इस पर वे यही उत्तर देते थे कि "जब सारा संसार ही चमत्कार-मय है, तब मैं और नया चमत्कार किस लिये दिखलाऊं ? समुद्र पर जब तुम्हारी नावें हवा के द्वारा चलती हैं; तो क्या यह चमत्कार नहीं है ? उस अथाह और विशाल समुद्र के वक्षःस्थल पर वे निर्भय हो कर फूल की तरह नाचती हैं, इधर-उधर डोलती हैं, यह क्या चमत्कार नहीं है ? जंगल में गये हुए मूक (गूंगे) पशु स्वयं तुम्हारे घर प्रेम-सहित वापस आजाते हैं, यह क्या चमत्कार नहीं है ? रेतीले मैदान में जल-रूपी अमृत के सरोवर दिखाई देना क्या चमत्कार नहीं है; और उसी

रेगिस्ता में खजूर के मधुर फल-युक्त वृक्ष उत्पन्न होते दिखाई देना क्या चमत्कार नहीं है ? " इस प्रकार उदाहरण देते हुए अन्त में वे कहते हैं कि " मुझ जैसे जंगली के मुख से खुदा कुरान-शरीफ का उच्चारण कराता है, यह क्या चमत्कार नहीं है ? " मित्रो, इसी प्रकार वह परमेश्वर मेरी माता के मुख से भी कुरान का उच्चारण करा रहा था। कुरान का अर्थ है (हृदय) निचोड़ कर निकले हुए उद्गार। माता मुझ से ये शब्द बड़ी हार्दिक भावना से कहती थी। उसके शब्द हृदय निचोड़ कर निकले हुए होते थे। हृदय-गुहा-मंदिर में विराजित जो पवित्र शंकर की पिण्डी (आत्मा) है, उसी की वह ध्वनि होती थी। उसके वचन ही मेरे लिए श्रुति-स्मृति थे।

" बड़ा न भी बन सके तो भी गुणवान अवश्य बनना। " कितने उदार शब्द हैं। उस समय इन शब्दों को सुनते हुए मेरे हृदय में बिच्छू-से डंक मार रहे थे; मुझे साँप-से डस रहे थे। मित्रो ! इँग्लैण्ड में ट्यूडर नाम के राजा हुए; उनके शासन-काल में खुफिया पुलिस का बड़ा दौर-दौरा था। एक इतिहासकार ने उस समय की स्थिति का वर्णन किया है कि " उस समय प्रत्येक तकिये के नीचे बिच्छू होता था। " अर्थात् कहीं भी निश्चिन्त-भाव से सिर टिहाने के लिए जगह नहीं थी। ठीक उसी तरह हमारे हृदय साम्राज्य में भी अनेक बिच्छू हैं; जो हमें सुख से सोने नहीं देते ! वे बराबर हमारे पीछे लगे ही रहते हैं। भले ही हम पाताल मे चले जायँ, यहां तक कि मर भी जायँ तो भी ये गुप्त-दूत पीछे पड़े ही रहते हैं। भलेबुरे के ज्ञान की सुई हमेशा चुभती ही रहती है।

हां, तो उन सज्जन की बात सुन कर पिताजी ने कहा " घर में भी कोई नहीं आया, यह तो चमत्कार ही समझना चाहिए। " इसपर बलवन्तराव बोले "श्याम आदि से पूछो कि घर में कोई बाहर का लड़का तो नहीं आया था ? आज-कल के लड़के बहुत खराब होते हैं। आज-कल कई लड़कों को बुरी आदतें लग जाती हैं। उन्हें बचपन से ही पान या बिड़ी-तम्बाकू खाने-पीने की आदत पड जाती है। इस लिए जरा श्याम को बुला कर पूछा तो जाय ! श्याम ! अरे ओ श्याम ! जरा यहां तो आना ! "

आवाज सुन कर मैं उनके पास जा खड़ा हुआ; और पूछने लगा " क्या कहते हो ? "

इस पर बलवन्तराव ने पूछा " तेरा कोई मित्रादि यहां आया था ? एक नोट गुम हो गया है। "

मैंने कहा " नहीं साहब ! मैं खुद ही आज बाहर खेलने चला गया था। सायंकाल को आया हूं। यहां दूसरा कोई नहीं आया ! "

यह सुन पिताजी बोले " श्याम ! तूने तो नहीं लिया है वह नोट ! यदि लिया हो तो कह दे ! "

इस पर बलवन्तराव बोले " छिः यह कैसे लेगा; और क्यों लेगा ? "

इतने में माता भी हाथ धोकर वहां आ पहुँची। उसे भी यह सारा किस्सा मालूम हुआ। पिताजी के हृदय में बड़ी वेदना हो रही थी। उनके घर में से नोट गायब हो जाना यथार्थ में अत्यन्त लज्जा का विषय था। इस लिए उन्होंने फिर पूछा "श्याम! क्या सचमुच ही तुने वह नोट नहीं लिया ? कंपास-बक्स आदि के लिए लिया हो तो कह दे। तू उस दिन इसी के लिए पैसे माँग भी रहा था ! "

इस पर माता ने कहा " नहीं जी, श्याम कभी ऐसा नहीं कर सकता। यह नाराज हो जाय या रूठ भले ही जाय, किन्तु किसी की वस्तु को भूल कर भी हाथ नहीं लगाता। यह बात इसमें बहुत अच्छी है। इतने पर भी यदि कभी कुछ कर लेता है; तो उसे स्वीकार करने में भी संकोच नहीं करता। यह किसी बात को छिपाता नहीं। उस दिन एक बर्फी घर में से ले ली थी, किन्तु पूछने पर तत्काल उस बात को स्वीकार कर लिया और बतला दिया कि " हां, मैंने ली है। " श्याम कभी इनका नोट नहीं ले सकता; और यदि लिया होगा तो अभी स्वीकार कर लेगा ! क्यों श्याम ! तूने तो नहीं न हाथ लगाया उनके जेब को ? "

अहा ! माता का मुझ पर कितना दृढ विश्वास ! 'प्रथम तो यह लेगा ही नहीं और ले भी लिया तो स्वीकार कर लेगा।' उसकी मुझ पर कैसी अटल श्रद्धा ! तब क्या मैं माता के साथ विश्वासघात करूं ? सन्त तुकाराम ने एक अभंग में कहा है :— " **विश्वासीची धन्य जाति** " अर्थात् जिस पर विश्वास किया जा सकता है, उसकी जाति धन्य है, वे

लोग धन्य हैं। मेरे असत्य का किला ढह चला। माता के सरल किन्तु श्रद्धामय शब्दों ने उस भित्ति-हीन दुर्ग को गिराकर भूमिसात् कर दिया।

मेरी आँखों में पानी आ गया। उन दुर्बल अश्रुओं के प्रवाह में पापरूपी पर्वत बह गया। यह देख माता ने कहा "श्याम, रोता क्यों है? मैंने यह थोड़े ही कहा कि तूने नोट लिया है! तू कभी नहीं ले सकता। मैं अच्छी तरह जानती हूं! मैंने तो योंही पूछा था।"

किन्तु माता के इन विश्वास-युक्त शब्दों ने मुझे और भी अधिक द्रवित कर दिया। मैं एकदम उसके पास गया और करुण-भाव से रोते हुए मैंने कहा "माँ! तेरे इस चोर श्याम ने ही वह नोट लिया है। ले यह है वह नोट! माँ...!"

मुझ से अधिक न बोला जा सका। माता को भी बहुत बुरा लगा। उसने कितने अटल विश्वास से साथ कहा था कि 'मेरा श्याम कभी किसी की वस्तु को हाथ नहीं लगाता!' मेरे लिए उसके हृदय में जो अहंकार या अभिमान था, वह दूर हो गया। किन्तु सर्वथा ही नहीं चला गया। ईश्वर ने उसकी लज्जा रख ली। क्योंकि उसने कहा था 'यह कभी लेगा नहीं; और भूल से ले भी लिया तो स्वीकार कर लेगा!' इस प्रकार जो भी उसका पुत्र कसौटी पर पूरा तो नहीं उतारा, किन्तु आधा तो खरा सिद्ध हुआ ही।

अपराध स्वीकार कर लेने पर माता ने मुझे समझाते हुए कहा "श्याम! अब फिर कभी किसी की वस्तु को हाथ न लगाना। यही तेरा पहला और अन्तिम अपराध होना चाहिए। तूने स्वीकार कर लिया, यह बड़ा अच्छा किया! जा, आगे ऐसी भूल मत करना!"

बलवन्तराव को मेरी इस बात पर बड़ा आश्चर्य और आनंद हुआ। उन्होंने प्रसन्नता से मुझे एक रुपया दिया। किन्तु वह भी मैंने तत्काल माता के हाथ पर रख दिया।

इसके बाद माता ने पूछा "श्याम! तूने वह नोट क्यों चुराया था?"

मैंने कहा "माँ, बड़ा आदमी बनने, पुस्तकें पढ़कर बड़ा बनने के लिए"।

"अरे, किन्तु पहली ही पुस्तक में तूने पढ़ा था न कि चोरी कभी

नहीं करना चाहिए!" जब इस बात को पढ़कर भी शिक्षा नहीं ग्रहण की; तो फिर आगे दूसरी पुस्तकों की आवश्यकता ही कहाँ रह जाती है!" यद्यपि माता ने ये शब्द अत्यंत सामान्य भाव से कहे थे; किन्तु उनमें बड़ा मर्म भरा हुआ था!

बन्धुओ! पतंजली के महाभाष्य मे ऐसा एक वाक्य बतलाते हैं कि "एकः शब्दः सम्यक् ज्ञातः स्वर्गे लोके कामधुग्भवति"। अर्थात् एक ही शब्द का यदि मनुष्य को भली-भांति ज्ञान हो जाय, तो उसकी मोक्ष हो सकती है; किन्तु वह 'सम्यक् ज्ञातः' अच्छी तरह समझा हुआ होना चाहिए। केवळ तोते की तरह पढ़ा या रटा हुआ नहीं। क्योंकि जो बात अच्छी तरह समझ में आ जाती है, उसे हम व्यवहार में लाते हैं, आचरण में लाते हैं। जैसे छोटा बच्चा लेम्प या लालटैन को हाथ से पकड़ना चाहता है, किन्तु उसका काँच गर्म होता है, अतएव माता बच्चे को दूर हटा देती है। किन्तु वह फिर उसी के पास जाता है। तब अन्त में माता उससे कहती है 'अच्छा, लगा हाथ।' इस पर जब वह बच्चा हाथ लगाता है तो हाथ जल जाता है, फिर वह भूल कर भी उसको हाथ नहीं लगाता। उसका ज्ञान पक्का हो जाता है। महात्मा तुकाराम ने इसी लिए ज्ञान को सद्‌गुण कहा है। संस्कृत में भी परम-ज्ञान की अनुभूति का अर्थ है अनुभव। हम जीवन में जो कुछ अनुभव करते हैं उसी का नाम ज्ञान है!"

"चोरी कभी न करनी चाहिए" यह वाक्य मैं पहली पुस्तक में ही पढ़ चुका था, किन्तु इसे गुना-सीखा नहीं था। सत्य, दया, प्रेम, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, आदि छोटे-छोटे शब्द हैं। हम तत्काल ही इनका उच्चारण कर डालते हैं; किन्तु इनकी अनुभूति होने के लिए सैकड़ों जन्म भी पर्याप्त नहीं हो सकते!"

३१ तू आयु में बड़ा नहीं.... मन से

मई महिने की छुट्टी समाप्त हो जाने पर मैं फिर दापोली चला गया। स्कूल खुल चुका था। वर्षा आरंभ हुई और तप्त-भूमि को मेघ शांत करने लगे। तपी हुयी भूमि पर पानी गिरने से सुगन्ध

निकलती है। वर्षा आरंभ होते ही मिट्टी में से एक मधुर सुगन्ध छूटने लगती है। उसी समय 'गंधवती पृथ्वी' की यथार्थता का अनुभव होता है। फूल और फल में जो रस, गंध और एक खास प्रकार का स्वाद होता है, वह सब इस पृथ्वी माता का ही दिया हुआ हार्दिक प्रसाद होता है।

घर से दापोली आते समय मैं इस बार एक बात का निश्चय कर के आया था। अर्थात् छुट्टियों में घर रहते समय एक दिन छोटा भाई नये कुर्ते के लिए हठ धारण कर बैठा था। उस समय उसे समझाते हुए माता ने कहा था "तेरे भाई बड़े होंगे और जब नौकरी-धंधा करेंगे, तब तेरे लिए छह-छह महिने में नये-नये कुर्ते सिलवा दिया करेंगे; अभी से हठ कर बैठना अच्छा नहीं।" मित्रो! मेरे बचपन में आजकल की तरह कपड़ों का तूफान खड़ा नहीं हो पाया था। मैं खुद कई दिनों तक कोट का नाम भी नहीं जानता था। कुर्ता भी वर्ष दो वर्ष में एक बार नया मिल पाता था। ठण्ड के दिनों में हम धोती की चौतही करके गले में बाँध लेते और पाठशाला में चले जाते थे। उस समय न तो मफ़लर थे और न जाकिट, तब फिर चेस्टर और गर्म ओव्हर-कोट तो होते ही कहां से? किन्तु अब तो शहरों में ही नहीं छोटे-छोटे गाँवों में भी मनुष्य के लिए अनेक प्रकार के कपड़ों की आवश्यकता होने लगी है। हवा और रोशनी (प्रकाश) का शरीर से जितना अधिक स्पर्श हो; उतना ही वह लाभप्रद होता है। क्योंकि वायु और प्रकाश के रूप में प्रत्यक्ष परमेश्वर ही; मानों हमारे शरीर को स्वच्छ और निरोग करने के लिए स्पर्श करता है। किन्तु हम ऐसे अभागे हैं कि उस सृष्टि-देवी, प्रकृति-माता का पवित्र हाथ ही अपने शरीर से नहीं लगने देते। परिणाम-स्वरूप हमें अनेक प्रकार की व्याधियों में फँस जाना पड़ता है। एक रशियन डाक्टर का कथन है कि "संसार के अधिकांश रोग निरर्थक कपड़ों से उत्पन्न होते हैं।" रूस में यदि अधिक ठण्ड (सर्दी) न हो; तो लड़के लंगोट बाँधकर ही स्कूल में जाते हैं। कपड़े कम उपयोग में लाने की नई रीति रशिया निर्माण कर रहा है। अर्थात् विचार की आँखों से रशिया जीवन पर द्रष्टि डालने और तदनुसार चलने का भी प्रयत्न कर रहा है।

मेरे छोटे भाई का कुर्ता फट गया था और माता ने उसमें दो

तीन जगह पेबन्द भी लगा दिये थे; किन्तु फिर भी मैंने इस बार यही निश्चय किया कि छोटे भाई के लिए अवश्य नया कुर्ता बनवाकर ले जाऊंगा। पर इसके लिए पैसे कहां से आवेंगे, यही सबसे बड़ी चिंता थी।

मेरे पिता कोर्ट-कचहरी के काम से बारम्बार दापोली आते रहते थे। दरिद्रता बढ़ती जाने पर भी कर्ज्जे-दलाली पीछा नहीं छोड़ रही थी। यह भी एक प्रकार का व्यसन ही होता है। कई लोगों को कोर्ट-कचहरी के बिना चैन ही नहीं पड़ती। अपने मामले खत्म हो जाने पर वे दूसरों के झगड़े-मामले लड़ने के लिए अपने सिर ले लेते हैं। वे लोग प्रायः इस शर्त पर मुकदमें लड़ने का ठेका ले लेते हैं कि "यदि मामला जीत गये तो उसमें से अमुक रकम हम लेंगे; और यदि हार गये तो जो कुछ खर्च लगेगा वह हमारा।" ऐसे कई व्यक्ति मैंने देखे हैं।

हां, तो पिताजी जब-जब दापोली आते; तब मुझे आने दो आने मिठाई के लिए दे जाते थे। अतएव उन पैसों में से एक पाई भी मैंने खर्च न करने का निश्चय कर लिया। ज्येष्ठ मास में हमारा स्कूल खुला था और गणेश-चतुर्थी (भाद्रपद शु. ४) को अभी तीन महिने बाकी थे। इस अवधि में मेरे पास मिठाई के पैसे एक रुपये के लगभग जमा हो सकते थे। इस लिए मैंने उस रुपये से भाई के लिए नया कोट या कुर्ता बनवाकर ले जाने का निश्चय कर लिया।

अब मेरी दृष्टि अपने ध्येय पर जमी हुई थी। प्रतिदिन पैसे गिन रहा था। गणेश-चतुर्थी निकट आती चली। उस समय तक मेरे पास एक रुपया दो आने जमा हो गये थे। गौरी-गणेश के लिए नये कपड़े बनवाये जाते हैं। घर में बाल-बच्चों के लिए भी माता-पिता नये कपड़े बनवाते हैं; किन्तु मेरे भाई के लिए कौन कपड़े बनवा सकता है ? इसी लिए मैंने निश्चय किया कि उसके लिए कपड़े मैं बनवाऊंगा।

मैं दर्जी के पास गया और साथ में अपने भाई की अवस्था के एक लड़के को ले गया। उसके बदन के माप का कोट सीने के लिए दिया। दो वार (गज) कपड़ा और आधा वार अस्तर लाकर दे दिया। कोट तैयार हो गया और मेरे पास के पैसों से ही सारा खर्च पूरा हो गया।

जब वह कोट मैंने हाथ में लिया तो मेरी आँखों से आँसू टपक

रहे थे। नये कपड़े पर मंगल सूचक कुंकुम लगाते हैं; किन्तु मैंने उस कोट पर प्रेम-रूपी अश्रु-जल का सिंचन किया।

जब मैं घर को चला तो रास्ते में पानी ने भी यही प्रण कर लिया था कि मैं बस, आज ही बरस कर रहूंगा। दापोली में जिनके यहां मैं रहता था, वे बोले "बरसते पानी में घर मत जा। नदी-नाले पूर आ रहे होंगे। पिसई के नाले और सोंडेघर के नद में प्रायः उतार नहीं है; इस लिए हमारी बात मान और आज घर मत जा।" परन्तु मैंने किसी की भी बात नहीं सुनी। मेरे हृदय में तो प्रेम का नाला पूर आ रहा था। वह इन साधारण पानी के नदी-नालों की पर्वाह क्यों करने लगा।

छोटे भाई के लिए नया कोट लेकर मैं चल दिया। यदि पंख होते तो मैं एकदम उड़कर घर पहुँच जाता। फिर भी चलने में मुझे नाम-मात्र को भी श्रम नहीं जान पड़ता था। मैं तो अपने सुखस्वप्न में निमग्न था। माता को कोट देखकर कितना आनंद होगा, इसी कल्पना में मैं विचरण कर रहा था। एक उड़ता सांप मेरे पैरों के पास होकर उड़ गया। यह सांप कोंकण में 'नानेटी' कहलाता है। इसका रंग हरा होता है और यह प्रायः एक जगह से उछल कर दूसरी जगह गिर जाता है। मुझे इससे कुछ भय-सा प्रतीत हुआ; और मैं सावधान होकर चलने लगा। पिसई का नाला दोनों किनारे से लगा हुआ बह रहा था। उसमें उतरने का रास्ता नहीं था और पानी में खिंचाव भी बहुत था; किन्तु फिर भी मैं थोड़ी देर ठहरा और माता का नाम लेकर पानी में उतर ही तो पड़ा। हाथ में लाठी थी। पहले लाठी रखता और तब उसके सहारे आगे पाँव बढ़ाता था। बीच में जाकर तो मैं बिल्कुल ही बह जाने की स्थिति में पहुँच गया था; किन्तु फिर मैं कैसे किनारे लगा, यह भगवान ही जाने। कदाचित् मेरा प्रेम ही मुझे पार लगा रहा था। क्योंकि जिस प्रकार अन्य नदी नालों से मिलने के लिए प्रेमावेश में बहने वाला वह नाला था, उसी प्रकार मैं भी था। तब भला, वह मुझे कैसे डुबा सकता था? मैं भी तो अपने भाई से मिलने के लिए जा रहा था। उस नाले के जितना ही मैंभी तो उत्सुक था; दौड़ लगा रहा था! उस नाले की तरह मेरा भी तो अन्तःकरण उमड़ रहा था।

मार्ग में कंकड़ (गिट्टी) धुल कर ऊपर निकल आने से काँटे की तरह

मेरे पैरों में चुभते थे। किन्तु उनकी ओर मेरा ध्यान नहीं था। अँधेरा होने से पहले घर पहुँच जाने का मैं पूरा-पूरा प्रयत्न कर रहा था। किन्तु मार्ग में ही अँधेरा हो गया। आकाश में बादल गरज रहे थे, बिजली भी चमक रही थी। पानी जोरों से बह रहा था; और इस प्रकार उन पंच भूतों की नृत्य-लीला में होकर मैं आगे बढ़ा जा रहा था।

अन्त में जैसे-तैसे एक बार मैं घर आ पहुँचा। सारा शरीर कपड़े आदि पानी से तर हो रहे थे। घर जाते ही मैंने बाहर से पुकारा 'माँ!' उस समय बड़ी सर्दी लग रही थी। पिताजी संध्या कर रहे थे; और माता ने हाथ सेंकने के लिए अंगीठी में अंगारे भर कर उनके पास रख दिये थे।

"दादा आया! माँ, भैया आगया!" यों कहकर छोटे भाई ने द्वार खोल दिया; और दोनों छोटे भाई मुझ से लिपट गये।

माता ने पूछा "ऐसी वर्षा में तू क्यों आया श्याम! सारा भीग गया नँ?"

इधर तब तक पिताजी ने पूछा "क्या सोंडेघर के नाले में पानी नहीं था?"

मैंने दोनों को उत्तर देते हुए कहा "खूब था। परन्तु मैं जैसे-तैसे आगया।"

इस पर माता ने कहा "गणपति की कृपा! अच्छा; पहले ये सब कपड़े निकाल दे और गर्म पानी से स्नान कर। मैं तब तक कपड़े सूखने डाल देती हूं।" यों कहकर माता पानी रखने गई और मैं कपड़े उतारने लगा?

इधर मैं स्नान के लिए गया, उधर छोटे भाइयों ने मेरी गठड़ी खोली। छोटे बच्चों में यह आदत होती ही है। उनको जान पड़ता है कि बाहर से आने वाला हमारे लिए कुछ न कुछ अवश्य लाया होगा! किन्तु मैं अपने भाइयों के लिए क्या लाता? कौनसी मिठाई लाता? या क्या खिलौना लाता? कौनसी रंगीन चित्र की पुस्तक लाता? और कहां से लाता? मैं तो गरीब था!

किन्तु मेरे भाइयों को उस गठड़ी में अपने काम की चीज मिल ही गई! वह कोट उनके हाथ लग गया। नया कोट! वह कोट नहीं था, वह हृदय था, प्रेम था। वह माता की फलवती शिक्षा थी!

तत्काल ही छोटा भाई कोट लेकर मेरे पास आया और बोला " दादा! यह छोटा-सा कोट किसका है! यह नया कोट किसके लिए?"

इस पर मैंने कहा " फिर बताऊंगा, अभी घर में ले जा!"

यह सुन वह माता के पास ले जा कर पूछने लगा " माँ, यह देख नया कोट! यह दादा के शरीर का नहीं है। यह तो मेरे ही लिये लाया है नँ, क्यों माँ?"

माता ने मुझे सूखी धोती पहनने को दी; और तब मैं हाथ-पाँव सेंकने के लिए चूल्हे के पास जा बैठा! इसके बाद उसने पूछा " श्याम! यह छोटा-सा कोट किसका है?"

तब तक पिताजी कहने लगे " क्या मोरेश्वरजी जोशी के यहां देने का है? कैम्प के गूंगे दर्जी ने भेजा होगा क्यों?"

मैंने कहा "नहीं, यह तो मैं पुरुषोत्तम के लिए सिलवा कर लाया हूं।"

यह सुन पिताजी पूछने लगे " इस के लिए पैसे कहां से लाया? क्या किसी से कर्ज (उधार) लिये या फीस के बचा लिये?"

साथ ही माता ने चिंता-पूर्वक पूछा " किसी के पैसे-कौड़ी को तो हाथ नहीं न लगाया?"

इस पर मैंने कहा " माँ, उस तूने कहा कि 'यह तेरा पहला और अंतिम अपराध होना चाहिए;' सो क्या मैं इस बात को भूल सकता हूं? मैंने कर्ज भी नहीं लिया और न किसी के पैसे चुरा कर ही लाया हूं और न फीस के पैसे ही खर्च किये है।"

यह सुन पिताजी ने पूछा "तो क्या उधार सिलवा लाया है?"

मैंने कहा " नहीं पिताजी, आप जब-जब दापोली आते और मुझे मिठाई के लिए आने, दो आने दे आते थे, वे सब मैंने खर्च न कर के इकठ्ठे किये। पिछले तीन महिने के जो पैसे जमा हुए उसी से यह कोट सिलवा कर लाया हूं। माँ, पुरुषोत्तम से कहा करती थी कि तेरे दादा बड़े होंगे; तब तेरे लिए नये कोट-कुर्ते सिलवा दिया करेंगे।' उसी समय से मैंने निश्चय कर लिया था कि इस बार गणेशोत्सव के समय तेरे लिए अवश्य कोट सिलवाकर लाऊंगा! पुरुषोत्तम! देख तो, तेरे बदन में ठीक से आता है या नहीं?"

उसने तत्काल ही कोट पहन कर प्रसन्नता से कहा "देख दादा! मेरे बदन में बहुत अच्छा हैठा! और इसमें तो भीतर भी जेब है। अब मेरी पेन्सिल न खोने पावेगी। माँ, देख तो कैसा अच्छा है।"

मेरे मुँह से ये सब बातें सुन कर माता गद्गद हो गई। उसने कहा श्याम! तू अवस्था में बडा नहीं और न पैसे की दृष्टि से ही अभी बड़ा बन सका है; साथ ही तेरी शिक्षा भी अभी अधिक नहीं हुई है, फिर भी तू मन से तो आज ही बड़ा बन गया हैं। बच्चों! यही प्रेम-भाव तुम जीवन भर रखना। हे भगवान, इस प्रेम-भाव पर किसी की नजर न लगे।"

पिताजी ने भी प्रेम-पूर्मक मेरी पीठ पर हाथ फेरते हुए मन ही मन आशीर्वाद दिया। उनके उस हाथ फिराने में ही सारा उपदेश था, समस्त स्तुतियां थीं।

इसके बाद पुरुषोत्तम ने पूछा "माँ, इसे कुँकुम् लगाऊं?"

इस पर उसने कहा "बेटा, इसे अभी तो तह कर के रख दे। सबेरे कुंकुम लगा कर देवता को प्रणाम करने के बाद पहनना। यह नया कोट पहनकर गणपति लेने को जाना।"

३२ लाड़घर का तामस्तीर्थ

राजा को आज घर लौट जाना था। उसे इस बात के लिए खेद हो रहा था कि, श्याम की माता की समस्त स्मृतियां सुनने का अवसर उसे न मिल सका। किन्तु कर्तव्य अत्यंत कठोर-धर्म होता है। कर्तव्य-पालन के लिए समस्त मोह छोड़ देने पड़ते हैं। अच्छी बातों का मोह भी त्यागना पड़ता है। मोह केवल बुरी बातों का ही नहीं होता, अच्छी बातों का भी मनुष्य को मोह हो जाता है।

"श्याम! अब हम फिर कब मिल सकेंगे? तेरी रसभरी वाणी फिर कब सुनने को मिलेगी? भाई! तू माता के जो संस्मरण सुनाता है, वे साधारण-से होने पर भी उन में तू सुन्दर धर्म, अपूर्व उपदेश

ग्रथित कर देता है। भगवान कृष्ण के छोटे से मुँह में जिस प्रकार यशोदा को सारा संसार दिखलाई दिया, उसी प्रकार तेरी इन छोटी-छोटी कहानियों में भी धर्म और संस्कृति का विशाल दर्शन होता है। श्याम! कल मैंने राम से यही कहा था कि यह कथा-मय धर्म है, या ये धर्ममय कथाएँ हैं। और सचमुच ही तू इन कहानियों के रूप में धर्म का उपदेश करता है; अथवा यों कहें कि धर्म-मयी कहानियाँ सुनाता है। इनके द्वारा तू यह बतला देता है कि हमारे नित्य के सामान्य जीवन में भी हम कितना आनन्द और कहां तक की सहृदयता ला सकते हैं! क्यों, यह बात ठीक है नें? जीवन के इस मार्ग में भी सुख और संपत्ति का टोटा नहीं है। भाई-बहन के प्रेम, पशु-पक्षियों के प्रेम और प्राणिमात्र के प्रति प्रेमभाव रखने से जीवन समृद्ध, सुंदर और श्री-संपन्न किया जा सकता है। श्याम! तेरे संस्मरण सुनते-सुनते मैं कितनी ही बार तो रो पड़ा। उस रात को तू प्रेम का वर्णन करता था; और बतला रहा था कि प्रेम के लिए तू किस प्रकार लालायित हो उठा था। उस समय मैं भी गद्‌गद हो गया था। श्याम! अब कहां ऐसी बातें सुनने को मिलेंगी? तू तो मानों श्याम-सुन्दर कृष्ण की ही मुरली न बजाता हो! क्यों ठीक है नें?"

मैंने उसका समाधान करते हुए कहा "राजा, अतिशयोक्ति करने की तो तेरी आदत ही है। तेरा मुझ पर प्रेम है, इस लिए तुझे मेरी सभी बातों अच्छाई दीखती है। मुझ में तो केवल एक ही गुण है, और वह है अन्त-र्वेदना। इसी के कारण सारी बातें सुन्दर हो जाती हैं। जब मैं कीर्तन करता हूं तो संगीत-गायन की कमी को मैं अपनी उत्कटता और अन्तर्वेदना के द्वारा पूरा कर लेता हूं। राजा, मेरे पास और है ही क्या? कुछ भी तो नहीं; सचमुच कुछ भी तो नहीं। मैं यों ही बोलता हुआ ढेला हूं। काम तो सब तुम्हीं लोग करते हो। मैं तो कहानी सुनाता हूं, कथाएँ कहता रहता हूं। मैं निरा वाग्वीर हूं, जब कि तुम लोग प्रत्यक्ष कर्मवीर हो! राजाराम! मैं सच कहता हूं कि अब तक मन ही मन कितनी ही बार मैं अपना सिर तुम लोगों के चरणों में नवाँ चुका हूं। शिवराम, नामदेव, रामचंद्र आदि सब दिन भर कितना काम करते रहते हैं? तुम लोग जो भी मुझे

बड़प्पन दे रहे हो; तथापि मैं अच्छी तरह जानता हूं कि मेरे पास कुछ भी नहीं है। तुम पत्थर को सिन्दूर लगा कर प्रणाम कर रहे हो! ”

इतने ही में राम आ गया। उसके आते ही श्याम ने पूछा क्यों राम! क्या गाड़ी आ गई?'

राम ने कहा, “ नहीं। विचार बदल गया है। अभी न जाकर रात की गाड़ी से जाने का निश्चय हुआ है। दादाजी ने कहा कि आज रात का संस्मरण सुन कर ही जाएँगे। राजा, रात को ही जाना ठीक होगा। कोई अधिक देर न होगी। ”

“ जैसी ईश्वरेच्छा ,, राजा मे उत्तर दिया।

सायंकाल हो चला था। आकाश में अनंत रंगों की प्रदर्शिनी रची जा रही थी। लाल, नीले, पीले आदि सभी रंगों का सुन्दर सम्मेलन दिखाई दे रहा था। नदी-किनारे बैठे हुए श्याम और राजा बातें कर रहे थे। बोलते-बोलते दोनों चुप हो गये। वे एक दूसरे का हाथ थामे हुए थे; दोनों ने हाथ छोड़ दिये। ग्वाले गाय-भैंस चरा कर वापस लौट रहे थे। कोई भैंस की पीठ पर-बैठा हुआ था तो कोई अलगोंजा बजा रहा था।

थोड़ी ही देर में राजा ने कहा “ श्याम! चलो अब लौट चलें!”

“ राजा! ऐसा सुन्दर सृष्टि-दर्शन होने पर तो यही इच्छा होती है कि, अब कहीं जाने की अपेक्षा यहीं बैठे रहें और सृष्टि में मिल जावें। सृष्टि के मूक किन्तु महान् सिन्धु में अपने जीवन-रूपी बिंदु को मिला दें। ” इस प्रकार बोलते हुए श्याम के होट थर्रा रहे थे। उस समय श्याम मानों मूर्तिमान भावना और मूर्तिमान उत्कटता के रूप में था।

अन्त को दोनों मित्र लौट आये। आश्रम की चांदनी (छत) पर लोग इकट्ठे होने लगे। उधर आकाश-रूपी छत पर एक एक तारा चमकने लगा; और थोड़ी ही देर में सारा आकाश खिल उठा। इधर आश्रम की छत भी एक-एक कर के मनुष्यों से पूरी भर गई। प्रार्थना आरंभ हुई और बीस मिनट में समाप्त हो गई। इसके बाद भी क्षण-भर के लिए सब लोग आँखें बंद किये बैठे रहे। श्याम ने अपनी कहानी सुनाना आरंभ किया:—

“ हमारे बचपन में जब कि माता के शरीर के जोड़ों में दर्द होता था, तब ‘ लाडघर ’ की देवी की मनौती की गई थी। दापोली ताल्लुके में समुद्र-

किनारे लाड़घर नामक एक सुन्दर किन्तु छोटा-सा गाँव है। कहां ताम्रतीर्थ है ! अर्थात् लाड़घर के पास ही एक जगह समुद्र का पानी लाल या ताम्र-वर्ण का दिखाई देता है, इसी कारण उसे ताम्रतीर्थ कहते हैं। हां, तो देवी की वह मनौती पूर्ण करने का कई दिनों से विचार हो रहा था। माता के शरीर के जोड़ ठीक हो चुके थे। जो भी वह पहले की तरह सशक्त तो नहीं रही थी; किन्तु फिर भी वह चल-फिर सकती थी। घर का सब काम कर लेती थी। लाड़घर की उस देवी के सम्मुख लकड़ी की पुतली; और लकड़ी का ही बना हुआ कुंकुमादि रखने का पिटारा, खन् (चोली का कपड़ा) और नारियल आदि पदार्थ भेंट-स्वरूप रखने पड़ते थे। यह मनौती पूरी करने के लिए माता पालगढ़ से दापोली आने वाली थी; और यहां से मैं उसे लेकर लाड़घर जाने को था। यह सब निश्चय पहले ही हो चुका था।

इसी लिए मैं प्रतीक्षा कर रहा था कि माता कब यहां आती है। वह बेचारी कई वर्षों के बाद पालगढ़ से बाहर जा रही थी। पिछले बारह वर्षों से वह गाँव के बाहर तक नहीं निकल पाई थी। न कभी हवा पानी का बदला हुआ, और न स्थानान्तर ही किया। आखिर एक दिन माता दापोली आ पहुँची; और मैंने लाड़घर जाने के लिए गाड़ी किराये पर की। प्रातःकाल वहां जाने का निश्चय हुआ। दापोली से लाड़घर तीन कोस दूर था। तीन घंटे का रास्ता था।

प्रातःकाल मुर्गा बोलते ही माता जग पड़ी। मैं भी उठ खड़ा हुआ। गाड़ीवान ठीक समय पर आकर पुकारने लगा। मैंने सब सामान उठाया और माता के साथ जाकर गाड़ी में बैठ गया। लाड़घर में हमारी दूर के रिश्ते में एक फुफेरी बहन रहती थी। उसीके घर ठहरने का हमने निश्चय किया, और सोचा कि सबेरे सात-आठ बजे तक वहां जा पहुँचेंगे।

गाड़ीवान ने गाड़ी चलाई और बैल भी बढ़ चले। वे बड़े आनन्द से चले जा रहे थे। प्रभात का शान्त समय था। कृत्तिका का सुन्दर नक्षत्र पुंज आकाश में चमक रहा था। बैलों के गले में बँधी हुई घंटी की आवाज उस शान्त-प्रभात में अत्यन्त आल्हादकारक जान पड़ती थी। ऐसा प्रतीत होता था, मानों सृष्टि-मंदिर में प्रभात का घंटा-नाद ही न हो रहा हो!

फूल खिल रहे थे और सीतल, मंद वायु बह रही थी। पक्षी-गण गा रहे थे, मानो सृष्टि-मंदिर में आरती हो रही हो।

गाड़ी में मैं और माता केवल दोही व्यक्ति थे। मैं और माता, अथवा माता और मैं, केवल दोनों ही थे। हमारा एक दूसरे पर घनिष्ट प्रेम था। मेरी अवस्था चौदह-पंद्रह वर्ष हो जाने पर भी माता के लिए मैं बच्चा ही था। मैं उसकी गोद में सिर रख कर लेटा हुआ था, क्योंकि गाड़ी बड़ी थी। उसमें खूब जगह थी। माँ की गोद में सिर रख कर मैं सो गया। माँ मेरे नेत्रों और सिर के बालों पर प्रेम-भरा हाथ फिरा रही थी। थोड़ी ही देर में उसने पूछा "श्याम! तेरी यह चोटी कितनी सूखी और मैली है! क्या कभी इसमें तैल आदि नहीं लगाता?" किन्तु मेरा ध्यान उस ओर जरा भी न था। मैं सुख-पूर्वक सो रहा था।

सुख निमग्न होता है जब मन। प्रेम-नीर बर्साते लोचन॥*

इस प्रकार की अवस्था का मैं अनुभव कर रहा था। माता और मैं, हमने कभी एक-साथ यात्रा नहीं की थी। इतनी स्वतंत्रता और खुले हृदय से हम कभी कहीं घूमे-फिरे नहीं थे। माता और मैं। हां, हम दोनों की ही उस समय दुनियाँ थी। मेरे मन में अनेक प्रकार के सुख-स्वप्नों की सृष्टि हो रही थी। मैं बड़ा हो कर, पढ़-लिख कर अच्छी नौकरी करूंगा; और माता को किसी बात का कष्ट न पड़ने दूंगा; उसे सुख के स्वर्ग में रक्खूंगा, इत्यादि अनेक प्रकार के संकल्प मेरे मन में उत्पन्न हो रहे थे। क्योंकि मनोरथ-रूपी शिखर निर्माण करना और उन्हें ढहाना चंचल मन का स्वभाव ही होता है।

मुझे चुप देख कर माता ने कहा "श्याम! बोलता क्यों नहीं, रे! क्या अभी तेरी नींद पूरी नहीं हुई!"

मैंने कहा "नहीं माँ, तेरी गोद में चुपचाप मैं लेटा रहूं, और तू प्रेमभरी-दृष्टि से मेरी ओर देखती रहे, मेरे शरीर पर स्नेह का हाथ फिराती रहे; इससे अधिक मुझे कुछ नहीं चाहिए। माँ, तू थोडी देर मेरी पीठ थपथपा। मेरी यही इच्छा रहती है कि सदैव तेरी गोद में बच्चा ही बना

---

* सुखावले मन। प्रेमें पाझरती लोचन॥

रहूं। जरा मेरी पीठ थप्थपा कर लोरी सुना"। मेरे इन अनुरोध को सुन माता सचमुच ही मेरी पीठ थप्थपाने और लोरियां गाने लगी। वन के पक्षी कलरव करने लगे थे। दापोली से लाड़घर तक दोनों और घना जंगल है। यहां तक कि मार्ग में सूर्य का प्रकाश भी नहीं आ सकता। एक स्थान पर ऊपर पहाड़ पर से झरने का पानी रास्ते में गिरता रहता है। वह दृश्य बड़ा ही सुन्दर और मन को मुग्ध कर लेने वाला है। काजू, आम, कटहल, बड़, पायरी, करंज आदि अनेक प्रकार के वृक्ष रास्ते के दोनों ओर खड़े हैं। उस समय इन वृक्षों पर अनेक प्रकार के पक्षी-गण इधर-उधर विचरने और गाने लगे थे। सृष्टि जाग्रत होना चाहती थी किन्तु मैं अपनी माता के गोद में उस समय भी सोने का प्रयत्न कर रहा था। यद्यपि मुझे नींद नहीं आ रही थी; फिर भी मैं आँखे बद किये हुए पड़ा था। संसार के उठने का समय था, परन्तु मेरी माता मुझे सुला रही थी। माता ने लोरियां गाते-गाते नीचे लिखी लोरी सुनाई। कभी-कभी वह खुद भी लोरिया रच कर गाया करती थी। इसका पता मुझे पहले से था। इस बार भी वही बात हुई। उसने गाया—

इस घनघोर विपिन में, बहती निर्मल जलधारा।
त्यों ही प्रभुमय जीवन हो, प्रिय श्याम बाल का सारा॥*

माता की इस लोरी को सुनते ही मैं एकदम उठ खड़ा हुआ। क्या मैं उस धुआँधार बहने वाले झरने को देखने के लिए उठा था?

माता ने पूछा "क्योंरे, इस प्रकार एकदम कैसे उठ बैठा? क्या पड़े-पड़े उकता गया? सो जा श्याम, तेरे सोने से मेरी गोद नहीं दूख सकती!"

मैंने कहा "माँ, जब अपने श्याम के जीवन को तू प्रभुमय बना रही है, तब मैं कैसे सो सकता हूँ? जीवन में प्रभु का आगमन होने का अर्थ है जाग्रति उत्पन्न होना। क्योंकि परमात्मा सबको जाग्रति प्रदान करता है। क्या सूर्य-नारायण संसार को चैतन्य प्रदान नहीं करता?"

---

* **घनदाट या रानांत। धो-धो स्वच्छ वाहे पाणी।**
माझ्या श्यामाच्या जीवनीं। देव राहो॥

दूर से समुद्र की गर्जना सुनाई दे रही थी। जंगल समाप्त होते ही दूरी पर उमड़ने वाला सागर दिखाई देने लगा। संसार-रूपी जंगल के पास ही परमात्मा के आनन्द का समुद्र अपरंपार हो कर लहराता रहता है। संसार से थोड़े ही बाहर जाइये कि आपको इस ईश्वरीय आनन्द का दर्शन होगा।

वहीं से कुछ दूरी पर सुन्दर और दर्शनीय लाड़घर गाँव दिखाई देने लगा। थोड़ी ही देर में हम गाँव में जा पहुँचे। रास्ते के प्रत्येक बगीचे में बैलों के रहँट चल रहे थे। वृक्षों को पानी पिलाया जा रहा था। चर्खियों का कुऊं कुऊं आवाज सुनाई दे रहा था। बैलों के पीछे छोटी-सी छड़ी या रस्सी के टुकड़े लेकर हाँकने वाले लड़कों के शब्द भी सुन पड़ते थे। पानी के पाट-नाले-बगीचों में बह रहे थे। सुपारी, नारियल, अनन्नास, केले आदि को पानी दिया जा रहा था। प्रत्येक घर के आस-पास, सुपारी, नारियल आदि को उपवन बने हुए थे। इस प्रकार वह गाँव अत्यन्त सुन्दर और सुख-सम्पन्न जान पड़ता था। स्वच्छ और समृद्ध विपुल जल एवं सुन्दर वायु। फल-फूल की रेलछेल, घनी झाड़ी। इस प्रकार वहां सृष्टि की पूर्ण समृद्धि दिखाई देती थी।

हमारी गाड़ी गाँव में हो कर जा रही थी। किन्तु हमें यह पता नहीं था कि बहन का घर कहां है; इस लिए पूछते हुए जा रहे थे। मार्ग में लड़कों की पाठशाला थी। अतः वे सब हमारी गाड़ी की ओर देखने लगे। कोई भी नई गाड़ी या नया पशु-पक्षी अथवा नवीन मनुष्य या अपरिचित वस्तु दृष्टिगोचर होते ही लड़कों की जिज्ञासा जाग्रत होती है।

थोड़ी ही देर में हमें सुमति बहन का घर मिल गया। गाड़ीवान नें गाड़ी खोल दी और बैलों को बाँध कर घास डाल दिया। हम घर में गये। सुमति जीजी को इससे पहले मैंने कभी देखा नहीं था। माता नें भी उसे कई वर्ष बाद देखा था। मेरी माता अवस्था में सुमति जीजी से बड़ी थी; इस लिए वह उसकी बड़ी लड़की के समान दिखाई देती थी।

माता को एकदम आते देख-कर जीजी तो चकित ही रह गई। उसने आओ, भाभी, आज कितने बर्षों के बाद हमारी भेंट हुई।" इस

प्रकार मधुर शब्दों में हमारा स्वागत किया। और मेरी ओर देख कर पूछा " यह कौन है भाभी ! "

माता ने कहा " सुमति, यह श्याम है। बचपन में हठ करने और सबसे लड़ने-झगड़ने वाला यही तो है। तूने इसे नहीं पहचाना ? "

यह सुन जीजी ने कहा " अरे, तू तो बहुत बड़ा हो गया ! क्या अंगरेजी पढ़ता है ? "

मैंने कहा " हां, मैं आज-कल चौथी क्लास में हूं। "

उस प्रेम मय हरे-भरे घर में पहुंच कर हम एकदम घर के जैसे ही हिल-मिल गये। सुमति जीजी ने कहा "भाभी, तुम अभी जाकर समुद्र में स्नान कर आओ, जिससे कि दस-ग्यारह बजे तक लौट आओगी। दो-पहर को भोजनादि हो जाने पर हम सब देवी के दर्शनार्थ चलेंगे। इस तरह शाम को वापस आकर तुम्हें दापोली लौट जाने में सुविधा रहेगी। मैं चाहती तो अवश्य हूं कि तुम कुछ दिन यहां रहो। इतने वर्षों बाद आई हो तो कमसेकम आठ दिन तो रहो; इससे मेरी आत्मा बहुत सुखी होगी। ससुराल में रह कर मैं नैहर का सुख अनुभव कर सकूंगी। क्या, भाभी ! मेरी बात स्वीकार करोगी ? "

" सुमति, यह गाड़ी आने-जाने के किराये पर लाई गई है। साथ ही वहां भी तो घर पर कौन है ? छोटे बच्चों को वहीं छोड़ आई हूं। श्याम भी स्कूल से छुट्टी ले कर नहीं आया। इस लिए इतने वर्षों बाद हमारी परस्पर भेट हो सकी, यही बहुत बड़ी बात समझना चाहिए। अच्छा, तो हम अभी समुद्र पर स्नान कर आते हैं। " इस प्रकार माँ ने कहा।

हमने पहनने के लिए कपड़े साथ लिए और हमारे बहनोई साहब साथ चले। गाड़ी जोड़ी गई और हम फुर्ती के साथ चल दिये। समुद्र निकट ही था और किनारे के पास ही हो कर रास्ता था; क्योंकि हमें तामस्तीर्थ पर जाना था। मैं बराबर समुद्र की ही ओर देख रहा था। मानों अपने छोटे छोटे नेत्रों-द्वारा उसे पी जाना चाहता था। विस्तृत सागर, अनन्त सिंधु, जिसका न अन्त था न पारावार। नीचे नीले पानी वाला समुद्र और ऊपर नीला आकाश-रूपी समुद्र था।

गाडी ठीक स्थान पर पहुँचते ही हम सब नीचे उतर पड़े। बहनोई (जीजा) ने हमें स्नान करने का स्थान बतलाया। वहां समुद्र की लहरें यथार्थ में कुछ लाल रंग की ही उठ रही थीं। वहां की बालू (रेती) भी किंचित् लाली लिए हुए देख पड़ती थी। मैंने जीजा से पूछा " यहां का पानी लाल रंग का क्यों है ? "

उन्होंने कहा " ईश्वर का चमत्कार ही समझिये, और क्या कहा जा सकता है ? "

किन्तु माता ने कहा " यहा परमात्मा ने राक्षसों का वध किया होगा; इसीसे यहा का पानी लाल हो गया है। "

यह सुन हमारे जीजा साहब बोले " हां, ऐसा अनुमान भी किया जा सकता है ! "

मेरी माता की दृष्टि में सर्वत्र ईश्वर का ही हाथ, उसी का अंश दिखाई देता था। प्रत्येक कार्य में वह परमेश्वर का उद्देश और उसी का कार्य भी देखती थी। शास्त्रज्ञ कार्यकारण-भाव देखते हैं, किन्तु मेरी माता ईश्वर को ही देखती थी।

लंगोटी लगा कर मैं समुद्र में घुस पड़ा और छोटी-छोटी लहरों के साथ खेलने लगा। किन्तु मैं बहुत आगे नहीं बढा था। क्योंकि मैं समुद्र के विषय में अधिक जानकर नहीं था। माता भी घुटनों से कुछ आगे गहरे पानी में बैठ कर स्नान करने लगी। समुद्र अपने सैकड़ों हाथों से हल्के-हल्के गुद्-गुदाने के लिए, हँसता खेलता बढ़ा आ रहा था। पैरों के नीचे की रेती लहर के वापस जाते ही खिसक जाती थी। हम माँ-बेटे ईश्वर के कृपा-समुद्र मे स्नान कर रहे थे। पानी खारा होने पर भी तीर्थ जल-होने के कारण माता ने उसे थोड़ा-सा पिया और मुझे भी पिलाया। इसके बाद माता ने पुष्प, हल्दी, कुंकुम आदि से समुद्र का पूजन किया। एक चवन्नी भी दक्षिणा-रूप से समुद्र में फैंकी। जिस सागर के गर्भ मे मोतियों के अगणित ढेर भरे पड़े हैं; उस रत्नाकर को माता ने चार आने भेट किये! किन्तु वह केवल कृतज्ञता ही थी। जिस प्रकार कि चंद्र-सूर्य का निर्माण करने वाले परमात्मा को भक्त रुई की छोटी-सी बत्ती का दीपक दिखलाता और कपूर की डली से उसकी आरती उतारता है। अर्थात अपने अंतःकरण

की कृतज्ञता को किसी प्रकार के बाह्य चिन्ह-द्वारा व्यक्त करने के लिए मनुष्य निरन्तर प्रयत्नशील रहता है। तब क्या उस अनन्त सागर को देख कर किंचित् त्याग-बुद्धि सीखने की हमारे लिए आवश्यकता नहीं थी ?

सूखे कपडे पहन कर हम फिर गाडी में सवार हो गये और थोडी ही देर में घर आ पहुँचे। किन्तु उस समय बारह बजने आ गये थे और पेट में जोरों की भूख लग रही थी। इधर सुमति जीजी ने पकवान बना कर तैयार ही रखी थी। क्योंकि जीजाजी का स्नान सन्ध्या, देव पूजन आदि प्रातःकाल ही हो जाता था। इसके बाद वे बगीचे के काम में लग जाते थे।

हां, तो हम झटपट भोजन के लिए बैठ गये। भोजन अत्यन्त सादा होने पर भी स्वादिष्ट था। सुमति जीजी ने इतने समय में ही हमारे लिए खाण्डवी नामक मीठा पदार्थ भी बना लिया था। नारियल का अंगरस और गोले की चटनी भी बनाई थी। प्रत्येक वस्तु में नारियल की गिरी का स्वाद आ रहा था। बैंगन और उसमें मूली की फलियां (सागर) मिला कर शाक बनाया गया था। वह बहुत ही बढ़ियां था। घर का ही मक्खन से निकला घी भी था।

भोजन समाप्त होते देख माता ने कहा " श्याम ! कोई अच्छा-सा श्लोक तो सुना! " इसपर मैंने "केयूरा न विभूषयन्ति पुरुषं" वाला श्लोक सुनाया। मेरे जीजा को यह श्लोक बहुत पसंद आया ! वे पूछने लगे " अंगरेजी स्कूल में पढ़ने पर भी श्लोक सुनाते में तू नहीं शर्माता, यह बडे सन्तोष की बात है ! नहीं तो आज कल के लड़कों को चार श्लोक भी अच्छी तरह याद नहीं होते ! क्लास में तेरा नंबर कौनसा है श्याम ?"

मैंने कहा " दूसरा ! " यह सुन वे और भी प्रसन्न हुए और कहने लगे "शाबाश" तू बहुत होशियार लडका जान पड़ता है ! "

सुमति जीजी का एक पांच वर्ष का लड़का और दो ढाई वर्ष की लड़की थी। वह भानजा मधुकर भी जीजा के साथ भोजन कर रहा था; अतएव मेरे मुँह से श्लोक सुन कर उससे भी एक अच्छा-सा श्लोक कहा।

परोसते हुए जीजी ने कहा " श्याम ! शर्माना मत, खाण्डवी भी और लेना ! जो तुझे अच्छी लगे वही चीज परोसूंगी हो श्याम ! "

यह सुन माता ने हँसते हुए कहा "अरे, श्याम तो वैसे ही

ससारभर मे ज्यादा भीरु और शर्मीला है। किन्तु श्याम, यहा शर्माने की आवश्यकता नहीं है।" भीतर की ओर मेरी माता भी भोजन कर रही थी, उसमे जीजी ने कहा "भाभी, तुम धीरे-धीरे भोजन करो। इन्हे भले ही भोजन हो जाय तो उठ कर जाने देना।"

भोजनादि हो जाने पर जीजी ने कच्ची दूधियां सुपारी काट कर माता को दी। यद्यपि मैं सुपारी नहीं खाता था; फिर भी उसमे का दूध वाला अश मैंने खुरच कर मुह में डाल ही लिया। जीजी और माता ने चौका-बर्तन किया। इसके बाद दोनो जरा लेट कर बातें करने लगी। इधर तब तक मैं भानजे को साथ लेकर उनके घर के बगीचे मे चल दिया। मैं वहां का तमाशा देखने लगा। कितनी ही केलों में फल लटक रहे थे। जहां-तहां उसके फूल की पंखुरियाँ बिखर रही थी। यद्यपि केले के फूल और कलियों की चटनी बनाई जाती है। किन्तु जहां उनकी विपुलता होती है, वहां कौन पूछता है? केल के फूलों की एक एक कली चटक रही थी और केलों के गुच्छे बाहर निकल रहे थे। अमरूद के वृक्ष पर तो मैं चढ़ भी गया। उसपर एक सुग्गा (तोता) बैठा हुआ था, और उसने एक अच्छे अमरूद को चोंच से कुतर डाला था। हमने उसे नीचे गिराया और दोनों खा गये। इतने ही मे जीजी ने मुझे आवाज दी और हम दोनो घर में चले गये।

"श्याम! उस पपनस के पेड पर से दो-तीन फल तोड़ कर ले आ तो! उनमें से दो तो अभी यहां फोड़ेंगे; और एक साथ ले जाना जो रास्ते मे गाड़ी में तेरे लिए खाने को हो जायगा।" इस प्रकार उसने कहा।

मैंने पूछा "कहां है वह वृक्ष?" यह सुन झट् से मधुकर बोल उठा "चलो, मैं बतलाया हू।" इसके बाद वह मेरा हाथ पकड़ कर खींचने लगा। उस वृक्ष पर पीली-पीली पपनस नारियल के आकार की लटक रही थी। हमारे घर में भी पपनस का एक पेड़ था; किन्तु उसपर इतने बड़े फल नहीं आते थे। मैंने तत्काल ही उस पेड़ पर चढ़ कर तीन पपनस तोड़ लिये, और उन्हें लेकर हम घर में गये। इसके बाद मैंने धीरे से कहा कि "जंगल मे जब हम देवी के पूजन के लिए जावे, तब वहीं क्यों न ये फल काम मे लाये जायँ? वन में खाने-पीने का आनन्द और ही होता है।" यह सुन सुमति जीजी ने कहा "अरे, वहां तो हम दूधिया

नारियल और पौवे खाएँगे; पपनस तो यहीं छील कर खाना ठीक होगा।" फलतः पपनस की फांके निकाल कर हम सबने खाई! गाड़ीवान को भी दीं। सचमुच ही वह बड़ा मधुर फल था।

थोड़ी ही देर के बाद देवी के दर्शनार्थ जाने का समय हो गया। मैंने गाड़ीवान से तैयार होने को कहा; और सुमति जीजी, उसके दोनों बच्चे, मैं और माता हम सब गाड़ी में जा बैठे। गाडी तो बहुत बड़ी थी ही। गाँव से बाहर टेकड़ी के किनारे देवी का स्थान था। वहां जाकर माता ने देवी की पूजा की। लकड़ी की पुतली, सौभाग्य पिटारी और चूडियां उसके चरणों में अर्पण कीं और खन (वस्त्र) नारियल से उसकी गोद भरी। सबने सिर पर विभूति लगाई। माता ने कागज के टुकड़े में थोड़ी-सी विभूति घर ले जाने को बाँध ली। इसके बाद हमने वन-भोजन किया। नारियल, पौवे, गुड़ तीनों के संयोग से उस वन भोजन में बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ। वैसे भी जगल मे तो हमेशा ही आनन्द प्राप्त होता है। चित्त में प्रसन्नता और उल्लास एवं मुक्तता का अनुभव होता है। वहां घर की दीवारें नहीं होतीं; वहां तो विशाल सृष्टि के विराट् गृह मे हम रहते हैं। वहां संकुचितता रहने ही नहीं पाती।

देवी को प्रणाम कर के हम घर लौटे; क्योंकि उसी समय हमें दापोली वापस लौट जाना था। वहां से रात ही को माँ गाड़ी-द्वारा पालगढ़ जाने वाली थी। अतः हमने चलने की तैयारी की। मैंने जीजी और जीजा को प्रणाम किया।

चलते समय सुमति जीजी ने कहा "श्याम! तू तो दापोली में यहां से पास ही रहता है। किसी रविवार को यहां भी आ जाया कर। पालगढ़ तो इतनी दूर भी है, परन्तु यह तो पास ही है, छुट्टी में घर-(दूर) न जाकर यहीं आ जाया कर। समझ गया मेरी बात।"

इसके बाद जीजा ने कहा "अवश्य आना हो श्याम। हम कोई पराये नहीं हैं। इसी तरह आने-जाने से परिचय रहता है। जरूर आना समझे।"

मैंने स्वीकृति-सूचक गर्दन हिलाई और देवता को सुपारी भेट रख कर प्रणाम किया। सुमति जीजी ने कुछ कच्ची सुपारियां और दो-तीन

प्रकार के मीठे दूध भरे नारियल घर ले जाने को साथ दिये। दो पनस भी दे दिये।

"अच्छा, सुमति! अब मैं जाती हू।" यों कह कर माता बिदा होने लगी।

जीजी ने भरे हुए कठ से कहा "भाभी, अब फिर कब भेट होगी?"

माता बोली "बाई, यह तो ईश्वर ही जान सकता है कि हम फिर कब मिल सकेंगी। क्योंकि बारह वर्ष के बाद आज मैं थोड़ी-सी देर के लिए पालगढ छोड़ कर बाहर निकल सकी हू। और मैं जाती भी कहां! ले दे कर मेरे दो भाई बंम्बई और पूना मे हैं, उनके यहां जा सकती थी। परन्तु उनकी भी तो गृहस्थी है। उन्हे भला क्यों कर बहन की याद आ सकती है? सुमति, पिछले पांच-सात वर्ष से शीतज्वर बराबर मेरे पीछे पड़ा हुआ है। जब बुखार आ जाता है तो बिस्तर पर पड़ जाती हूं; और पसीना आकर जब बुखार निकल जाता है तो फिर उठ कर काम में लग जाती हूं। घर में दुसरा है ही कौन? भगवान गरीब को कभी किसी प्रकार का दुःख या रोग न दे। वह उसके लिए पाप या शाप रूप हो जाता है। जीभ को अब कोई स्वाद ही नहीं रह गया है। अद्रक का टुकड़ा और नीबू की फाँक मिलाकर किसी प्रकार दो-चार ग्रास गले के नीचे उतार लेती हूं। अस्तु। जैसी परमात्मा की इच्छा। हम मानव-प्राणी और ही क्या कर सकते हैं! जो कुछ संकट सामने आवे उसे भोगना; और जैसे-तैसे दिन गुजराना इतना ही हमारा काम है। और यह बात कही भी किससे जाय? किसके आगे अपना दुःख-भार हल्का किया जाय? इतने वर्ष बाद तुझसे भेट हुई तो तेरा प्रेममय स्वभाव देख कर मैंने इतनी बाते भी कर लीं! तू भी तो मेरी चंद्रा जैसी ही है। उसीके साथ खेली है। तुझे मैंने स्नान कराया और बहुत छोटी अवस्था में तेरे लिए परकर (घघरिया) आदि भी मैंने सिये हैं। तू मेरी ही है; इसी लिए तेरे सामने थोड़ा-सा जी हल्का कर लिया। जरा-सा दुःखभार हल्का होने से चित्त को शान्ति मिलती है। संसार में अपनी दुःखकथा सुनाने से दूसरों की सहानुभूति प्राप्त होती है, इससे चित्त को सन्तोष होता है। परन्तु मैं किसीसे भी कुछ नहीं कहती। केवल उस परमात्मा से ही अपनी

दुःख-गाथा निवेदन करती रहती हूं।" यों कहते-कहते माता की आँखों में आँसू आ गये। जीजी ने भी अपने आँसू पोंछे।

इसके बाद जीजी ने कहा "भाभी, अब मधु के यज्ञोपवीत-संस्कार में तुम यहां अवश्य आना। जीवन से इस तरह निराश मत हो जाओ, भाभी! श्याम आदि को कुछ बड़े होने दो। फिर तो ये सब कमाने लगेंगे; और तुम्हारे लिए किसी बात की भी कमी न पड़ने देंगे। तुम्हारे लड़के सब अच्छे हैं, यही ईश्वर की सब से बड़ी कृपा समझो।"

माता ने कहा "हां बाई, यही सन्तोष है। छुट्टी में श्याम जब घर आता है तो मेरे प्रायः सभी काम करने लगता है; साथ ही स्कूल में भी उसकी होशियारी की प्रशंसा होती है। जो कुछ भगवान करे सो सही। अच्छा, अब चलती हूं सुमति।" यों कह कर माता ने सुमति जीजी के दोनों बच्चों के हाथ में एक-एक रुपया दिया और चोली का कपड़ा जीजी को दिया।

रुपये देते देख कर जीजी ने कहा "भाभी, इसकी क्या जरूरत थी?"

किन्तु माता ने कहा "रहने दे सुमति, मैं अब कहां बारबार इन्हें कुछ देने आऊंगी? सुमति, तेरी भाभी अब धनवान नहीं है, समझी। रहने दे बच्चें के लिए रुपये!" यों कह कर उनकी पीठ पर हाथ फेरने के बाद माता वहां से चल दी।

हम दोनों माँ-बेटे फिर गाड़ी मे जा बैठे। गाड़ी चलने लगी। बैलों को घर लौटने की खुशी होने के कारण वे शीघ्रता से कदम बढ़ा रहे थे। किन्तु अब रास्ता चढ़ाई का था। उधर से आते हुए उतार होने से दौड़ कर चले आये थे, परन्तु अब चढाई में उनके लिए धीरे-धीरे चलना अनिवार्य था। गाँव से निकलने के बाद गाड़ी ठीक रास्ते पर लग गई।

संध्याकाल हो रहा था और इसी कारण सारा समुद्र ही तामस्तीर्थ बन गया था। वह बड़ा ही सुन्दर दृश्य था। सूर्य अस्ताचल को जा रहा था। अब आँखों से उसकी ओर देखा जा सकता था। वह इस समय एक लाल गोले की तरह दिखाई देता था। समुद्र उस थके-मांदे सूर्य को अपनी सहस्र तरंगो से स्नान कराने के लिए उत्सुक हो रहा था। थोड़ी ही देर मे सूर्य अस्त हुआ। वह लाल-लाल गोला समुद्र में विलीन हो गया। उस समय

सब हरा-हरा (जल-थल), नीले रंग का दिखाई देने लगा। रात-भर वह (सूर्य) समुद्र की गोद में विश्राम कर दूसरे दिन फिर ऊगने वाला था।

दोनों ओर घनी झाड़ी शुरू हो गई। बीच-बीच मे आकाश के तारे भी दिखाई दे जाते थे! रात के वक्त उस जंगल में हो कर जाते हुए बड़ी ही गंभीरता प्रतीत होती थी। झींगूर की झन्कार शुरू हो चुकी थी। दूर से समुद्र की गर्जना भी सुनाई देती थी। हम माँ बेटे गाड़ी में बैठे हुए उस गंभीर रात्रि में बातें कर के समय बिता रहे थे।

"माँ, फिर हम दोनों इसी प्रकार कब कहीं की यात्रा करेंगे? तेरे साथ तो मैं कभी कहीं नहीं गया। किन्तु अब इच्छा होती है कि मैं तेरे साथ भ्रमण करूं; और तेरे अटूट प्रेम को प्राप्त कर जीवन सफल बनाऊं।" इस प्रकार मैंने माता का हाथ अपने हाथ में लेकर पूछा।

उसने उत्तर दिया "तुम बड़े हो जाओ, तो फिर मैं तुम्हारे साथ जहां कहीं नोकरी करोगे, वहां चलूंगी। तब तुम मुझे पंढरपूर, नाशिक, काशी, द्वारका आदि सब तीर्थों की यात्रा करा लाना। तेरे दादाबा काशी की यात्रा कर चुके थे। ये (तेरे पिता) भी नाशिक-पंढरपूर हो आये हैं; किन्तु मैं कहा जाती और कौन ले जाता? आँगन की तुलसी के पास बैठना ही मेरे लिए काशी और पंढरपुर है। हमारे यहां कहावत है कि

काशी जावेंगे नित्य यही रटने से।
मिलता यात्रा का पुण्य, पाप कटने से॥*

तीर्थयात्रा में जाने की बाव करते रहने से भी वहां जाने का पुण्य प्राप्त हो जाता है। स्नान के समय शरीर पर पानी डालते समय 'हर गंगे' कहने से गंगा-स्नान का फल प्राप्त हो जाता है। विठ्ठल और विश्वेश्वर, गोदा और गंगा अपने आँगन में—अपने घर में ही हैं। गरीबों के लिए ही यह सुविधा की गई है। बेटा, हम कहां घुमने-फिरने जा सकते है? साहुकार के गुमाश्ते तो लगातार दर्वाजे पर धरना दिये बैठे रहते हैं। उस समय ऐसा प्रतीत होता है कि इस जीवन से तो मृत्यु ही भली। बस हुआ यह संसार! छोड़ो इस गृहस्थी के जंजाल को। किसकी तीर्थयात्रा और

---

* **काशीस जावें, नित्य वदावें। यात्रेच्या त्या पुण्या ध्यावें।**

कहां का गंगास्नान। अरे, यह संसार-यात्रा ही सबसे बड़ी यात्रा है। इस यात्रा से ही सौभाग्यचिन्ह लिये मर्यादा के साथ मेरे नेत्र मुँद जायँ तो मैं मुक्त हो जाऊंगी।" उस समय हम पहाड़ों से जोरों के साथ गिरने वाले पानी के झरने के पास पहुँच गये थे। उधर माता के नेत्रों से भी अश्रु-प्रवाह बह रहा था। उसके गालों पर से वह नीचे गिर रहा था; और उस पवित्र गंगा-यमुना के जल से मैं अपना अभिषेक करवा रहा था, मैंने अपना सिर माता के अचल में छिपा लिया था।

"माँ! तेरी तो हमें विशेष-रूप से आवश्यकता है। तेरे विना हमारा है ही कौन? सचमुच हमारा कौन है? मैं तेरे लिए ही तो पढ़-लिखा रहा हूं। यदि तू न हो, तो मैं किसके लिए पढूं-लिखूं? किसके लिए जीता रहूं? माँ, तुझे ईश्वर कदापि नहीं ले जा सकता।" यों कह कर मैंने माता को जोरों से पकड़ लिया। मानों उसी समय मृत्यु उसे ले जाने को आ गई थी; और इस लिए मैं उसे जोरों से पकड़े हुए था।

यह देख माता ने कहा "ईश्वर जो कुछ करता है, सब अच्छे ही के लिए करता है। तुम अच्छे बनो, इसीमें तुझे सब प्रकार संतोष होगा।"

अब गाडी में सब चुप थे। मैं बड़े ही भक्तिभाव और प्रेमपूर्वक, कृतज्ञता एवं समस्त कोमल भावनाओं के साथ माता की गोद में सिर रखे हुए लेटा था। थोड़ी ही देर के बाद मैंने फिर कहा "माँ, तू बचपन में मुझे एक कहानी सुनाया करती थी कि, 'एक भिखारी का लड़का अपनी झोली में के चार दानें रात के वक्त रास्ते में डाल देता और प्रातःकाल उन दोनों से सोने का एक सुन्दर पेड़ बन जाता।' सो माँ, हमारा भी उसी तरह सब कुछ अच्छा ही होगा। हमारी गरीबी दूर होगी; और फिर हमें अच्छे दिन देखने मिल सकेंगे।"

माता ने कहा "श्याम! ईश्वर के लिए कठिन बात ही क्या है? वह रात को दिन कर सकता है और विष को अमृत बना सकता है। क्या उसने अपने मित्र सुदामा की नगरी को स्वर्णमयी नहीं बना दिया? किन्तु हम ठहरे साधारण संसारी-प्राणी। हममें कहां वह योग्यता है!"

इस पर मैंने पूछा "तो माँ, ईश्वर की कृपा तो हमेशा ही रहती है न! गरीबी आ जाने या अपमान होने अथवा दुःख-कष्ट

भोगने पर भी उसे ईश्वर की कृपा ही समझनी चाहिए, यह बात जो कही जाती है, क्या वह ठीक है ?"

"बेटा, तेरी अज्ञान माता इन सब बातों को नहीं समझ सकती। मैं तो केवल इतना ही जानती हूं कि 'ईश्वर जो कुछ करता है, सब अच्छे ही के लिए करता है।' मैंने बचपन में जब कभी मारा-पीटा भी तो केवल तेरे भले ही के लिए। फिर मुझ से तो वह परमात्मा कई गुना अधिक दयालु है; उसी पर विश्वास रखना चाहिए। भले ही वह विष का प्याला दे या अमृत का, उस पर अचल श्रद्धा रहनी चाहिए।" इस प्रकार माता मानो मुझे श्रद्धोपनिषद ही सुना रही थी।

एकदम मेरा ध्यान सामने की ओर गया; और मैंने घबराये हुए स्वर में कहा "बाघ! माँ, बाघ (शेर)!" उसके वे चमकीले नेत्र और भीषण मुद्रा! उनकी वह ऐंठ; सब देखते ही बनती थी। वह दाहिनी ओर की झाड़ी में से निकलकर बायीं ओर घुस गया। जिस प्रकार रंगमच पर कोई नट आता और चला जाता है, वही बात उसने भी की। तो क्या वह हम माँ-बेटे की स्नेहमयी बातें सुनने के लिए आया था? अथवा क्या ईश्वर की करुणा-दया का विश्वास कराने को उधर से निकला था? मेरी माता के साथ पशु-पक्षी तक प्रेम का बर्ताव करते थे। गाय-भैंस और उनके बछडे तथा बिल्ली तक उसके साथ प्रेमभाव प्रकट करती थी। बिल्ली की बात मैं अंत में जाकर सुनाऊंगा। बिल्ली को बाघ की मौसी कहते हैं। अतः जब मेरी माता के साथ बिल्ली प्रेम करती है; तो फिर बाघ क्यों न करेगा? वह मेरी माता का दर्शन करने आया था। क्रूरता छोड़कर नम्र-भाव से उसे वंदन (प्रणाम) करने के लिये ही आया था।

धीरे-धीरे हम दापोली जा पहुँचे। दूर के दिये टिमटिमा रहे थे। रात को नौ बजे हम घर पहुँच गये। देर हो जाने से माँ उस रात को वहीं ठहर कर दूसरे दिन पालगढ गई।

मित्रो! वह दिन और रात मेरे जीवन में अमर हो गये हैं। उसके बाद मैं फिर कभी अपनी माता के साथ कहीं नहीं गया! वह केवल एक ही दिन, उस एक ही दिन के लिए मैं अपनी माता के साथ प्रकृतिमाता के—समुद्र और बनराजी के सहवास में रह सका। दोनों उसमे रँग गये, प्रेम

में डूब गये, हृदयों को हृदय में उँडेल दिया। उस दिन के बाद मेरी माता के जीवन में अधिकाधिक दुःख–संकट आते चले गये। ईश्वर मेरी माता के जीवन को असली सोना, सौ टन्च का सोना बनाना चाहता था। इस लिए वह उसे और भी तेज भट्टी में डालकर तपाने लगा। मित्रों, मेरी माता एक प्रकार से शापभ्रष्ट देवता ही थी। ......

यों कहता हुआ श्याम एकदम उठ खड़ा हुआ, सब लोग चुप-चाप बैठे हुए थे। थोड़ी देर के बाद लोग सावधान हुए; और भरे हुए अन्तःकरण से अपने अपने घर चले गये।

३३ ऋण या नर्क-भोग?

उस दिन साहूकार का तकाजेगीर हमारे यहां कर्ज-वसुली के लिए आया था। उस दूत के आने पर मेरी माता को मृत्यु से भी अधिक दुःख होता था। कर्ज लेने में कभी सुख नहीं मिलता। कर्ज एक प्रकार से जीवितावस्था का ही नरक समझना चाहिए! मर भले ही जायँ परन्तु कर्ज नहीं लेना चाहिए। उपवास कर लिया जाय, परन्तु कर्ज न लिया जाय। ऋण के द्वारा केवल एक ही बार सुख प्राप्त होता है; और वह ऋण लेते समय ही। इसके बाद तो वह हमेशा ही रुलाता रहता है; भिखारी बना देता है। कर्ज के कारण स्वाभिमान नष्ट होता है, इज्जत बिगड़ती है। कर्जदार की गर्दन हमेशा नीची रहती है। कर्ज का अर्थ है दब्बूपन, दीनता, किम्बहुना एक प्रकार की आत्महत्या!

साहूकार का आदमी! पिताजी उसकी पूरी पूरी खातिरदारी कर रहे थे। घर में माता को उन्होंने अच्छी-सी भाजी बनाने के लिए कहा; और केल के पत्ते वे खुद ही जाकर ले आये थे। माता को यह सूचना दे कर कि 'अच्छी कढ़ी बनाना और उसमें मीठा नीम डालना, जिससे कि स्वाद के ही साथ-साथ उसमें सुगन्ध भी आ सके'—पिताजी खेत पर चले गये। वह आदमी बाहर चबूतरे पर बैठा हुआ था। माता ने उसे चाय बना कर दी। घर में चाय समाप्त हो जाने के कारण वह

पड़ौस से माँगकर लाई। चाय पिलाने के बाद माता ने उस के स्नान के लिए गर्म पानी ले जाकर रक्खा। उसने स्नान किया; किन्तु अपनी धोती तक उसने नहीं धोई। साहूकार का नौकर जो ठहरा! धनवानो के कुत्ते को भी घमंड रहता है। श्रीमानो के कुत्ते को भी गरीबों को चूमना पडता है। एकबार एक किसान को किसी धनवान का कुत्ता काटने दौड़ा। इस पर उसने एक लाठी मार दी। उस मालदार ने गरीब किसान पर मुकदमा चलाया; और बेचारे किसान को २५ रुपये जुर्माना देना पड़ा। यह बात मैंने कहीं पढ़ी थी! किसान बेचारा; वह भी क्या कोई मनुष्य होता है? सारे संसार के लिए मरने-खपने वाला किसान गुलाम, और इन तमाम चैन उड़ानेवालों को पालने वाला वह अन्नदाता किसान पशु समझा जाता है। इतने पर भी वह धनाढ्यों के कुत्ते को मारने की हिम्मत करता है! मित्रो! इस भारतवर्ष मे पशु-पक्षियो को भी मनुष्य की अपेक्षा अधिक सन्मान प्राप्त होता है। मंदिर में कुत्ते, कव्वे जा सकते है, घर में तोते-मैना रह सकते हैं, किन्तु दो हाथ पाँव वाला भगवान का भक्त हरिजन नहीं जा सकता! पशु-पक्षियो से प्रेम करने और मानव-प्राणी से घृणा करने वाले नराधम जहां है, वहां सुख-सौभाग्य और स्वतत्रता कैसे निवास कर सकते हैं?

उस साहूकार के नौकर की वह धोती मेरी माता को धोनी पड़ी। मेरी पुण्यशीला माता के हाथ से वह अमगल वस्त्र धोया गया! संभव है ईश्वर का यह उद्देश्य हो कि इस रूप में मेरी माता का मंगलमय हाथ लगकर उस धोती को पहनने वाला पवित्र हो सके! ईश्वर के उद्देश्य को समज सकना असंभव होता है, वे कल्पनातीत होते हैं। वह शुद्धि का कार्य कहां किस के द्वारा करा लेगा; इसका कोई नियम ही नहीं है।

मेरे पिता ने खेत पर से वापस आते ही सेठजी के गुमाश्ते से पूछा "तुमने स्नानादि कर लिया?" उसने 'हां' कहा और साथ ही अपने आने का उद्देश्य बदलाते हुए उसने यह भी कहा कि "मैं बड़ी देर से तुम्हारी राह देख रहा हूं। तुम्हें सब प्रकार हिसाब समझा कर रुपया लेने के बाद आज ही श्याम को मुझे विसापुर पहुँच जाना है। रातभर नहीं रहूगा।"

पिताजी ने कहा "अच्छी बात है, मैं अभी स्नान-संध्यादि से निवृत्त हो लेता हूं; तब तक आप विश्राम कीजिये।"

इसके बाद वे स्नान के लिए चले गये। स्नानादि से निपट पूजन करते हुए उन्होंने मेरी माता से धीरे से पूछा "तूने उन्हें चाय आदि पीने को दी या नहीं? घर में न हो तो कहीं से लाकर देनी चाहिए थी!"

माता ने कहा "मैंने सब कुछ कर दिया है। उसकी धोती तक धो कर सूखने को फैला दी है। जैसे भी हो, इस बला को यहां से शीघ्र टालो!"

माता त्रस्त हो गई थी, वह संतप्त हो रही थी; किन्तु पिताजी उसी शांतभाव से अपने पूजनादि कार्य में लगे हुए थे। यद्यपि बाहर से तो वे शांत दिखाई देते थे, किन्तु उनके चित्त की खिन्नता मुख पर से प्रकट हो ही जाती थी। घर के देव-पूजन से निपट पिताजी मंदिर में गये और इधर माता ने भोजन के आसन एवं जल-पात्रादि रख दिये! छोटा भाई पुरुषोत्तम भी स्कूल से आ गया था, उसने थालियाँ रखीं। थोड़ी ही देर में पिताजी मंदिर में से लौट आये। इसके बाद उन्होंने कहा "उठो, वामनराव हाथ-पैर धो लो।" पुरुषोत्तम ने उनके पैर धुलाये।

तब पिताजी बोले "आओ, यहां बैठो, यदि सोला (मुकटा) न हो तो भी हानि नहीं। आओ, बैठ जाओ। हमें इसमें कोई अड़चन न होगी।" जो पिताजी हमें बिना रेशमी मुकटे के पंक्ति में पाँव तक न रखने देते थे; उन्होंने आज धोती पहने हुए व्यक्ति को अपने पास बैठा लिया। मानों वह साहूकार का गुमाश्ता कोई देवता ही न हो! उसकी हांजी-हांजी करना, उसका बढ़ा-चढ़ा कर मान करना मात्र ही पिताजी का काम था। क्या करते बेचारे! इतना दब्बूपन, यह तेजोभंग और यह सत्त्व-हानि किस कारण हुई? एक मात्र कर्ज-ऋण लेने से ही। कर्ज भी क्यों बढ़ा? ब्याह-शादी और यज्ञोपवीतादि के समय मनमाना खर्च करने, पूर्व-गौरव के अनुरूप ठाटपाट से रहने के मिथ्या-कुलाभिमान के कारण, बिस्तर देख कर पैर न फैलाने से, झगड़े-झंझट, भाईबन्दी, कचहरियों के द्वार खटखटाने और कर्ज चुकाने की चिंता न रखने से वह पाप-ऋण का भार छाती पर बढ़ता जा रहा था। फिर भी जमीन का मोह नहीं छूटने से यह दुर्गति हो रही थी। मित्रो! यदि तुम अपने बाल-बच्चों कि इज्जत को मिट्टी में न मिलाना

चाहते हो; तो इस कर्ज-ऋण-रूपी राक्षस से हमेशा बचते हुए रहना। यदि दुर्भाग्य से थोड़ा-सा भी कर्ज हो जाय तो उसे खेत-पात या जर-ज़ेवर बेचकर चुका देना। ऋण-मुक्त होकर सुख की नींद सोया।

भोजन परोसा जाने के बाद वामनराव और पिताजी भोजन करने लगे। थोड़ी ही देर के बाद पिताजी ने पुरुषोत्तम से कहा "कोई अच्छासा श्लोक सुना; जिस से वामनरावजी तुझे शाबाशी दे सकें," यह सुन पुरुषोत्तम ने श्लोक सुनाया, परंतु उसे शाबाशी देने जितना उदार अतःकरण वामनराव का नहीं था। साहूकार की नौकरी करते हुए वे भी निष्प्रेम और अनुदार हो चले थे। उनमें भी झूंठी ठसक बढ़ती जा रही थी।

"संकोच मत करो वामनराव! एक रोटी और लो, कढ़ी तो बहुत अच्छी बनी है। अरी, इन्हें कढ़ी परोस।" यों कहकर पिताजी ने सब प्रकार आग्रह-पूर्वक भोजन कराया। किन्तु वामनराव के मुँह से एक अक्षर भी न निकल रहा था। सम्भव है कि उसे यह सीधा-साधा भोजन पसंद भी न आया हो। क्योंकि उसमें कोई चटपटापन नहीं था। अंत में भोजन समाप्त होने पर हाथ-मुँह धोकर पिताजी वामनराव के साथ बाहर चबूतरे पर जा बैठे, उन्हें लौंग-सुपारी आदि दिये गये। इसके बाद पीने के लिए ताजा पानी माँगने पर पुरुषोत्तम लोटा-डोर लेकर कुए पर गया; और वहां से अच्छा ठंढा जल लाकर उसने वामनराव को पिलाया। उधर घर में माता भोजन करने के लिए बैठी।

"हां, तो भाऊराव, अब क्या विचार है। व्याज (सूद) के रुपये चुका दो। तुमने आज का वायदा किया था। आज कम से कम पचहत्तर रुपये तो तुम्हें देना ही चाहिए। मेरा चक्कर व्यर्थ न जाय। तुम्हींने आज आने के लिए क़हा था, इस लिए आया हूं।"

इस प्रकार वामनराव का तकाजा सुनकर पिताजी ने कहा "सुनो भाई वामनराव! दस मन चावल (धान) पैदा हुआ था, वह सब बेच दिया, उससे कुछ रुपये आये। कुछ कुटकी-कोदो आदि थे, वे भी बिक गये। इस प्रकार इधर-उधर से जुटाकर पूरे पच्चीस रुपये मैंने तुम्हारे लिए रख छोड़े हैं। आज इतने ही ले जाइये। सेठजी को हमारी हालत समझा दीजिये; उनसे दो चार शब्द हमारे हित के कहिये और

विश्वास दिलाइये कि उनका कर्ज डूबेगा नहीं। धीरे-धीरे सब चुका दिया जायगा। जरा बच्चों को पढ़-लिखकर होशियार होने दो, उनके कामधंधे से लगते ही पाई-पाई बेबाक की जा सकेगी! एक तो इस वर्ष प्रिमेट्रिक में पहुँच गया है, दूसरा भी रास्ते लग चला है। वामनराव! गोबर के कीड़े गोबर में ही हमेशा थोड़े पड़े रहते है? वे भी बाहर निकलते ही है। इस प्रकार पिताजी उसे समझा रहे थे।

किन्तु उस कठोर अंतःकरण वाले पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वह कहने लगा "मैं इन बातों को सुनना नहीं चाहता। बिना पैसा लिये मैं कभी दर्वाजे पर से नही हटूंगा। यह नया मकान बनाने के लिए तो तुम्हारे पास पैसे हैं, लड़कों को अंगरेजी स्कूल में पढ़ाने के लिए पैसे हैं, और केवल साहूकार को देने के लिए तुम्हारे पास पैसे नहीं! अजी, अगर साहूकार का सूद वसूल करके हम न लावें तो हमे वेतन ही कहां से मिल सकता है? मैं कोई भी बहाना नहीं सुन सकता! मुझे भी तो मालिक सामने जाकर खड़ा होते हुए शर्म लगती है!" वह इस प्रकार चिढ़कर बकवाद कर रहा था! और इसमें उसका दोष ही क्या था? वह भी तो आखिर सेठजी का गुलाम ही था!

पिताजी ने फिर अत्यत नम्रतापूर्वक किन्तु लज्जित होते हुए कहा "वामनराव, मैं तुमसे क्या कहू? यह भी क्या कोई घर है? ईंटे जोड़ कर खपरैल से छायी हुई मढैया है? उसका बहुत आग्रह देखकर यह झोपड़ी खड़ी करनी पड़ी! केवल गोशाला जैसा ही तो है! और इस छोटी-सी कुटिया के बनवाने में भी उस बेचारी के हाथ की सोने की पटलियां (चूड़ी) बेचनी पड़ी। वही एकमात्र उसके पिता के घर का आभूषण बचा था।"

इस प्रकार पिताजी उधर बाहर उसकी खुशामद कर रहे थे, इधर घर में माँ के नेत्रों से थाली के भात में आंसू टपक रहे थे। उसके पेट में दुःख समा न सकता था। भात गले से नीचे नहीं उतर रहा था।

इतने पर भी वामनराव ने निर्लज्जता-पूर्वक कहा "घर बाँधने के लिए यदि सोने की पटलियां बेच दीं, तो साहूकार के पैसे के लिए औरत को बेच दो!"

इतना सुनते ही माँ एकदम बिजली की तरह उठ खड़ी हुई; और

मोरी पर हाथ धो कर वह बाहर आई! उसके नेत्रों से उस समय मानों शोक-संताप का चिन्गारियां-सी बरस रहीं थीं। वह थरथर काँप रही थी। चबूतरे के पास दर्वाजे में खड़े होकर उसने गुस्से से कहा "इस चबूतरे पर से उतर कर इसी क्षण चले जाओ। औरत बेचने की बातें कहते तुम्हें शरम नहीं आती? तुम्हारी जीभ में कोई हड्डी भी है या नहीं? तुम्हारे भी बालबच्चे हैं या नहीं? जाओ, एकदम यहां से उठकर चले जाओ, और तुम्हारे साहूकार को कह दो कि वह भले ही घर-द्वार नीलाम करा दे; लेकिन इस तरह अपमान कराने का उसे कोई अधिकार नहीं है। खुशी से ढिंढोरा पिटवावे और जप्ती लावे, लेकिन बाल-बच्चों के सामने ऐसे दुर्वचन हम कभी नहीं सुन सकते।"

"ठीक हैं, हम भी तो यही रास्ता देख रहे थे। इसी महिने में यदि तुम्हारे घर-द्वार की जप्ती न हुई तो मेरा नाम वामनराव नहीं! एक औरत की जात, और वह हमारा इस प्रकार अपमान कर दे!" इस प्रकार उसने पिताजी को लक्ष्य करके कहा।

पिताजी नाराज हो कर माता से बोले "तू घर में बैठ! जाती है या नहीं? बेचारी माँ चुपचाप घर में आकर रोने लगी। आसूं बहाने के सिवाय उसके पास दूसरा उपाय ही क्या था? इधर बाहर चबूतरे पर पिताजी वामनराव को खुशामद और नम्रता से समझा रहे थे! अंत में बड़ी मुश्किल में हां-नां करते-करते पिताजी के दिये हुए पच्चीस रुपये लेकर वह बिदा हुआ।

पिताजी घर में आकर फिर माता के प्रति खिन्न होते हुए कहने लगे "तुम स्त्रियों में एक कौडी की भी बुद्धि नहीं होती। तुम जरा भी किसी बात को सोचने-समझने का यत्न नहीं करतीं। सबेरे से मैं कितनी सावधानी के साथ उस से बरत रहा था! उसके मन को विश्वास दिला रहा था। तुम्हारा काम तो बस केवल चूल्हा फूँकते रहना ही है। कल की मौत को तुम आज ही बुला लेना जानती हो। गुस्सा करने से क्या कोई काम बनता है? दूसरे को तो मीठी वाणी सेही वश में करना पड़ता है। हमारी कैसी खींचतान होती होगी, इसकी तुम्हें क्या कल्पना?"

"किन्तु पद-पद पर अपमान कराते रहन से तो आज ही मर

जाना क्या बुरा है? कुत्ते की तरह दुत्कारे जाने वाले जीवन से क्या लाभ? ऐसे जीवन से तो कल की अपेक्षा आज ही मर जाना अच्छा है। लाने दो उसे जप्ती, होने दो नीलाम। हम भी लोगों को मजदूरी कर के पेट भरेगे! अपनी मथुरी के पड़ौस मे रहने चले जाएँगे। एक मजदूर भी इस प्रकार की अभद्र वाणी, ऐसे घृणित वचन नहीं सुनेगा! चलो, हम भी मेहनत मजदूरी करें, जमीन साएँ, झरने का पानी पियें, वृक्षों की पत्तियां तोडकर चबावें।" माता भावावेश मे आकर ये सब बातें कह रही थी।

किन्तु पिताजी यह कह कर बाहर चले गये कि "बोलना सहज है, करना बहुत कठिन होता है। दो पहर मे जब धूप सिर पर आवेगी; तब सब बातें मालूम होने लगेगी।"

छोटे भाई माँ के पास आ कर कहने लगा "माँ, रोए मत। तू जब रोने लगती है तो हमें रोना आ जाता है। माँ, तू जो काम हमें बतलाएगी वह सब हम करेगे। परंतु माँ तू रो मत..."

छोटे बच्चे अपनी बड़ी माँ को समझा रहे थे: फूल वृक्ष को सहारा दे रहे थे। इस प्रकार वह अत्यत करुणा-जनक दृश्य था।

३४ गरीब के मनोरथ

श्याम उन दिनों कुछ खिन्न दिखाई देता था। कहीं उसकी माता की स्मृति का तो यह परिणाम नहीं था? माता का दुखी और कष्टमय जीवन तो उसके मनश्चक्षुओं के सम्मुख आ कर खड़ा नहीं हो गया था; और इसी कारण तो उसका अतःकरण विदीर्ण नहीं हो रहा था?

दूसरे दिन राम ने उससे पूछा "श्याम! आज-कल तेरे मुख-मण्डल पर हास्य की रेखा नहीं दिखाई देती? तू निरन्तर उदास क्यों दिखाई देता है? तेरे मन को कौन से विचार कष्ट दे रहे हैं?"

"राम! हमारे देश में अपरंपार दुःख, दीनता और दरिद्रता फैली हुई है। मैं जो अपनी माता के संस्मरण सुनाता हू, वे भी एक प्रकार से मानों अपनी भारत-माता के ही हैं। वह भारत-माता दीनता, दासता और ऋण (कर्ज) के सागर में डूब रही है। उसके पुत्रो को इस समय खाने को नहीं मिलता, पीने और पहनने को नहीं मिलता, उद्योग-धंधा नहीं मिलता, शिक्षा-दीक्षा द्वारा ज्ञानवृद्धि का साधन नहीं मिलता। इन सब बातों का विचार कर के मेरा हृदय टूटने लगता है! यह करुण दृश्य इन आँखो से नहीं देखा जा सकता। मेरी छाती फटने लगती है। परतंत्रता ने भारत को कितनी हानि पहुँचाई है! जहां-तहां कर्ज, अकाल और रोग फैले हुए हैं। छोटे छोटे बच्चे जन्म लेते ही मर जाते हैं। किसी के भी मुँहपर तेज या चमक नहीं, कहीं भी उत्साह नहीं दिखाई देता। मानों जीवन का सारा श्रोत ही सूख गया है। परतंत्रता सर्वभक्षक है, गुलामी सर्वसंहारक है। भारत में आज मरण है, जीवन नहीं; शोक है, आनंद नहीं; अज्ञान है, ज्ञान नहीं; संकुचित भाव है, उदारता नहीं; कृतघ्नता है, कृतज्ञता नहीं; लोभ (मोह) है, प्रेम नहीं; पशुत्व है, मनुष्यता नहीं; अँधेरा है, उजेला नहीं; अधर्म है, धर्म नहीं; भय है, निर्भयता नहीं; बन्धन है, मुक्तता नहीं; रूढी है, विचार नहीं। यह विराट् दुःख, सर्वव्यापी क्लेश मेरे छोटे से अतःकरण की, होली कर के उसे राख में मिला रहा है। मेरी माँ की तरह लाखो माताएँ इस देश में विलख रही हैं। उनके स्वर्गमय जीवन मिट्टी में मिल रहे हैं। ऐसी दशा में यदि मैं उदास न होऊं तो और क्या कर सकता हू?"

यों कह कर वह चुप हो गया। थोड़ी देर के बाद राम ने फिर कहा, "श्याम! दुःख को देख कर उसे दूर करने के लिए उठ खड़े होना चाहिए, अँधेरा देख कर प्रकाश लाने का प्रयत्न करना चाहिए! बधन देख कर उन्हें तोड़ने का उद्योग करना चाहिए। किन्तु निराश नहीं होना चाहिए। वीर पुरुष के सामने जितने अधिक संकट आते हैं; उतना ही उसका बल बढ़ता है, स्फूर्ति आती और वह वीरता से उनका सामना करता है।"

"परन्तु मैं तो वीर नहीं हूं। हां, तुम लोग अवश्य वीर हो; और इसी लिए मुझे तुमसे ईर्ष्या होती है। निराश न हो कर तुम्हारी तरह

निरन्तर उद्योग करने की इच्छा मुझे भी होती है; किन्तु मेरी आशा का तंतु थोड़ी ही देर में टूट जाता है। मेरी ऐंठ क्षणिक होती है। वह सजीव आशा-रूप नहीं होती।" इस प्रकार श्याम ने उत्तर दिया।

तब राम ने फिर कहा "किन्तु निराश होने का अर्थ है ईश्वर को भूल जाना। निराशा का अर्थ है नास्तिकता। अंत में सब अच्छा ही होगा, अंधेरे में से ही उजेला भी आवेगा। इस प्रकार के भाव रखने का नाम ही आस्तिकता है।"

"परंतु निशा (रात) में अवसान के पश्चात् आई हुई उषा भी फिर निशा ही में तो परिणत होगी! संसार तो जहां का तहां है। इस संसार में क्या सुधार हो रहा है; यह मेरी समझ में नहीं आता। जाने दो इन बातों को! व्यर्थ गहरे में जाने से क्या लाभ? हम से जो कुछ हो सके, वही करना चाहिए! रास्ते से पत्थर हटाना और काँटे दूर फेंकना, फल-फूल के वृक्ष लगाना, रास्ते साफ करना, लोगों से मीठे शब्द बोलना, उनसे हँसना और मिलना जुलना, बीमारों के पास बैठ कर उनकी सेवा करना, रोने वाले के आँसू पोंछना, ये भी कम महत्त्व के काम नहीं है। दो दिन तो संसार में जीना है। मुझ जैसा व्यक्ति इससे अधिक और कर ही क्या सकता है? इस फटे हुए आकाश में मुझ जैसा दुर्बल व्यक्ति कहां तक पेबंद लगाता रहेगा?" इस प्रकार श्याम के स्वर में निराशा झलक रही थी।

राम ने फिर कहा "अरे, हम संघटन करेंगे। नये विचार फैलाएँगे। देश की दरिद्रता मिटा कर उसे सुखी बनाएँगे। मेरे तो रोम-रोम में आशा नाच रही है श्याम!"

इतने ही में प्रार्थना की घंटी बजी और बात-चीत वहीं रुक गई। प्रार्थना-मंदिर में सब लोक एकत्रित हो गये। वहां उस समय पूर्ण शांति थी। आज राम एक अच्छा-सा भजन सुनाने वाला था। गीता में वर्णित 'स्थितप्रज्ञ' के लक्षण वाली प्रार्थना और नमस्कार हो जाने के बाद राम ने भजन गाना आरंभ किया।

उसने आशा का दिव्य-गीत गाया, जिसने श्याम के होटों पर एक अस्पष्ट हास्य खेलने लगा। एक विशेष अवसर पर श्याम ने ही उस गीत

की रचना की थी ! किन्तु वह दिव्य, अदम्य आशावाद आज उसमें कहाँ था ? श्याम मानों इस समय आशा-निराशा के द्वंद्व-युद्ध का केन्द्रस्थान हो रहा था। आज हँसता तो कल रोने लगता, आज उछल-कूद मचाता तो कल चुपचाप पड़ रहता। श्याम इस समय पहेली बन रहा था।

प्रार्थना समाप्त होने के बाद श्याम की कहानी सुनाने की बारी आई। श्याम कहने लगा :—मित्रो ! दापोली से निराश हो कर मैं घर गया था। उस दिन माता से कुछ सान्त्वना पाने के लिए मैं पालगढ़ गया था।

घर जाकर मैंने माता से कहा "माँ, अब इस स्कूल में पढ़ना अशक्य हो गया है। पिताजी फीस के पैसे नहीं देते; और स्कूल में फीस माफ नहीं होती। बतला तो, अब मैं क्या करूं ? पिताजी कहते हैं स्कूल मे असमर्थ-विद्यार्थी के रूप में खड़े रहो। इस पर जब मैं फीस माफ कराने को खड़ा होता हूं; तो मास्टर कहते हैं 'अरे श्याम, क्या तू गरीब है ? बैठ जा नीचे !' माँ, किसी समय हम धनवान थे, यह बात तो लोगों को मालूम है; किन्तु आज हमारे घर में खाने को ही नहीं, यह बात वे नहीं जानते। कहने पर विश्वास नहीं करते। क्लास के लड़के हँसते हैं। मैं नीचे बैठ जाता हूँ।"

इस पर माता ने शांत-भाव से कहा "श्याम ! तुझे अब स्कूल छोड़ देना चाहिए।"

"माँ, अभी तो मैंने पांचवी कक्षा ही पास की है। अभी से स्कूल छोडकर मैं क्या कर सकूंगा ? आज मेरा क्या उपयोग है। मैं आज क्या कमा सकता हूं ?" इस प्रकार मैंने माता से पूछा।

इस पर उसने कहा "वे तुझे कहीं रेल्वे में लगा देने की बात कह रहे थे। वे भी क्या कर सकते हैं ? तुझे फीस देनी पड़ती है, वे घर में झुँझलाते रहते हैं। इस लिए स्कूल छोड़ना ही अच्छा है। कहीं नौकरी मिले तो कर ले।"

"किन्तु माँ, क्या मैं अभी से नौकरी करने लग जाऊं ? क्या इस अवस्था से ही मैं नौकरी का भुनगा अपने पीछे लगा लू ? माँ मेरी कैसी ऊंची उड़ान्, कितने विशाल मनोरथ और कैसे-कैसे सुन्दर सुखस्वप्न थे ! मैं खूब पढ़ूगा, कवि बनूंगा, ग्रंथकार बनूंगा, तुझे सुखी करूंगा ! तब क्या

मैं अपनी इन सब आशाओं पर पानी फेर दूं? सारे मनोरथ मिट्टी में मिला दू?" उस समय मैं मानों कवि बनकर ही ये सब बातें कर रहा था। भावना ही मुझसे यह सब कहलवा रही थी, वही मेरे होटों को हिला रही थी।

"श्याम! गरीबों के मनोरथों को प्रायः मिट्टी में ही मिलना पड़ता है। गरीबों के स्वाभिमान को अधिकतर धूल में ही समाना पड़ता है। गरीबों को जो कुछ भी सामने आवे वह सब काम करना पड़ता है। बगीचे की कई कलियों को कीड़े ही खा जाते हैं!" इस प्रकार माता मुझे समझा रही थी।

"किन्तु माँ, मुझे बहुत बुरा लगता है। क्या मेरे लिए तुझे कोई दुःख नहीं होता? क्या तू यह चाहती है कि तेरे प्यारे श्याम का जीवन इस प्रकार असमय ही धूल में मिल जाय? क्या तू नहीं चाहती कि मैं बड़ा बनू?"

माँ ने कहा "बेटा, मै जरूर चाहती हूं कि तुम बडे बनो, परन्तु पिता को चिंता में डाल कर, उनके अतःकरण को कष्टमय बनाकर बडे मत बनो। अपने पैरों पर खडे हो कर यदि बड़े बन सकते हो तो मैं नहीं रोकती! यदि पिता पर आधार रख कर रहना है; तो उनकी इच्छानुसार बरतना चाहिए।"

"तो माँ अब मैं क्या करूं? मुझे कोई मार्ग तो दिखला! आज तक तूने ही तो मुझे सब बातें सिखाई हैं। अब भी तूही बतला, मैं क्या करूं?"

"माँ-बाप को छोड़ कर ध्रुव वन मे चला गया, घर-द्वार छोड़ कर उसने जंगल का रास्ता पकड़ा। ईश्वर पर और साथ ही अपने आप पर विश्वास रख कर वह तपस्या करने चल दिया; उसी तरह तू भी घर छोड कर चल दे। बाहर के विशाल—जगत में पहुँच जा। ध्रुव ने ईश्वर के लिए जैसे तपस्या की और उपवास किये, उसी प्रकार तू भी विद्या-प्राप्ति के लिए उद्योग कर। बिना तप किये फल कैसे मिल सकता है? इस लिए जा, और अपने पैरो पर खड़ा होना सीख। भूख-प्यास सहन कर, कष्ट उठा कर विद्या प्राप्त कर। बड़ा हो कर, विद्यावान बन कर घर आ! हमारा आशीर्वाद हमेशा तेरे साथ है ही। कहीं भी रहने पर मन से तो मैं तेरे पास रहूंगी ही। इससे अधिक मैं क्या कहूं?"

इस प्रकार माता ने स्वावलंबन का उपदेश दिया। मेरी सुप्त मनोवृत्ति को जगाया।

"तो माँ, क्या मैं सचमुच ही चला जाऊं? तूने मेरे मन की ही बात कही है। और ठीक भी है। मेरे मन में भी तो तू ही है, इसी लिए इस अंतःकरण की सब बातें तू जानती है! माँ, उधर सातारा के पास औंध नाम का एक राज्य है। वहां पढ़ाई की फीस आदि बहुत कम है। क्या मैं वहां चला जाऊं? मधुकरी मांग कर पेट भर लिया करूंगा। उस दूर के गाँव में मेरी दशा पर कौन हँस सकता है? वहां मुझे कौन पहचानता है? किसी के भी घर जाकर जो काम बतलाया जायगा, वह करूंगा। तूने काम करने की आदत मुझे लगा ही दी है। जान-पहचान के लोगों से दूर होने पर फिर कोई शर्म नहीं! माँ, फिर मैं जाऊं नँ?"

"अवश्य जा बेटा! मधुकरी माँगना कोई बुरी बात नहीं है। खासकर विद्यार्थी के लिए तो उसमें कुछ भी दोष नहीं हे। हां, आलसी मनुष्य के लिए भीक माँगना पाप है। जा, श्याम! गरीब विद्यार्थियों के लिए ही तो मधुकरी माँगने की आज्ञा है। किसी भी प्रकार से रहना, किन्तु चोरी-चुगली मत करना। पाप से बचना, सत्यवादिता को न छोड़ना; हां अन्य सब प्रकार के दुरभिमान से अवश्य मुँह मोड़ लेना। जो कुछ अपने से दूसरे को मदद दी जा सके, उससे कभी पीछे मत हटना। सबसे मीठा बोलना और हँस-मुख रहना। यदि जीभ में मिठास हो तो संसार में कुछ भी दुर्लक्ष नहीं है। मित्र-मंडली बनाना, किसी से भी अपमान-कारक या ओछे वचन मत कहना, किसी का भी हृदय मत दुखाना। परिश्रम-पूर्वक अध्ययन करना और माता-पिता को स्मरण रखना, भाई-बहन को याद करते रहना। इन सब की याद रहना अच्छा है। यह स्मृति ही प्रत्येक कष्ट से तुझे तार सकेगी; तुझे सन्मार्ग पर लगाये रक्खेगी। जा बेटा, मेरी ओर से तुझे आज्ञा है। ध्रुव ने भगवान के दर्शन होने पर जैसे माता-पिता का उद्धार किया; उसी प्रकार तू भी विद्यादेवी को प्रसन्न कर हमारा उद्धार कर।"

इस प्रकार उत्साह-वर्धक शब्दों द्वारा माता मुझे 'तारक-मंत्र'

प्रदान कर रही थी। मैंने कहा "माँ, तू पिताजी को समझा कर उनसे भी आज्ञा दिला दे!"

"हां, मैं उनसे भी आज्ञा दिलवा दूंगी, निश्चिंत रह। वे खुद ही इसी आशय के शब्द कह रहे थे।" इस प्रकार माता ने आश्वासन दिया।

रात को भोजन हो रहा था। सूखे आम की लौंजी बनाई गई थी। कुलित्थ का बेसन बना था। उसी समय माता ने कहा "यह श्याम, कहीं दूर पढ़ने के लिए जाना चाहता है, इसे जाने देना चाहिए।"

"कहा जावेगा? वहां भी तो पैसे भेजने पड़ेगे? आज तो नक्द एक पैसा निकाल कर देना भी मेरे लिए असंभव हो गया है। किसी समय इन हाथों से हजारों रुपये गिने थे; किन्तु आज उसकी याद से क्या लाभ? मेरी तो बुद्धि ही कुछ काम नहीं करती! मैं लाचार हो रहा हूं। क्या मैं कभी यह चाहूगा कि लड़के खूद पढ़े-लिखें नहीं! अपने होनहार, बुद्धिमान एवं गुणी और श्रमशील पुत्रों को न पढ़ाने की बात कौन अभागा बाप सोच सकता है? किन्तु क्या करूं! मैं सब तरह लाचार हूं।" इस प्रकार पिताजी ने खिन्न होकर कहा।

इस पर माता ने कहा "यह जहां जाना चाहता है, वहां आप को कुछ भी नहीं भेजना पड़ेगा। वहां शिक्षा प्रायः मुफ्त ही मिलती है। यह वहां मधुकरी माँगकर निर्वाह करेगा। केवल वहां तक पहुँचने के लिए दस रुपये की आवश्यकता है।"

"कोई हानि नहीं। अपनी हिम्मत पर यह कहीं भी पढ सकता है। यह नौकरी ही करे, ऐसा मैं आग्रह नहीं करता। केवल अब मैं पढाई के लिए पैसा खर्च करने में असमर्थ हूं। यही एक मात्र कठिनाई है। किन्तु यह जाता है तो मेरा हृदय से आशीर्वाद है।" पिताजी ने कहा।

इसके बाद भोजन समाप्त हो जाने पर मैं बैठा हुआ माँ से बातें कर रहा था। बीच ही में पुरुषोत्तम पूछ बैठा "क्यो! माँ; अब दादा दूर चला जायगा और जल्दी से वापस नहीं आवेगा?" उसको समझाते हुए माता ने कहा "हां बेटा, यह खुद पढ़-लिख कर फिर तुम्हें पढ़ावेगा। तुम पढ़ लिख सको, इसी लिए यह बाहर दूर जा रहा है।"

अंत में मेरा औंध जाना निश्चित हो गया।

पिताजी ने अच्छा-सा दिन-मुहूर्त निकाला। जैसे-जैसे वह दिन निकट आ रहा था, वैसे-वैसे मेरे हृदय की व्यग्रता बढती जा रही थी। अब मैं बारम्बार माता से मिलने थोड़े ही आ सकता था? इतने दिनों तक तो उसके पास ही था। पक्षी की तरह जरा-भी जी अकुलाया कि फुर्र से उड़कर मैं माता के पास आ जाता था। किन्तु अब तो मैं बहुत दूर जाने वाला था। माता की सेवा करने, उसकी कृपादृष्टि का अमृत-पान करने के लिए मैं जैसे प्रत्येक शनिवार और रविवार तक को घर चला आता था; वह सौभाग्य अब मेरे लिए अलभ्य हो रहा था। अब तो मेरे लिए बड़ी-बडी छुट्टियों में भी घर आ सकना असंभव होने को था। बिना पैसे के कहीं आना-जाना क्यो कर हो सकता है? प्रत्येक काम में तो पैसे पहले गिनने पड़ते हैं! मेरे लिए दस रुपये का प्रबध करने में पिताजी को कितने ही घरों के द्वार देखने पड़े; कई मामूली व्यक्तियों की खुशामद करनी पड़ी। किन्तु मैं पढने के लिए जा रहा था, आगे चल कर माता-पिता को सुखी करने के उद्देश्य से जा रहा था; माता की सेवा के लिए अधिक योग्य बनने को जा रहा था। यही एक विचार था जो मुझे धैर्य दे रहा था; नेत्रों के आँसुओं को रोक रहा था। किन्तु मेरे दूर चले जाने पर माता की सेवा के लिए कौन आ सकता था? छुट्टी मे उसके हाथ-पाँव कौन दबाने वाला था? अब माँ किस से कहेगी 'श्याम! तेरे हाथ कितने ठडे हैं। जरा मेरे सिर पर तो रख! मेरा कपाल ऐसा तप रहा है मानों गर्म तवा ही न हो।' अब उसकी साड़ी कौन धोकर लावेगा? भोजन के समय उसके पास बैठ कर बातें करते हुए दो-चार ग्रास अधिक खिलाने का प्रयत्न कौन करेगा? चक्की पीसते समय कौन उसको सहायता देगा! बाहर से इंधन लाकर कौन उसे देगा? 'माँ, मैं यह दूध का तपैला भर कर रख देता हूं' इस प्रकार कौन कहे? और आँगन लीपने के लिए गोबर लाकर कौन देगा? कुए पर से घड़े और मटकियां भर कर कौन लावेगा? घर आने पर तो मैं माँ को इन सब कामों में मदद करता था। किन्तु अब कब वापस आ सकूंगा, इसका कोई निश्चय नहीं था। किन्तु मैं कौन माता को सुख देने वाला? मैं कौन हो सकता था? मुझे क्यों इस बात का

अभिमान होना चाहिए ? वह परमात्मा ही तो सब कुछ कर्ता-धर्ता है ! वही तो सारे संसार का माता-पिता है। उसीको सबकी चिंता है। ईश्वर ही सब पर दया करता और वही उसकी सार-संभाल रखता है ! मेरी माता के अविचल विश्वास का आधार भी तो वही है। बस एक वही !

मेरे कपड़े-लत्ते और बिस्तर बँध रहे थे। रात ही को बैलगाड़ी से मैं जा रहा था। आज ही रात को मैं जानेवाला था। हां, आज ही रात को मैं अपनी स्नेहमयी माता को छोड़ कर जा रहा था। माता ने दो अच्छी साफ गुदड़ियां निकालीं और एक कंबल। मैंने कहा "माँ, कबल की मेरे लिए क्या आवश्यकता है ? एक टाट का टुकड़ा नीचे बिछा लूंगा। एक गुदड़ियां बिछाने को हो जायगी और दूसरी ओढ़ने को। तुझे जब ठण्ड देकर बुखार आवे; तब ओढ़ने के लिए कंबल रहने दे। मुझे उसकी जरूरत नहीं है।"

"श्याम ! तू परदेश जा रहा है। वहा कोई जान-पहचान का व्यक्ति भी नही है। ईश्वर न करे और यदि बीमार हो जाय या और कोई कष्ट हो; तो उस समय कबल काम देगा। इस लिए रहने दे श्याम, हमारा तो यहां किसी तरह काम चल जायगा। मेरी बात मान बेटा!"

यों कह कर माता ने वह कंबल भी मेरे बिस्तर मे बाँध दिया। थोड़ा-सा चिवड़ा बना कर रास्ते मे खाने के लिए बाँध दिया। सर्दी के दिनों में होंट न फट जायँ, इस लिए अमचूर के तैल का टुकड़ा भी दे दिया। जहाज मे समुद्री हवा से कष्ट न हो, इस लिए आँवले की चार बर्फी भी बाँध दी। चार भिलावे भी पास रखने को कहा और लाकर मुझे दे दिये। मेरी वह प्रेममयी, श्रमशील, कष्ट-सहिष्णु माता ! छोटी-छोटी बातों पर भी उसका ध्यान था।

रात को नौ बजे ही गाड़ी आने वाली थी। ज्यों-त्यों कर के भोजन किया। पेट तो वैसे ही भर गया था। माता ने भात पर दही परोसा और भोजन समाप्त कर मैं उठ खड़ा हुआ। थोड़ी देर ठहरने के बाद गाड़ी आ गई। पिताजी ने मेरा सामान ले जाकर गाड़ी मे रख दिया। इधर मैंने छोटे भाई को समझना शुरू किया "पुरुषोत्तम, अब तू बातबात मे हठ

कर के मत बैठ जाना। अब माँ के हर काम में मदद करना; हो भैया! अब माॅ के लिए-तू ही सहारा है।" इस प्रकार उपदेश दे कर उसकी पीठ पर मैंने प्रेम से हाथ फेरा। इसके बाद देवता को प्रणाम किया और माता की दी हुई सुपारी उनके सामने भेट चढाई। तत्पश्चात् पिताजी को प्रणाम किया। उन्होंने प्रेम से मेरी पीठ पर हाथ फेर कर मन ही मन आशीर्वाद दियाः किन्तु मुँह से कुछ भी न बोल सके। इसके बाद जब माता के चरणों में मस्तक रक्खा; तो उसके चरणों का अश्रुजल से अभिषेक हो गया। उसने चूल्हे में से राख की चुकटी लाकर मेरे मस्तक पर लगा दी। उसके बाद पड़ौसिन जानकी मौसी के पास जाकर मैंने कहा "मौसी, अब मेरी माँ की तुम्हीं सार-सम्हाल रखना! बीमार हो जाय तो उसकी सहायता करना।" उन्होने भी आश्वासन देते हुए कहा "जा श्याम! तेरी माँ की मदद लिए हम सब मौजूद हैं, तू किसी बात की चिंता मत करना।" इसके बाद फिर मैं माँ के पास आया और उसने मुझे सावधान रहने का उपदेश दिया। मैंने स्वीकृति की गर्दन हिलाई और घर से निकला। इतने ही में पुरुषोत्तम आकर मुझ से लिपट गया। उसे मैंने बड़े प्रेम के साथ हृदय से लगाया। किन्तु थोड़ी ही देर के बाद उसे छोड़ कर मैं गाड़ी में जा बैठा। पिताजी पैदल ही पीछे-पीछे आ रहे थे। क्यों कि गणपति के देवालय के पास उतर कर मुझे दर्शन करना था। तिहारे पर आकर गाड़ी ठहरी और मैं पिताजी के साथ मंदिर में दर्शनार्थ गया। वहां मैंने गणेशजी को साष्टांग प्रणाम कर उनका चरणामृत नेत्रों को लगाया। उनके चरणों का सिन्दूर अपने कपाल पर लगाते हुए मैंने मन ही प्रार्थना की "हे गणराज! मेरे माता-पिता की रक्षा करना।" इसके बाद बाहर आकर मैंने फिर एक बार पिताजी को प्रणाम किया, और उन्होंने सावधान रहने तथा स्वास्थ्य को सम्हाले रखने का उपदेश दिया।

मैं गाड़ी में जा बैठा। पिताजी क्षणभर खड़े रह कर गाड़ी के चल देने पर वापस लौटे। गाड़ी जोरों से चलने लगी। बैल दौड़ने लगे। उनके गले की घंटी बजने लगी। इधर मेरे जीवन की गाड़ी भी चलने लगी। मुझ अकेले की गाड़ी चली। बाहर के जीवन-सागर में मैं अकेला

ही जा रहा था। उस सागर में मैं मर जाऊंगा या डूब जाऊंगा; अथवा गोता लगा कर मोती लाउगा? उस सागर मे मुझे कौन-कौन मिलेगा? किनसे मित्रता होगी और कौन उसे फिर तोड़ देंगे, मेरी जीवन नैया कहां जा फँसेगी और कहां उसका उद्धार होगा, वे सब बातें अनिश्चित थीं। केवल माता की प्रदान की हुई स्फूर्ति के आधार पर ही मैं चला जा जा रहा था। उसकी दी हुई धृति के पखों पर आरोहण कर के मैं चला रहा था। उसने कहा था "ध्रुव की तरह जाना!" किन्तु कहां वह तेजस्वी, निश्चयरूप महा मेरु परम-पवित्र बाल-तपस्वी ध्रुव और कहां यह बुद्धिहीन, दुर्बल एवं पग-पग पर भूलें करने वाला, क्षण-भर में निश्चय से फिसल जाने वाला, चंचल-चित्त श्याम! मैं रो रहा था; बाहर सर्वत्र अंधःकार था। मैं मूक-अश्रु बहा रहा था। गाँव की नदी निकल गई, झोलाई-सोमेश्वर के मंदिर भी निकल गये। पालगढ की सीमा पहले ही समाप्त हो गई थी। किन्तु मेरा ध्यान उस ओर नहीं था। मेरे हृदय में अनेक प्रकार की स्मृतियाँ उमड रही थीं; वे मेरे हृदय मे उथल-पुथल मचा रही थीं। स्नेहमयी मां! बस, उसकी केवल कृपादृष्टि रहने से ही मेरा सर्व प्रकार कल्याण हो सकता है। मैं फिर किसी से भी नही डरूगा। उसका आशिर्वाद ही मेरे लिए अभेद्य कवच-कुण्डल के समान हो सकता है। उन्ही को धारण कर के मैं चल दिया था। पुत्र को तैरना सिखा कर माता ने उसे अथाह सागर मं छोड़ दिया। उस सागर में मैं अनेक बार डूबने की अवस्था मे पहुँचा; और कितनी ही बार कीचड़ या रेती मे भी फॅसा, कई बार लहरों ने मुझे डुबाया, किन्तु हर बार मैं बच कर ऊपर आ गया; डूबने से बच गया। आज भी सब संकट समाप्त नहीं हुए हैं; अभी कई विकट घाँटियां शेष हैं। किन्तु जिस माता की कृपा से आज तक मैं तैर कर किनारे लगा, मरने से बचा; गिर कर उठ खड़ा हुआ, उसी की कृपा आगे भी मुझे तारेगी। आज यद्यपि मेरी माता नहीं हैं, फिर भी उस की कृपा तो है ही। माता के मर जाने पर भी उसकी कृपा कदापि मर नहीं सकती। भीतर ही भीतर उसकी तरी हमे मिलती रहती है।

३५ धनहीन की भर्त्सना

श्याम ने कहना आरंभ किया :

पिताजी के सिर पर कर्ज का बोझा दिनों-दिन बढ़ता जा रहा था। क्योंकि समय पर वे सूद (व्याज) तक न चुका सकते थे। हमारे कुछ खेत थे। यदि पिताजी उनमें से पहले ही दो-एक बड़े खेत बेंच देते; तो लगभग सारा ही कर्ज उतर जाता। साथ ही हमारे निर्वाह-योग्य खेती-बारी भी बच सकती थी। किन्तु पिताजी को यह मार्ग उचित नहीं जान पड़ता था। जमीन बेचना उन्हें अपमान-जनक जान पड़ता था; पाप प्रतीत होता था।

उस रात को मेरे नाना (माता के पिता) हमारे घर आये थे। उनका उद्देश्य पिताजी को दो-चार हित की बातें समझाना ही था। वे चाहते थे कि यदि मेरे पिता उनका कहना मान ले, तो कर्ज-मुक्ति का प्रयत्न किया जाय। नानाजी बड़े ही चतुर और अनुभवी गृहस्थ थे। वे व्यवहार दक्ष, मितव्ययी और खास ढग पर चलने वाले व्यक्ति थे। किन्तु उन्हें अपनी बुद्धि का विशेष अहकार था। उनके कथन के विरुद्ध यदि कोई कुछ कह देता तो वह उन्हे सहन नही होता था। उनका स्वभाव भी कुछ चिढचिड़ा था। क्योंकि प्रायः जो व्यक्ति कुशाग्र-बुद्धि होता है; उसे यह जान पडता है मानों दूसरे में कोई बुद्धि ही नहीं है, सारी अकल उस अकेले को ही मिल गई है। हमारे नानाजी का स्वभाव भी कुछ ऐसा ही था।

मेरे पिता पड़साल में टाट का थैला बिछा कर उस पर बैठे हुए थे। भोजन हो चुका था। माता भीतर घर में भोजन कर रही थी। बाहर नानाजी आये और मेरे पिता से बातचीत करने लगे।

उन्होंने कहा "देखो, भाऊराव, आज मैं तुम्हें आखिरी बात कहने के लिए आया हूं। पहले भी मैंने तुम्हें कई बार समझाया; किन्तु तुमने उस पर ध्यान नहीं दिया। पर अब तो मामला गले तक आ फँसा है, अब तो सावधान होना ही चाहिए। तुम अपने कुछ खेत-जमीन बेच दो।

कम से कम उस मारवाड़ी का तो कर्ज सब से पहले चुका ही दो। दूसरे साहूकारों का पीछे से देखा जायगा। वे कुछ ठहर कर भी ले सकेंगे; साथ ही उनका सूद (व्याज) भी अधिक भारी नहीं है। कैम्प वाले मारवाडी का कर्जा ही मुख्य है। दिनोंदिन कर्ज का बोझा बढ़ता ही जाता है। अन्य लोगों का देना भी बढ़ रहा है, इससे सर्वनाश हो जायगा; इस लिए मेरी बात मानों। ''

यह सुन पिताजी ने कुछ चिढ़ कर कहा '' किन्तु मेरी इतनी चिंता आप को क्यों है ? दरिद्र व्यक्ति को सभी मनमानी सलाह देने लगते हैं। क्या दरिद्री कुछ भी बुद्धि नहीं रखता ? नाना ! कर्ज की चिंता तो मुझे है; आप को उसके लिए घबराने और चिंतित होने की जरूरत नहीं। ''

'' भाऊराव! मुझ से रहा नहीं गया; इसी लिए तुम्हारे पास आना पड़ा। मेरे पेट का अंश समझ कर तुम्हारे पास आया हूं। मेरी आंत यहां अटकी हुई है, इस लिए आना पड़ा है। मेरी पुत्री तुम्हे दी है, इस लिए इतनी रात में कीचड़-कांटे लाँघता हुआ तुम्हारे पास आया हू। मेरे सोने जैसे नातियों के लिए थोड़ी बहुत खेती-बारी बच रहे, उनके लिए इस गाँव में घर-द्वार बना रहे, अपने पूर्वजों के इस गाँव से वे पराङ्मुख न हो सकें, यहां से उनका निर्वासन न हो जाय, इसी लिए मैं आया हूं। शीघ्र ही तुम्हारी जायदाद पर जप्ती आने को है, और नीलाम में रुपये का माल पाई कीमत पर चला जायगा। वह तुम्हारा ' पाय-रिया ' खेत पंद्रह-सौ रुपये में वीसापुर वाला ले रहा है, उसे दे डालो। फिर इतने दाम नहीं मिलेंगे। मारवाड़ी से छुटकारा हो सकेगा। '' इस प्रकार नानाजी ने अंतःकरण-पूर्वक सलाह दी।

'' किन्तु नाना, वह खेत कैसे जाय ? उसीमें तो हम छोटे से बड़े हुए हैं। उस खेत को खाद आदि दे कर बड़ा और उपजाऊ भी तो हम्हींने बनाया है। बड़े-बड़े टिब्बे तोड़ कर जमीन बराबर, और की नीचे की चट्टानों को सुरंग लगा कर तोड़ा; तब कहीं जाकर वह धान पैदा करने लायक हो सका है। दस मन के खेत को हमने तीन खंडी (साठ मन) का बना दिया। यहां कुआ भी खुदवाया। भला, उस खेत को मैं कैसे बेच सकता हूं ? और बच्चों का भी तो उसपर कितना प्रेम है ?

बचपन मे वे शनिवार और रविवार को प्रायः खेत पर ही रहते थे। वहीं वे बैंगन का भुर्ता और भात अपनी दूधवाली दादी के साथ खा कर मस्त हो जाते थे। वहां हमने कितने ही आम के पैड और फल-फूल के पौधे लगाये हैं। उस खेत के साथ कहां तक का प्राणों से अधिक स्नेह-सम्बन्ध है! और वह जमीन भी कैसी है? उसमें सोना पकेगा, ऐसी उपजाऊ है। दिनों-दिन जमीन आँखो के लिए दुर्लभ होती जा रही है। यदि पूर्वजो की खेती-बारी मे हम से वृद्धि न हो सके; तो कम से कम जो कुछ है उसे भी हम सम्हाल कर न रक्खें? मुझ से तो जमीन का एक टुकड़ा भी न बेचा जा सकेगा। भला, कोई अपने कलेजे के टुकड़े को भी काट सकता है? अपनी ही जमीन हम अपने हाथों से बेच दे? जिस प्रकार, अपनी माता को बेचना पाप है, अथवा अपनी गौ-शाला की गऊ का बेचना पाप है; उसी प्रकार अपनी जमीन बेचना भी पाप है। जमीन भी एक प्रकार से माता ही है, उसीके अन्न से तो हमारा यह शरीर पुष्ट हुआ है।" इस प्रकार पिताजी ने भावना पूर्ण उत्तर दिया।

"किन्तु भाऊ! इस प्रकार केवल भावना-युक्त बातें करने से तो काम नहीं चल सकता! केवल शाब्दिक कढी और शब्द का ही भात खाने से शरीर में रक्त नहीं बढ सकता। तुम जमीन को माता के समान बता कर उसका बेचना पाप बतलाते हो; किन्तु फिर दूसरों से खरीदते कैसे हो? दूसरों से छीन कैसे सकते हो? उस समय नहीं जान पड़ता कि वह जमीन दूसरे की माता है? मुझे यह नीति सिखाने का प्रयत्न मत करो! किसी समय तुम्हीं खुद दूसरों के खेतों पर जप्ती ले जाते थे। उन्हें नीलाम कराते; और इस प्रकार उन दूसरों की माताओं को छीन लेते थे। जमीन बेची भी जाती है और खरीदी भी। व्यवहार को देखना चाहिए! आगे चल कर परमेश्वर की कृपा से लड़के होशियार हो गये; और वे अच्छे धन्धे से लग गये तो फिर जमीन खरीदी जा सकेगी! यह नहीं तो दूसरी! किन्तु कर्ज का बोझा सिर पर रख कर तुम जमीन को कैसे सम्हाल सकोगे? उसे कैसे बचा सकोगे? जप्ती का ढिंढोरा (डुगडुगी) पिटने के बाद पुलीस आ खड़ी होगी, और नीलाम शुरू हो कर घर के द्वार पर ताले लग जायँगे। उस समय जो दुर्दशा होगी वह अच्छी है, या आज ही सावधान हो कर

उस अप्रिय अवसर को न आने देना, अपनी इज्जत बचाना और बँधी मुट्ठी को कायम रखना अच्छा है?" इस प्रकार नाना ने पूछा।

किन्तु पिताजी को यह उपदेश अच्छा न लगा। उन्होंने उत्तर दिया "मेरी इज्जत की मुझे चिंता है, आप की इज्जत का तो कोई प्रश्न नहीं है?

यह सुन नानाजी बोले "हां, मेरी भी इज्जत का सवाल है, और इसी लिए मैं तुम्हारे पास आया हूं। तुम मेरे जामाता हो, इस बात को क्या तुम भूल गये? लोग कहेंगे 'देखो, अमुक के जामाता के घर-द्वार, खेत आदि जप्त हो गये।' तुम्हारी इज्जत के ही साथ-साथ मेरी इज्जत भी तो जुडी हुई है! मेरी लडकी की इज्जत पर्याय से मेरी ही इज्जत है। जरा मेरी बात पर विचार करो, मूर्खों की तरह हठ धारण करना अच्छा नहीं होता!"

पिताजी ने खिन्न हो कर कहा "आप भले ही मूर्ख कहे या और कुछ! आप को ही नहीं संसार-भर को आज मुझे जो जी चाहे कहने का अवसर मिल रहा है; और ऐसा करने का अधिकार भी आप सब को प्राप्त है।"

"कहना ही पडेगा! सहे बिना कैसे रह सकता हूं। भले ही तुम अपने को सरदार मानते रहो! तुम अपने आप को बड़ा सरदार बतलाते रहे, इसी लिए तो मैंने अपनी लड़की दी! अच्छा नजराना और दहेज भी दिया। लडकी का जीवन सुखमय हो सके, इसी आशा पर सब कुछ किया। इस लिए नहीं कि मेरी लडकी की इज्जत धूल में मिल जाय! तुम जो अपने को सरदार बतलाये थे; सो क्या यही तुम्हारी सरदारी है? न तो स्त्री के गले मे फूटा मनिया है न शरीर पर कपड़े; और न घर मे पूरा खाने को! क्या सरदार ऐसे ही होते हैं? दरवाजे पर साहूकार का तकाजे-गीर बैठा हुआ है; और स्त्रियों को अपमान-जनक शब्द सुना रहा है, फिर भी तुम चुप हो! क्या यही सरदारी का लक्षण है? न घर-द्वार का ठीक ठिकाना; और न खेती-बारी या जमीन-जायदाद का ही कोई ढग, फिर भी कहते हो कि हम सरदार हैं! कितनी ठसक थी? तीस वर्ष से सब काम-काज सम्हाल रहे हो, अब तक क्या दिये लगाये है? एक पाई

की भी तो अकल नहीं प्राप्त की ! सभी ने तुम्हें धोखा दे कर लूटा और सब कुछ लेकर निकाल दिया । अरे, अब भी तो आँखें खोलो जरा ! सरदार ! भिखारियों के चिन्ह होते हुए भी ठसक सरदारी की ! खैर, यदि खुद की बुद्धि काम नहीं देती तो कम से कम दूसरे की बात पर तो ध्यान दो ! किन्तु उसे भी तुम नहीं सुनते ? यह क्या छिछोर-पन चला रक्खा है ? इस गधेपन के लिए क्या कहा जाय ? भाऊ ! यह निकम्मी हठ छोड़ दो । मैं जैसा कुछ कहता हू, वह करो ।" इस प्रकार नानाजी पिताजी पर वाक्य-बाण बर्सा ही रहे थे कि इतने में भीतर से माँ आ गई ।

नानाजी के कटु शब्द उससे भीतर बैठे-बैठे सुने नहीं जा सकते थे; फिर भी वह मन मार कर बड़े कष्ट से उन्हें सुन रही थी । किन्तु अब तो उसकी भी सहनशीलता का बाँध टूट पड़ा । वह बाहर आकर नानाजी से कहने लगी "नाना ! तुम इस समय मेरे घर में बैठे हुए हो । तुमने अपनी लड़की एक बार दूसरे को दे दी ! अब उन्हें मनमाने अपशब्द न कहो ! सब उन्हें कंकर मारते हैं, इस लिए तुम भी मत मारो । नाना ! तुम्हारी इस लड़की के ही पुण्य में कोई कसर है कि जिसके कारण आज इस हरे-भरे घर की यह दुर्गति हो रही है; ये बुरे दिन देखने पड़ रहे है ! तुम्हारी लडकी के इस घर मे आने से पहले इनका संसार बडी सुख-समृद्धि का था । उनकी सरदारी का उपहास क्यों करते हो ? अपनी ही लड़की के भाग्य को खोटा कहो ! आज-तक मैंने सुख से खाया-पिया और इज्जत से दिन बिताये, वह सब उन्हीं के पुण्य बल से । मैं अभागिनी हूं ! तुम्हारी पुत्री होते हुए भी भाग्यहीन हूं । उनसे अपनी प्राणाधिक जमीन (खेत) बेची नहीं जाती; नहीं तो न सही । जो कुछ होना है सो तो होगा ही । परन्तु उनका चित्त मत दुखाइये । होने वाली बात हो जाती है, किन्तु चित्त (मन) में लगी हुई चोट जीवन भर सालती रहती है । नाना ! टूटा हुआ मोती फिर जोड़ा नहीं जा सकता । मन के विकृत हो जाने पर, दिल टूट जाने पर, उसे नहीं जोड़ा जा सकता ! इस लिए उनके मन को जरा भी मत दुखाओ । कम से कम मेरे सामने तो उन्हें उलटी-सिधी बातें मत कहो । अपनी पुत्री के सामने ही उसके पति का अपमान करना तुम्हें शोभा नहीं देता ! कैसे ही हों, फिर भी वे मेरे तो पति ही है !

हमारा जो कुछ होना है सो तो होगा ही ! वे भी तो अच्छे ही के लिए सारे प्रयत्न कर रहे है। क्या वे यह चाहते है कि भविष्य मे लड़कों-बच्चों की दुर्दशा हो ? ईश्वर तो सब कुछ जानता है। बुद्धि देने वाला भी वही तो है। नाना ! व्यर्थ अपशब्द कहने के लिए फिर यहां मत आना, अपनी पुत्री और उसके पतिको यदि सदिच्छा-पूर्ण आशीर्वाद देना हो तो भले ही आवे। उसे भी दो मीठे शब्द कह कर आश्वासन देना हो तो यह द्वार खुला हुआ है। तुम्हारा तो केवल आशीर्वाद और प्रेम-भाव ही चाहिये, और कुछ भी नही। न उपदेशकी जरूरत है न गाली या अपशब्द कहने की। नाना ! मैं आज आप के सामने मुह खोल कर इतनी बातें कर रही हूं; इसके लिए मुझे क्षमा कीजिये। नाना ! क्या सचमुच ही इनका घर सरदारों का घराना नहीं था ? सारा गाँव सम्मान करता था, क्या यह आपने अपनी आंखों से नहीं देखा ? किन्तु सभी दिन एक-से नहीं होते ! इस वर्ष यदि सभी आम झड़ गये; तो फिर अगले वर्ष और तो आवेंगे ही। वृक्ष के सूख जाने पर भी फिर उसमे अंकुर निकलते ही है ! नाना ! नाराज मत होना ! मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूं। हमारा जो कुछ होना है सो होगा ही। किन्तु आप आज से उन्हें एक भी मर्म-वचन या अपशब्द मत कहिये। बस, मैं आप से इतनी ही भीख मांगती हू।" यों कह कर मेरी माता सचमुच ही नानाजी के पैर पकडने को आगे बढ़ी।

"उठ बेटी ! उठ, तेरी यही इच्छा है तो मैं अपने घर चला जाता हूं। आज से फिर कभी आकर यहां पैर न रक्खूंगा; समझी। मुझ बूढ़े को क्या गरज पडी है !" यों कह कर नानाजी उठ खड़े हुए।

"नाना ! इस प्रकार अर्थ का अनर्थ मत करो ! उपेक्षा मत करो और इसी प्रकार आते रहो। मैं जिस प्रकार आप की पुत्री हू उसी प्रकार उनकी पत्नी। मुझे सब की ओर देखना पड़ता है। मुझे तो आप की भी आवश्यकता है और उनकी भी। नाना ! भाग्य ने हमारा साथ छोड दिया, भाइ-बन्धूओं ने हमें छोड़ दिया; तब क्या तुम भी हमें छोड़ दोगे ! नाना तुम अवश्य आते रहो। हमारी सुध लेने के लिए बारम्बार आते रहो। अपनी बेटी से मिलने आते रहो ! आओगे नँ ?" यों कहते-कहते माता का गला भर आया।

" कदापि नहीं! अब मैं यहां आकर पाँव तक न रक्खूगा। जहां मेरे शब्दों का मान नहीं, वहां मैं क्यों आऊं?" यों कहते हुए नाना चल दिये।

फिर भी उन्हें सुनाते हुए माता ने कहा "नाना! तुम्हे अपने पेट की बेटी से अपने मुँह का शब्द अधिक प्रिय है?" किन्तु नानाजी चले ही गये। तब माता नें मेरे पिताजी से कहा " चले गये! क्यां करें, जाने दो। आप थोड़ी देर विश्राम करो। सिर पर थोडा-सा तैल मल दूं, क्या? जिससे शांति हो।"

पिताजी ने त्रस्त होकर कहा "इस कर्म-हीन के लिए तैल की क्या आवश्यकता है? तू घर में जा, और मुझे यहां अकेला ही थोड़ी देर पड़ रहने दे।"

गरीब बेचारी माता! चुपचाप घर में चली गई। पुरुषोत्तम सोया हुआ था, उसका ओढना ठीक कर के वह चली गई। किन्तु कहां गई? आपने विश्राम-स्थल तुलसी के आँगन में, उसीके चरण में बैठ कर वह आँसू बहाने लगी। आसपास के विशाल आम्र-तरु स्तब्ध खडे थे। वायु भी मौन था। आकाश भी निःशब्द था। मेरी माता बैठी हुई रो रही थी। वह ऋण उसे रुला रहा था। मेरी माता को वह ऋण-रूपी शत्रु रातदिन रुलता था।

३६ माता का चिन्तामय जीवन

मैं औंध-राज्य में पढ़ने के लिए तो चला गया; परंतु वहा ईश्वर मुझे रखना नहीं चाहता था। मैं ज्यों-त्यों कर के दिन काट रहा था। उस कष्ट-कथा को सुनाने की आवश्यकता नहीं जान पडती। सभी गरीबो को उस तरह दिन काटने पड़ते हैं। मुझे तो अपनी माता के संस्मरण सुनाना है। उनसे सम्बन्ध रखने वाली जितनी बातें होगी, वे ही मैं आप लोगों को सुनाऊंगा।

पूने में मौसी के पास मेरा छोटा भाई सदानंद रहता था। उसे

हम सब यही समझते थे कि हमारे उस अच्छे यशवन्त ने ही फिर जन्म लिया है। किन्तु प्लेग में अचानक ही हमारा प्यारा सदानंद हमें छोड़ कर चल दिया। वह दत्तगुरु-दत्तगुरु कहता चला गया! जाते-जाते वह कहता रहा "वह देखो, मुझे बुला रहे हैं; मैं जाता हूं।"

इधर मैं औंध में था, वहां भी प्लेग शुरू हो चला। एक तो सोने जैसा लड़का चल ही बसा और दूसरा दूर अकेला है, वहां भी प्लेग है, यह सुन कर मेरी माता का हृदय उथल-पुथल हो रहा था! सदानंद का दुःख उसके लिए ताजा ही था। कई दिन बीत जाने पर भी उसकी अश्रु-धारा रुकती नहीं थी। किन्तु वह दुःख कुछ कम हो ही रहा था कि उसे मेरी चिंता सताने लगी। उसका जीवन मानों चिंतामय ही हो गया था।

प्लेग के कारण औंध का स्कूल बन्द हो गया था। बाहर के विद्यार्थियों से घर चले जाने के लिए कह दिया गया; किन्तु मैं कहां जाता? मेरे पास घर जाने के लिए पैसे ही कहां थे? अंत में मैंने अपने पास का कंबल बेचा और कई अच्छी पुस्तकें भी बेच दीं। जैसे-तैसे पांच रुपये जुड़ जाने पर मैं फिर घर की ओर चल दिया। दो-तीन महिने स्कूल बन्द रहने का अनुमान था।

मैं हर्णै बन्दरगाह पर उतरा और वहां से गाड़ी किराये कर के पालगढ़ आ गया। प्रातःकाल मैं गाड़ी से उतरा। उस समय बरगद के पेड़ पर गरुड़ पक्षी जोरों से चिल्ला कर सारे गाँव को जगा रहा था। आस-पास कहीं प्रभाती और कहीं वेदपाठ सुनाई दे रहे थे। मैं किराये के पैसे दे कर अपने घर की सीमा में घुसा। उस समय मुझे बहुत बुरा लग रहा था। मुझे देखते ही माँ को सदानंद का स्मरण हो आने; और उसके जोरों से रोने का भय हो रहा था। धीरे-धीरे मैं आँगन में आया और वहां से चबूतरे पर। उस समय घर में माता मही (छाछ) बिलो रही थी। उस समय वह शांत-भाव से गोपाल-कृष्ण का गीत गा रही थी। वह मधुर गीत इस प्रकार था:—

गोकुल में जाकर कान्हा, माखन-मिसरी तुम खाना।
दहि-दूध छको मनमाना, परब्रह्म-रूप तव जाना॥

है एकमात्र वह राधा, पगली बन तोहिं आराधा।
उस पूर्व-पुण्य के बल से, तेरा दर्शन-व्रत साधा ॥*

मैं बाहर चबूतरे पर खड़ा हो कर गीत सुनता रहा। किवाड़ खुलवाने का साहस न कर सका। किन्तु बाहर भी कब तक खड़ा रहता? आखिर को द्वार खट्खटाया और जोर का धक्का दिया।

भीतर से माँ ने पूछा "कौन है?"

मैंने कहा "तेरा श्याम!"

"श्याम! आगया, मेरा बेटा श्याम आगया! आती हूं बेटा! ठहर!" यों कह कर माता ने फुर्ती से दरवाजा खोला, और मुझे हृदय से लगा लिया। इसके बाद कहा "देवता को प्रणाम कर। ठहर, मैं पहले उनके सामने गुड़ रखती हूं। बैठ जा श्याम! मैं तेरी तरफ आँखें लगाये कब से बाट देख रही थी। उसे तो भगवान ने ले ही लिया। मैंने सोचा कि अब दूसरा भी दृष्टि में आता है या नहीं!" यों कहते-कहते माता का गला भर आया; और उसके साथ-साथ मैं भी रोने लगा।

पिताजी शौच-निवृत्ति के लिए गये थे। उनके आँगन में आते ही माता ने आगे बढ़ कर कहा "सुना आपने! श्याम आगया हमारा! वह अभी ही आया है।" इसके बाद पैर धो कर वे घर में आये और मैंने उन्हें साष्टांग प्रणाम किया। वे कहने लगे "श्याम! मैं नित्य तेरे लिए गणपति का अभिषेक करता था। आगया अंत को तू! अच्छी तरह से तो है? सदानंद चला गया!" यों कहते-कहते उन्होंने आँखों पर दुपट्टा लगा लिया। सदानंद की याद में वे आँसू बहाने लगे।

इसके बाद माता ने कहा "अभी कुछ देर बिस्तर पर लेट जा, बाहर सर्दी है।" तदनुसार मैंने कपड़े खोले और कुल्ला कर के माता के बिस्तर पर जा लेटा। उसकी साड़ी की चौतही को ओढ़ लिया। वह

---

*गोकुळांत खाशी तू दहीं दुध लोणी।
परब्रह्म होतासि तूं नेणें परी कोणी॥
एकमात्र राधा झाली वेडी तुझ्यासाठीं।
पूर्वपुण्यें झाली म्हणे, देवा तुझी भेटी॥

चौतही नहीं थी, वरन् माता का प्रत्यक्ष प्रेम ही मैंने उस रूप में ओढ़ रक्खा था। मैं मानों माता की गोद मे ही सोया हुआ था। उस दिन का वह प्रातःकाल और माता के बिस्तर पर उस चौतही को ओढ़ कर सोना, आजतक मुझे अच्छी तरह स्मरण है। कितनी ही बार मैं रात को सोते समय बिस्तर पर पड़े हुए यह कल्पना करता हूं कि "मैं माता के पास उसकी बगल में सोया हुआ हूं।" यह भावना मेरे जीवन मे ओतप्रोत हो गई है। कितनी ही बार मुझे ऐसा जान पड़ता है कि माता का हाथ मेरी पीठ पर रखा हुआ है! और इस बात को स्मरण कर मेरा हृदय भर आता है।

घर आकर मैं फिर नया-पुराना हो गया, पुरुषोतम मुझे गाँव भर के हालचाल सुना रहा था। मैं भी उसे अपनी कथा सुना रहा था। मैंने उसे बतलाया की "औंध में कैथ (कबीट) के फल के विषय में मेरी कैसी फजीहत हुई! कोंकण में मुर्गी के अण्डे को 'कवठ' कहते है; क्योंकि कोंकण में कैथ के वृक्ष नहीं होते। किन्तु औंध में जब एक मित्र ने मुझसे पूछा "क्यों श्याम! तुझे कवठ (कैथ) अच्छा लगता है?" तो मैं उस-पर नाराज हो गया। दूसरे सब मित्र हँसने लगे। इसके बाद एक दिन औंध में मैं किस प्रकार तालाब में डूबने से बचा, इसकी घटना, वहां की 'यमाई' के मंदिर, जंगल के मोर, आदि सब का वर्णन मैं सुना रहा था। इसी प्रकार पुरुशोत्तम ने भी अपने गाँव के पटैल के जगल में सांप काटने से मर जाने तथा किसी गाय कि जगल में किस प्रकार गोहरे के काटने मृत्यु हुई, सो सब हाल सुनाया। इस तरह कई दिन बीत गये।

अब मुझे घर पर रहते-रहते लग-भग महिना भर हो गया; किन्तु औंध का स्कूल नहीं खुला। फिर भी पिताजी को मेरी बात पर विश्वास न हुआ और वे यही समजते रहे कि वहां मेरी कोई व्यवस्था न हो सकने से मैं हाथ हिलाता हुआ वापस लौट आया हुं। उनकी यह शंका बराबर दृढ़ होती जा रही थी। एक दिन मैं बिस्तर पर लेटा हुआ पुरुषोत्तम से बातें कर रहा था। दोनों भाई एक ही ओढ़ने के भीतर लेटे हुए थे। एक दूसरे के शरीर पर हम हाथ रखे हुए थे। बातें सुनते-सुनते पुरुषोत्तम सो गया। कुछ देर के बाद मुझे भी निंद आ गई।

किन्तु थोड़ी ही देर में मैं चौंक कर एकदम जाग पड़ा। मैंने स्वप्न में देखा कि किसी ऊंचे स्थान से मैं नीचे गिर पड़ा हूं। मैं जग गया, तो उस समय इस प्रकार का संवाद मुझे सुनाई दिया :—

उस समय माता फलियां चुन कर तोड़ रही थी। अगले दिन के शाक-सब्जी की तैयारी हो रही थी। पिताजी भी बैठे हुए फलियां चुन रहे थे। हाथों से काम हो रहा था और मुँहसे बातचीत चल रही थी।

पिताजी बोले "इससे वहां पढ़ा नहीं जाता होगा, इसी लिए आ गया है। प्लेग का तो एक कारण बताने को मिल गया है। क्या अभी तक स्कूल नहीं खुला होगा?"

यह सुन माता ने मेरा पक्ष लेते हुए कहा "वह क्या झूट-मूट कह देगा? वहां उसे कई प्रकार के कष्ट उठाने पड़ते है, फिर भी वह वापस जाने वाला है। यहां मुफ्त खाने के लिए वह कभी पड़ा नहीं रहेगा! मै खुद उसे नहीं रहने दूंगी।"

"उस समय वह गोपाल पटवर्धन रेल्वे में लगा देने को तयार था। अच्छा होता यदि लग जाता। आज कल नौकरी मिलती कहां है? किन्तु तुम माँ-बेटों को वह बात पसंद नहीं आई!" पिताजी ने कहा।

"परन्तु वह अभी से नौकरी करना नहीं चाहता। उसकी इच्छा पढ़ने की है। वह शीघ्रही चला जायगा; घर में नहीं बैठ रहेगा। वह 'खाने को मीठा और काम को ढीठा' नहीं बनेगा" माताने उत्तर दिया।

"तुझे तो तेरे बेटे हमेशा ही अच्छे जान पड़ते हैं। किन्तु अत में मेरी ही बात सच निकलेगी। एक दिन मालूम हो जायगा कि वहां इसका सिलसिला नहीं जमा; इस लिए घर चला आया है।" इस प्रकार पिताजी बारम्बार अपनी ही बात का समर्थन कर रहे थे।

अत में मुझ से नहीं रहा गया और मैं बिस्तर से उठ कर कहने लगा "पिताजी! मैं चोरी से आप की बातें नहीं सुन रहा था, बरन् अचानक नींद खुल जाने से मैं जग पड़ा; और मैंने आप की सब बातें सुनीं हैं। मैं सबेरे ही यहां से चला जाता हूं। फिर भले ही औंध में प्लेग हो या न हो। जब मुझ पर आप का विश्वास ही नहीं तो मैं यहां क्यों कर रहू? मैं केवल खाने या मक्खियां मारने के लिए यहां नहीं आया हू।

प्लेग होने पर भी मैं वहीं रहनेवाला था । व्यर्थ के लिए आने-जाने का खर्च नहीं करना चाहता था। किन्तु बाहर के लडकों को वहां जब रहने नहीं दिया; तभी मुझे घर आना पड़ा है। मैं कल ही चला जाता हूं। माँ कल मैं अवश्य ही यहां से चला जाऊंगा।"

यह सुन माता ने कहा "अरे, तू उनकी बात पर ध्यान मत दे! वहां का प्लेग दूर हो जाने दे, तभी जाना श्याम! मुझ पगली की बात भी मान।"

नहीं, मैं कल किसी तरह भी नहीं ठहरूंगा। कल ही मुझे यहां से रवाना कर दे! पिताजी, मुझे फिर आप से एक बार दस रुपये माँगने पड़ते हैं, कृपा कर उतना प्रबन्ध कर दीजिये। माँ तूं मेरी जरा-भी चिन्ता मत कर! जिसका ईश्वर रक्षक है, उसे कौन मार सकता है ? जिसे जीवित रखना है, उसे वह प्लेग के उपद्रव में से भी बचा लेगा। विस्तृत समुद्र में से भी बचा लेगा।" इस प्रकार मैंने माता से अपना संकल्प प्रकट किया।

"अरे, तू भी तो उन्हीं का बेटा है। तेरा बचपन का हठीला स्वभाव कैसे जा सकता है? जाओ बेटा! कहीं भी जाओ, अछी तरह रहो, यही केवल इतना ही मैं चाहती हूं। मुझ मुई की आँखे भगवान क्यों नहीं मूद देता? कुछ समझ में नहीं आता। अच्छे सोने सरीखे बच्चों को उठा लेतां है और हमें रुलाता रहता है!" इस प्रकार माता ने रोते हुए कहा।

रात बीती और सबेरा हुआ। मैंने माता से कहा "मेरा जाने का विचार निश्चित है। आज नहीं तो महिने भर बाद तो जाना ही पड़ेगा। तेरी आज्ञा मिल जानी चाहिए।"

अत में माता नें आज्ञा दे दी। वह दूसरों पर अपनी इच्छा लादना नहीं चाहती थी। शरणागति ही एकमात्र उसका आधार था। उसने कभी किसी बात का हठ धारण नहीं किया। उसका प्रेम बंधन-कारक नहीं था, वह मुक्तता देने वाला था, स्वतंत्रता देने वाला था।

पिताजी पर नाराज हो कर मैं वापस जाने को तैयार हो गया था। माता का रुदन बंद न हो सका। पेट का एक टुकड़ा प्लेग की भेट चढ़

चुका था; दूसरा फिर उसमें कूदने को जा रहा था। किन्तु वह बेचारी क्या करती? पिता-पुत्र के झगड़े में वह गऊ बेचारी अकारण रुलाई जा रही थी। मैंने माता को प्रणाम किया और पिताजी के पैर छुकर दोनों के आशीर्वाद प्राप्त कर चल दिया। अभागा श्याम! माता की बात न सुन कर चल दिया।

मैं गाड़ी में जा बैठा। मित्रो! मेरे लिए माता के वही अंतिम दर्शन थे। इसके बाद मेरी माता के पार्थिव-रूप में मुझे सजीव दर्शन नहीं हुए। अंत में उस की भस्ममय-मूर्ति के ही मैंने स्मशान मे दर्शन किये। उस समय मुझे इस बात की कल्पना तक न थी कि, मैं माता सदैव के लिए छोड़ रहा हूं; उसके अमृत-मय शब्द अंतिम बार सुन रहा हूं। किन्तु मानवी आशा के विरुद्ध ईश्वर की इच्छा होने का कठोर सत्य मुझे अनुभव करना था।

३७ तैल है तो नौन नहीं....

आज की धूनिया अच्छी नहीं, बार-बार सूत टूटता है। ऐसा मालूम होता है कि रुई अच्छी तरह नहीं पींजी गई। गोविन्द! आज तो पिंजन का काम तूने ही किया था नँ?

इस पर वह बोला "नहीं, आज की पूनीयां श्याम की बनाई हुई है। उसी ने आज यह रुई धुनक् कर तैयार की है!"

इतने ही मैं राम वहां आ गया। उसने यह सुन कर कहा "आज-कल श्याम का चित्त बहुत उदास रहता है। उसका दुखित मन उसे कोई काम नहीं करने देता। हाथों से अच्छी तरह काम होने के लिए चित्त की प्रसन्नता भी एक आवश्यक वस्तु है। नीति में 'मनः प्रसादं सकलार्थ सिद्धिः' कह कर यही बताया गया है।"

"गोविन्द! श्याम इस समय कहां गया है रे!" राम ने पूछा। इस पर भीका ने उत्तर दिया "अभी तो वह ऊपर छत पर था।"

गोविन्द ने कहा " वह उस ऐलाबाई के यहां जाने वाला था, सुना है वह बेचारी बहुत बीमार है!"

"क्या विचित्र नाम है! ऐलाबाई का क्या अर्थ हो सकता है?" भीकू ने पूछा। इस पर राम ने बताया कि "उसका असल नाम है अहिल्याबाई। अहिल्या का अपभ्रंश हो कर ऐला हो गया है। किन्तु हमे तो उस नाम के रूप और अर्थ पर विचार करना चाहिए नँ!"

इस प्रकार दोनों मित्रो को वार्तालाप चल ही रहा था कि तब तक श्याम वहां आ गया। वह पुछने लगा " कहो गोविन्द! क्या कर रहे हो?"

" कुछ नहीं! किन्तु ऐलाबाई की हालत कैसी है?"

श्याम ने कहा "उसे अपने घर-दूसरे गांव भेज दिया हैं।"

" किन्तु क्या वह अच्छी हो जायगी? बच्चे छोटे-छोटे हैं।!"

" किसे मालूम क्या होगा! हम भी तो क्का कर सकते हैं?"

" भीकू! आज तूने बर्तन अच्छी तरह नहीं मांजे। तेरा ध्यान पूरी तरह इस काम में नहीं था, क्यों?" श्याम ने बर्तन देख कर कहा।

" हां, जिस तरह रुई पींजते समय तुम्हारा ध्यान नहीं था!"

" तो क्या आज की पूनियां अच्छी नहीं बनीं?" श्याम ने पूछा।

" हां, उनमें बहुत-सा कचरा रह गया है।" गोविन्द ने कहा।

"किन्तु मेरा तो सूत टूटता नहीं था।" श्याम ने कहा।

" तो तुम्हारी पूनियां पहले की होंगी!" भीका ने उत्तर दिया।

इस पर फिर श्याम ने कहां "नहीं भाई! मैंने आज ही रुई पीजकर, उसी से बनी हुई पूनियां अपने पुडके में रक्खी थी!"

गोविन्द:—मैंने उन्हे बदल लिया था। मेरे पास अच्छी पूनिया थी, वे मैंने उसमें रख दी थी; और तुम्हारी पूनियों से मैंने सूत काता है। मैंने सोचा कि तुम रात में सूत कातते हो, इस लिए तुम्हें व्यर्थ कष्ट होगा!

राम:—श्याम तू देर तक जागता है, यह अच्छा नहीं करता।

श्याम:—परन्तु जब नींद ही नहीं आती तो क्या करूं? योंही पडे रहने से तो सूत कातना अच्छा है।

राम :—किन्तु नींद न आने का कोई कारण? हमें तो खूब गहरी नींद आती है!

श्याम :—तुम सब खूब काम करते हो। अच्छी नींद के लिए दिन में तप (श्रम) करना पड़ता है। शरीर को घिसना पड़ता है।

राम :—तो क्या तू बिल्कुल काम नहीं करता? सबेरे कुए के पास का सब भाग तो तूने ही झाड़-बुहार कर साफ किया था।

श्याम :—परन्तु भीकू, गोविन्द और नामदेव ने मुझे झाड़ने ही कहां दिया? तुम सब तो यह चाहते हो कि मैं कोई काम ही न करने पाऊं! पुण्यवान् तुम्ही बनना चाहते हो, मुझे नहीं बनने देते!

राम :—तेरी तबियत ठीक नहीं थी, इस लिए तुझे काम नहीं करने दिया!

गोविन्द :—लोग आने लगे हैं, अब घण्टी बजा देनी चाहिए।

इसके बाद घण्टी बजी और प्रार्थना शुरू हुई। प्रार्थना के बाद श्याम ने अपनी माता की स्मृतियाँ सुनाना आरंभ किया :—

हमारे घर में अब प्रायः सभी बातों की कठिनाई पड़ने लगी थी। प्रायः सभी चीजों का अभाव हो चला था। तैल है तो नमक नहीं और नमक है तो मिर्च नहीं। इस प्रकार काम धक् रहा था। कभी चूल्हे में जलाने को इंधन नहीं रहाता; तो कभी चुल्हा सुलगाने और दूध की कढाही के नीचे लगाने को कण्डे नहीं रहते। माँ बेचारी इधर-उधर से ढूढ़ कर कुछ लकड़ियां बीन लाती। कभी आम के सूखे पत्ते ही हाथ लगते; और उन्हीं के सहारे उस बेचारी को भोजन बनाना पड़ता। कभी भाजी छौंकने को तैल तक नहीं होता, उस समय माता के अश्रु ही उसकी पूर्ति करते; और उनके स्वाद से दो ग्रास कंठ के नीचे उतारे जाते थे। क्या करती बेचारी! जैसे-तैसे इज्जत बचा कर दिन बिता रही थी। मेरे नाना-नानी भी पालगढ में नहीं थे। वे अपने लड़कों के पास पूना-बम्बई की ओर चले गये थे। इस प्रकार नाना के घर में कोई न होने से ताला लगा रहता था। माता अब घर के बाहर तक नहीं निकलती थी। प्रथम तो उसके शरीर में ही अब शक्ति नहीं रही थी, दूसरे उसे

किसी के घर जाते हुए शर्म भी लगती थी। इसी लिए वह बेचारी घर में बैठी रहती थी।

उन दिनों हमारे गाँव मे एक पेन्शनर सज्जन आकर रहने लगे थे। यद्यपि वे असल में हमारे गाँव के रहने वाले नहीं थे, तो भी पालगढ़ की आब-हवा अच्छी और वहां ब्राह्मणों की वस्ती अधिक होने के साथ ही; हमारे गाँव के गणपति पर उनकी बड़ी श्रद्धा-भाक्ति थी, इस लिए वे वहां आकर रहने लगे थे। हमारे घर के पास ही उन्होंने जमीन खरीद कर एक अच्छा-सा बँगला बनवा लिया था।

माता की इन नये पड़ौसी से जान-पहचान हो गई। पेन्शनरिन् बाई बहुत भली थी। उनका स्वभाव भी बहुत प्रेमी और दयापूर्ण था। इस लिए माता खाली वक्त मे उनके यहां जा बैठती; और कभी-कभी वे भी हमारे यहां आ जाती थीं। एक दिन माँ ने उससे कहा "राधाबाई! यदि तुम्हारे यहा कोई काम हो तो मैं कर दिया करूंगी! पीसना या दलना होगा तो वह भी कर दूगी। इससे मुझे थोड़ी-सी मदद मिल जायगी।" राधाबाई तो शहर मे रह चुकी थीं। और उन्हें नक्द पैसा दे कर आटा पिसवाने की आदत पड़ी हुई थी। इस लिए उन्होंने माता को पीसने का काम देना स्वीकार कर लिया। बेचारी माँ के शरीर में शक्ति ही कहां थी! किन्तु फिर भी क्या करती? पिताजी प्रातःकाल जब उठ कर बाहेर चले जाते; तो वह चक्की चलाने लग जाती थी। पाठशाला का समय होने तक छोटा पुरुषोत्तम उसकी मदत करता। इसके बात वह अकेली ही पीसती। थोड़ी-थोड़ी देर ठहरती जाकर वह पीसना खत्म कर देती। उस समय वह सोचा करती कि "यदि आज यहा श्याम होता तो वही अकेला पीस डालता।" इसके बाद वह मेरे घर से रूठ कर चले जाने की बात का स्मरण कर रोने लगती। पीसते-पीसते उसकी आँखें भर आतीं, गला रुँध जाता, हृदय भारी हो जाता, हाथ थक कर रुक जाते। उस कड़े परिश्रम की पिसाई कर के वह जो चार पैसे प्राप्त करती, उसी में से नमक, तैल और गृहस्थी की आवश्यक चीजें मँगा लेती थी।

दिवाली के दिन निकट आ रहे थे। घर में तैल की कुछ अधिक

आवश्यकता थी। दो-चार दीपक भी जलाने चाहिए थे। एक समय ऐसा था, जब हमारे घर में दिवाली के दिनों में प्रतिदिन घड़ाभर तैल दीपक जलाने में खर्च होता था। सैंकड़ों दीपक जलते थे। किन्तु माता के लिए अब तो उनकी स्मृति-मात्र ही शेष रह गई थी। फिर भी उसके सामने यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि 'इस बार दिवाली कैसे मनाई जाय?' इसी प्रश्न को हल करने के विचार से माता ने उन पेन्शनरिन् बाई से कहा "यदि मैं तुम्हारे घर के कपड़े-लत्ते आदि धो दिया करूं तो कैसा? और भी जो काम मेरे लायक हो वह अवश्य बतलावें, मैं उसे कर दूंगी।"

उन पेन्शनरिन् बाई की लड़की नैहर में आई हुई थी। उसका नाम था इन्दुमति। वह प्रसूति से उठते ही बीमार हो गई थी। वह बहुत निर्बल हो रही थी। इसी लिए जलवायु पलटने को वह यहां आई थी। राधाबाई ने कहा "क्या हमारी इन्दु के शरीर में तैल की मालिश आदि करने; और उसके बच्चे की लोई आदि कर के स्नानादि कराने का काम तुम कर सकोगी?"

माता ने कहा "अवश्य; मैं बड़ी प्रसन्नता से यह सब कर दूंगी! मुझे यह काम अच्छी तरह आता है। पहले कई वर्ष हुए मेरी चन्द्रा भी इसी प्रकार यहां आयी थी; तब भी मैं ही यह सब काम करती थी।

इस प्रकार माता प्रतिदिन सूर्योदय होते ही इन्दुमति के शरीर की मालिश कर उसे नहलाने आदि के लिए जाने लगी। और चक्की पीसने का समय उसने तीसरे प्रहर का रक्खा। माता सच्चे मन से उसका काम करती थी। इन्दु के शरीर पर तैल की मालिश करते समय उसे यही प्रतीत होता; मानों मैं अपनी ही लड़की के शरीर की मालिश आदि कर रही हू। उस छोटे बच्चे को भी लोई आदि कर के स्नान कराने में उसे बड़े सुख का अनुभव होता था। उस बच्चे को पैरों पर लिटा कर उसके कोमल किन्तु पिल्पिले तालू पर तैल लगा कर वह बड़े प्रेम से गीत आदि सुनाने लगती थी। जिस दिन से माता ने उसे लोई कर के नहलाना आरंभ किया; उसी दिन से उसकी हालत सुधर चली। उसका शरीर बढ़ने लगा और वह पुष्ट एवं तेजस्वी दिखाई देने लगा। इधर इन्दु की हालत भी

बदलने लगी। उसके फीके चेहरे पर थोडा-थोड़ा तेज दिखाई देने लगा। वह प्रसन्न रहने लगी।

राधाबाई को माता की इस सेवा के लिए बड़ी श्रद्धा हो गई। महिना समाप्त होते ही उन्होंने माता के हाथ पर दो रुपये रख दिये। माता ने कहा "दो की क्या आवश्यकता? एक ही बहुत है।" उन्होंने कहा "नहीं, यशोदाबाई रहने दो! दिवाली आ गई है। तुम जिस सच्चे मन से काम करती हो, उसकी भी कहीं कोई कीमत हो सकती है? मनःपूर्वक किये हुए काम की कीमत ठहरानी नहीं पड़ती।"

माता ने घर आकर ठाकुरजी के सम्मुख सिर झुका दिया। उसने कहा "भगवान! मेरी लाज तेरे हाथ है।" इसके बाद उन दो रुपयो में से उसने थोडा-सा घी और तैल मँगवाया। एक नारियल भी मँगाया। थोडे-से गुजिये और कुछ अनरसे (एक खाद्य-पदार्थ) तैयार किये। दिवाली के चारों दिन उसने घर के द्वार पर दो-दो दिए भी जलाये। भैया-दूज के दिन पुरुषोत्तम इन्दु के घर गया था। इन्दु ने उसकी आरती की; और पुरुषोत्तम ने एक चवन्नी भेट रक्खी। पटाखों के बदले माता ने पुरुषोत्तम के लिए एक हवाई बन्दूक बांस की लम्बी नली मे तीन छेद कर के बना दी; और उसमें रखने की गोली भी तैयार कर दी थी, जिन्हें उस बन्दूक में डाल कर पुरुषोत्तम जोरो की आवाज करता था। गोलियाँ समाप्त होने पर पारिंग (एक वृक्ष) की पत्तियाँ भर कर वह बन्दूक चलाता। उसने पटाखो के लिए जरा भी हठ नहीं किया।

परन्तु इस अपरिमित परिश्रम के कारण माता, जो कि पहले ही से थक चुकी थी; उस क्लान्त दशा में कितने दिन जी सकती थी? उसे बुखार आने लगा और साथ ही थोडा-सा श्वास भी भरने लगा। फिर भी जब तक गाडा धकेला जा सका, तब तक वह चुप न बैठी। तुलसी विवाह (कार्तिक शुक्ला ११) का दिन आ गया। पुरुषोत्तम जंगल में जाकर आँवले, इमली आदि ले आया था। साथ ही वह कहीं से गेंदे के फूल भी ले आया था। तुलसी का विवाह हो गया। उसे हल्दी-कुकुम लगाते हुए माता ने कहा "तुलसी देवी! जब तक मेरी इज्जत बनी हुई है, तब तक तू मुझे सौभाग्यवती रख कर भगवान के घर भेज दे! बस, यही मेरी प्रार्थना है।"

३८ इज्जत पर पानी

श्याम ने कहना आरंभ किया :—

"अंत में उस मारवाडी ने हम पर मामला चलाने का निश्चय कर लिया। अदालत में मामला पेश हुआ और मुकादमा चलने लगा। न्यायाधीश ने साहुकार का रुपया लेना ठीक बता कर हमारी सारी जायदाद जप्त कर लेने; और उसे नीलाम कर के कर्ज चुकाने का हुक्म दे दिया।

उस दिन गाँव में डुगडुगी पिटने वाली थी! दो दिन से माता गले के नीचे एक ग्रास तो क्या अन्न का दाना तक नहीं उतरा था। रात भर उसकी आँख से आँख नहीं लगी। वह दिनरात यही प्रार्थना करने लगी "हे जगदंबे! क्या तेरे रहते हुए भी इस घर की इज्जत मिट्टी में मिल जायगी? अरे, इन कानों में उस डुगडुगी की अमंगल ध्वनि सुनाई देने के बदले मेरे प्राणों को तू क्यों नहीं खींच लेती! ले ले, माँ, अब तो तू मुझे अपनी शरण में लेकर शांति प्रदान कर।"

पुरुषोत्तम स्कूल गया था। पीछे से माँ को जोरों का बुखार चढ़ा; और वह बिस्तर पर पड़ी हुई तड़पने, रोने, लगी।

सबेरे नौ बजने का समय था। एक महार ढोल गले मे लटकाये गाँव में डुगडुगी पीट रहा था। वह स्थान-स्थान पर खडा हो कर "आज दो-पहर को भाऊराव के घर द्वार की जप्ती होगी" आदि बातें चिल्लाते हुए कहता और ढोल पीट देता था। दूसरे की बेइज्जती होने पर सुखी होने या आनन्द अनुभव करने वाले कुछ व्यक्ति प्रायः सभी स्थानों में होते हैं। वहां भी ऐसे लोगों को प्रसन्नता हो रही थी। किन्तु बेचारे खानदानी और कुलीन प्रतिष्ठित लोगों के चित्त को इस घटना से दुख हो रहा था।

महार डौंडी पीटता हुआ स्कूल के पास आया; और वहां भी उसने उन्हीं शब्दों को दोहरा कर के ढोल पीटा। सब लडकों ने सुना। महार तो ढोल बजा कर चल दिया; किन्तु दुष्ट प्रकृति के लडके मेरे छोटे भाई को चिढाने लगे। वे उस डौंडी पीटने वाले की नकल कर के मेरे भाई के

पीछे लग जाते; और कहते कि "आज पुरुषोत्तम के घर की जप्ती होगी। ढम्-ढम्, ढम्!" बेचारा पुरुषोत्तम इन शब्दों को सुन कर रोने लगा। उसकी आँखों से आँसू बह चले। वह मास्टर के पास जाकर कहने लगा "क्या मुझे घर जाने की छुट्टी देंगे?" यह सुन मास्टर ने उसे डाँटते हुए कहा "कहां जा रहा है? बैठ नीचे! आधे घंटे बाद छुट्टी हुई जाती है।" कठोर-हृदय मास्टर उस कोमल अंतःकरण वाले बालक की मनोदशा को कैसे समझ सकता था?

दस बजे छुट्टी हुई। उस समय भी दुष्ट लड़कों ने मेरे भाई की बहुत दुर्गति की! उन्होंने उसे बेतरह सताया। वे ढम्-ढम्-ढम्-ढम् करते हुए उसके पीछे पड़ गये। वह रोता हुआ घर आया और आकर सीधा माता से जाकर लिपट गया। वह कहने लगा:—

"माँ, सब लड़के मुझे चिढ़ाते हैं! वे ऐसा क्यों करते हैं? वे कहते हैं, तेरे घर की जप्ती होगी! गोबर के दिये जलाये जाएँगे! माँ, वे सब ऐसा क्यों कहते हैं री! वे मेरे पीछे ही पड़ गये थे! क्या माँ! हमें यहां से बाहर निकाल देंगे? माँ! तुझे क्या हो गया?"

"बेटा, जो कुछ भगवान की इच्छा! मैं भी तुझे क्या बताऊं?" इस प्रकार कहते हुए उसने पड़े-पड़े ही पुरुषोत्तम को छाती से लगा कर अश्रुधारा से स्नान करा दिया। माँ बेटे उस समय शोक-सागर में डूब गये। अंत में साहस-पूर्वक माता ने कहा "जा बच्चे, हाथ-पाँव धोकर राधाताई के यहां भोजन कर आ। इन्दु ने तुझे बुलाया है।"

छोटा बच्चा! वह क्या समझ सकता था! सीधा राधाबाई के घर भोजन करने चला गया।

उस दिन पिताजी ने भोजन नहीं किया। स्नान कर के पूजादि के बाद वे मंदिर में चले गये। वहां जाकर उन्होंने देवता का पूजन किया। शर्म लगती रहने पर भी वे देवता की पूजा के लिए मंदिर में गये ही। गर्दन नीची किये हुए वे मंदिर में गये और उसी तरह वापस लौट आये। जिस गाँव में वे सरदार कहलाते और पंच माने जाते थे, जहां प्रत्येक व्यक्ति उनका सम्मान करता था; उसी गाँव में उस दिन कोई कुत्ता भी उससे बात नहीं पूछता था। जिस गाँव में

वे ठाटपाट से रहे और उनके शब्दों को सिर आँखों पर चढाया जाता था, वहां आज छोटे-छोटे बच्चे भी उनकी खिल्ली उडाते थे। जहा फूल चुने थे, वहीं आज गोबर उठाने का प्रसंग माता के लिए उपस्थित हो गया। आज-तक ज्यों-त्यों कर के माता ने दिन काटे थे; किन्तु ईश्वर तो उसकी कठोर परीक्षा लेने को ही तुला बैठा था। वह मेरी माता को सन्मान का उच्च शीखर और अपमान की गहरी खाई, दोनों ही बातों का अनुभव कराना चाहता था। पूरा सुख और पूरा दुःख दोनों ही बातों का ज्ञान तो होना ही चाहिए! अमावास्या और पूर्णिमा दोनों ही के दर्शन होने चाहिए। वह महान् जननी इस संसार का पूरा ज्ञान मेरी छोटी माता को करा देना चाहती थी।

दो-पहर को पुलिस, मुंशी, पटवारी, साहुकार, गवाह आदि सब हमारे घर आ खड़े हुए। घर में भोजन बनाने के लिए चार बर्तन छोड़ कर शेष सब वस्तुएँ उन्होंने एक कोठरी में बंद कर दीं। माता के शरीर पर कोई जेवर तो बचा ही न था; केवल मणि-मंगलसूत्र ही शेष था। इस लिए जो कुछ भी सामान दिखाई दिया, उसे उठा कर साहुकार ने उस कोठरी में रख दिया और ताला लगा कर सील-मुहर कर दी। हमारे रहने के लिए अत्यंत कृपा-पूर्वक दो कोठरियां छोड़ दी गईं।

उन लोगों के वापस जाने तक माता खड़ी हुई सब कुछ देख रही थी। वह केल के वृक्ष की तरह थर-थर काँप रही थी। शरीर में ताप (ज्वर) और भीतर मनस्ताप होने से वह भीतर-बाहर दोनों तरफ से भुनी जा रही थी। उन लोगों के हटते ही माता धड़ाम् से गिर पड़ी। "माँ, अरी माँ!" कहता हुआ पुरुषोत्तम रोने लगा। पिताजी ने माता को सम्हाल कर बिस्तर पर सुलाया। थोड़ी ही देर में चेत होने पर वह कहने लगी, "जिससे डर रही थी, वही बात सामने आई! अब तो जीना और मरना दोनों ही समान हैं!"

३९ माता की अन्तिम बीमारी

श्याम आज बीमार हो गया था। उसके शरीर में बुखार था। वह आँखें बन्द किये हुए पड़ा था।

गोविन्द ने पूछा "श्याम! क्या तेरे पाँव दबा दूं?"

किन्तु उसने यही उत्तर दिया कि "नहीं, मेरे पैर दबाने से क्या होगा? मेरी सेवा की आवश्यकता नहीं है। तुम लोग अपना-अपना काम करो। उस मोहन पटैल का थान जल्दी से बुन दो। जाओ, मेरे पास बैठ रहने से क्या होगा? मैं तो भगवान का नाम लेता हुआ चुप-चाप पड़ा रहूंगा। मेरी चिन्ता छोड़ दो।"

राम ने कहा "अरे भाई, ऐसा क्या करता है? जब गाँव मे कोई बीमार पड़ता है तो हम उसकी खबर लेने जाते हैं; तब अपने आश्रम में ही यदि कोई बीमार हो जाय तो क्या उसके पास बैठना उचित नहीं है?"

"लेकिन क्या मैं इतना बीमार हूं? तुम लोगों का मुझ पर अत्यंत प्रेम है, इस लिए मैं यदि पेटभर भोजन भी कर लूं तो भी तुम यही समझते हो कि मैं भूखा रहा गया हूं। मैं बीमार न भी होऊं तो तुम मुझे बीमार बना देते हो। तुम लोग तो पागल से हो रहे हो। अरे, जब कोई सन्निपात आदि हो जाय तो भले ही तुम मेरे पास बैठना। किन्तु वैसे तो मुझे इसी में संतोष है कि तुम काम-काज में लगे रहो। गोविन्द जाओ, राम तू भी जा रुई पींजने के लिए।" इस प्रकार श्याम के कहने पर सब लोग चले गये।

सायंकाल के समय श्याम की हालत कुछ ठीक थी। वह बिस्तर पर बैठा हुआ सूत कात रहा था। साथ ही मुँह से मधुर श्लोक भी बोल रहा था:—

तेरे सिवाय कुछ भी न सूझे। तेरे चरण मंगल-मूल जूझे।
तेरा रहे नित्य अनन्य ध्यान। गाऊं सदा मैं तव कीर्तिगान॥

तेरी रहे नित्य अनन्य भक्ति। होवे कपट से मुझ को विरक्ति।
गाऊं सदा केवल एक छंद। गोविन्द हे माधव ! हे मुकुंद ॥*

"क्योरे ! अभी से कैसे आगये ?" श्याम ने पूछा।

"तो क्या तुम रात को कहानी सुनाओगे ?" एक बच्चे ने पूछा।

"हां, रात को ही कहानी सुनाऊगा। तुम सब आना !" श्याम ने कहा।

"ये देखो, हम तुम्हारे लिए बहुत अच्छे पत्थर लाये हैं। हम उस टेकडी पर टहलने गये थे।" यों कह एक लडके ने वे सब पत्थर श्याम के पास रख दिये।

"सचमुच, बड़े सुन्दर है। आओ, हम इनसे तोता बनावें।" यों कह कर सचमुच ही श्याम उन ककड़ों से तोता बनाने लगा। लडके एक-एक पत्थर दे रहे थे। अत मे श्याम ने कहा "अब तो बस, चोंच के लिए केवल एक लाल पत्थर और चाहिए।"

"यह लो ! देखो, कितना सुंदर है !" यों कह कर एक लड़के ने लाल पत्थर उसे दिया; और श्याम ने उसे लगा कर सुंदर तोता तैयार कर लिया।

"अब मोर बनाओ, मोर !" एक दूसरे लडके ने कहा।

इस पर श्याम ने उत्तर दिया कि "अब मोर तो तुम्ही लोग

उसने कहा "हमे अच्छा बनाना नहीं आता।"

यह सुन श्याम ने कहा "अब तुम लोग घर जाकर जल्दी से भोजन कर आओ ! फिर प्रार्थना कर के कहानी सुनाएँगे"

इस पर एक समझदार लडका बोला "हां-हां, चलो, हम सब जल्दी से घर जाकर भोजन कर आवे।" इसके बाद वे सब पक्षी उड गये।

श्याम उन रगीत कंकडो की ओर देखता रहा। इसके बाद यह सोच कर कि इन "छोटे छोटे कंकडों में कितना सौन्दर्य भरा हुआ है" वह उन्हें

*सुचो रुचो ना तुजवीण कांहीं। जडो सदा जीव तुझ्याच पायीं॥
तुझाच लागो मज एक छंद। मुखांत गोविंद हरे मुकुंद॥
तुझाच लागो मज एक नाद। सरोत सारेच वितंड वाद॥
तुझा असो प्रेमळ एक बंध। मुखांत गोविंद हरे मुकुंद॥

हृदय से लगाने लगा। मानों सौंदर्य-सागर परमात्मा की ही वे सब मूर्तियाँ न हों! भक्त को जहाँ-तहाँ ईश्वर की ही मूर्ति का दर्शन होता है; इस बात का उसे किंचित् अनुभव हो रहा था। उसके मुख-मण्डल पर एक प्रकार की कोमलता दृष्टि-गोचर हो रही थी।

गोविन्द, राम, नामदेव आदि सभी उसके पास आ पहुँचे। आते ही राम ने पूछा "श्याम! वह तेरे हाथ मे क्या कोई फूल है?"

इस पर श्याम ने कहा "अरे, मैं अपने मलिन और पापी हाथों से कभी फूलों को स्पर्श भी करता हूं? मैं तो उन्हें दूर से ही सिर नवाँता हूं।"

"तो फिर तुम्हारे हाथ में क्या है?" नामदेव ने पूछा।

"ईश्वर की मूर्ति" श्याम ने कहा।

"लेकिन तुमने अपनी गणेशजी की मूर्ति तो बाबू को दे डाली है नँ?" भीकू ने पूछा।

"हा, किन्तु मेरे पास तो कई मूर्तियां हैं!" श्याम ने उत्तर दिया।

"अच्छा, देखने दो, कैसी मूर्तियाँ हैं!" यों कह कर गोविन्द ने श्याम का हाथ पकड़ कर मुट्ठी खोली तो उसमें से हीरे-माणिक निकल पड़े।

"हां, यही मेरे हीरे हैं। यही मेरे देवता हैं! लोग कहते हैं कि समुद्र के तलभाग में मोती होते हैं, और पृथ्वी के गर्भ मे हीरे होते हैं; परन्तु मुझे तो प्रत्येक नदी की वालू और प्रत्येक टेकड़ी के सिरे पर हीरे-मोती दिखाई देते हैं। देखो इनका कितना चमकदार रंग है!" यों कह कर श्याम उन्हें वे कंकड दिखाने लगा।

इसके बाद राम ने पूछा "श्याम आज भी तू कुछ सुनाएगा?"

"हां-हां, अवश्य सुनाऊंगा। मैंने उन लड़कों से कहा है कि तुम झटपट जाकर भोजन कर आओ! उन्होंने लाकर ये सुंदर कंकड दिये हैं। उन्होंने यह आनंद देकर मेरा उत्साह बढ़ाया। मैं अब तो दो घंटे तक बोल सकूगा। प्रार्थना का समय हुआ होगा नँ? हो गया हो तो घंटी बजाओ!" श्याम ने कहा।

प्रार्थना की घंटी बजी। श्याम कपड़ा ओढ़ कर बैठ गया। प्रार्थना समाप्त हो जाने के बाद उसने कहना आरंभ किया:—

"जप्ती के समय हमारी दूधवाली दादी घर पर नहीं थी। वह

कहीं बाहेर गाँव को गई थी। यह बाद में वापस आई। किन्तु माता ने तो उसी दिन से बिस्तर पकड़ लिया। उसके शरीर मे दिनरात बुखार रहने लगा। उस बेचारी की शुश्रूषा करने वाला भी तो कोई नहीं था। दादी से जो कुछ हो सकता था, वह करती थी। राधाबाई भी बीच-बीच में आ जातीं, और कभी-कभी माँ को आँवले का मुरब्बा आदि दे जाती थी। कभी पित्तशामक मात्रा भी अद्रक के रस में देती रहती। जानकी मौसी और अन्य स्त्रियाँ भी उसकी खबर पूछने आती रहती थीं।

परन्तु अब घर में काम कौन करता? पडौसिन के शरद को स्नान कौन कराता? इसी लिए माता को जो दो रुपये मिल रहे थे वे भी बन्द हो गये। पिताजी के आने पर दूबवाली दादी क्रोध के मारे झल्लाती रहती थी।

वह कहती "मुई रसोई ही कैसे बनाई जाय? चूल्हे में जलाने को लकड़ी की एक सींक तक नहीं, कण्डे का एक टुकड़ा तक नही, भाजी में छौंकने को तैल की बुंद नहीं, नमक की कंकड़ी तक नहीं; तब क्या उसे यो ही उबाल कर रख दू?"

किन्तु फिर भी मेरे पिताजी उन्हें शांति-पूर्वक यही उत्तर देते कि "द्वारिका काकी! तुम तो हमे केवल भात ही उबाल कर परोस दिया करो। हमारी इज्जत तो जा ही चुकी है। अब उसे तुम और मत नष्ट करो!"

उस दिन माँ ने पुरुषोत्तम से कहा "बेटा, तू अपनी मौसी को एक पत्र लिख। उसमें मेरा सारा हाल लिखना। अब अंतिम समय वही काम आएगी! पत्र मिलने पर वह अवश्य चली आएगी। राधाबाई से मैंने एक पोष्टकार्ड देने को कहा है, सो तू उनके यहां जाकर ले आ। नहीं तो फिर इन्दुमति को ही बुला कर ले आना, वही अच्छा-सा पत्र लिख देगी। जा तो बेटा, झटपट उसे बुला कर ले आ।"

पुरुषोत्तम ने जाकर इन्दु से कहा और वह कार्ड लेकर आ गई।

आते ही उस प्रेम-मयी लड़की ने कहा "यशोदाबाई! क्या तबियत कुछ अधिक खराब जान पड़ती है? क्या थोड़ा सिर दबाऊं?"

"नहीं इन्दुमति, तूने पूछा यही बहुत है। दबाने से तो सिर और भी अधिक दुखता है। तुझे तो मैंने पत्र लिखने को बुलाया है। मेरी बहन

सखू को पत्र लिखना है। उसे सब समाचार विस्तार से लिखना है। वह बेचारी पत्र पढ़ते ही चली आवेगी। किन्तु पत्र कैसे लिखना चाहिए, यह तो तू ही अच्छी तरह जान सकती है।" माता ने कहा।

यह सुन इन्दुमति ने अच्छे ढंग से पत्र लिख दिया; और पता लिख देने के बात पुरुषोत्तम जाकर उसे लेटर-बॉक्स में छोड़ आया। इतने ही में इन्दुमति के घर से शरद के जगने की खबर आने से वह चल दी।

"बेटा, थोड़ा-सा पानी तो पिला!" यों कह कर माता ने पुरुषोत्तम से पानी माँगा। वह भोला बच्चा एकदम ग्लास भरकर मुँहे में डालने लगा। तब माता ने समझाया "ऐसे नहीं बेटा, चमचे से मुँहे में डाल, अथवा संध्या की आचमनी से थोड़ा-थोड़ा कर के पिला, यदि चम्मच न मिले तो..." पुरुषोत्तम ने माता की आज्ञानुसार उसे पानी पिलाया।

"आओ, जानकी जीजी, बैठो!" जानकी मौसी समाचार पूछने आई थी। उन्होंने पूछा "क्या थोड़े-से पैर दबा दू?" माँ ने कहा "नहीं जीजी, दबाने से तो उल्टे ये हाड़ दूखने लगेंगे! तुम तो मेरे पास ही बैठो तो मुझे संतोष होगा।"

कुछ ही देर के बाद मौसी ने पूछा "आंवले की बर्फी के टुकड़े ला दूं क्या? उनको मुँह में रखने से जीभ में थोड़ी-सी रुचि उत्पन्न होगी!"

"लादो, थोड़ा-सा टुकड़ा।" माता ने क्षीण-स्वर में उत्तर दिया।

"चल रे पुरुषोत्तम, तुझे यह टुकड़ा दे देती हूं। लाकर यहां माँ को दे देना।" यों कहते हुए जानकी मौसी चली गई। पुरुषोत्तम भी उनके साथ गया; और उनकी दी हुई आँवला पाक की बर्फी का टुकड़ा उसने माता के मुँह में डाल दिया। वह उसे चूसने लगी और पुरुषोत्तम बैठा रहा।

थोड़ी ही देर के बात माता ने उसकी पीठ पर प्रेम-पूर्वक हाथ फेरते हुए कहा "जा बेटा, थोड़ी देर को बाहर खेल आ। स्कूल में मत जाना। जिस दिन मेरी तबियत ठीक हो जाय, उसी दिन स्कूल जाना।"

पुरुषोत्तम खेलने चल गया।

तीसरे प्रहर नर्मदा मौसी माँ की खबर पूछने आई। वह मेरी माता की बचपन की सहेली थी। उसकी सुसराल भी उसी गाँव में थी।

दोनों सखियाँ बचपन में गुड्डे-गुड्डी आदि से साथ ही खेला करती थीं। दोनों ने झूले पर बैठ कर स्तवन के गीत गाये थे, और एक जगह ही दोनों ने मगला-गौरी का पूजन किया था। वे एक दूसरी के घर बहनोली बन कर भी गई। नर्मदा मौसी बारम्बार माँ की खबर पूछने नहीं आ सकती थी। उनका घर गाँव के दूसरे सिरे पर था; साथ ही उसकी तबियत भी ठीक नहीं थी।

मौसी के आते ही माँ ने पूछा" आओ बहन! कैसी तबियत है? तेरे पाँव में सूजन आ गई थी, अब क्या हाल है?"

"अब ठीक है बहन! चंपे के पत्तों से सकने के कारण सूजन उत्तर गई है। किन्तु तेरा क्या हाल है? तू तो निरी हड्डियों की माला ही बन गई। तेरे शरीर में से बुखार ही नहीं निकलता!" इस प्रकार मौसी मेरी माता के शरीर पर हाथ फेरने लगी।

"नर्मदे, तेरे साथ पुरुषोत्तम आवेगा, इसे थोड़ा-सा तैल एक कटोरी में दे देना। घर में तैल की एक बूंद तक नहीं है। काकी चिल्लाती हैं। तू तो सब हाल जानती ही है। मैं तुझ से क्या कहूं! तू भी तो घर की कोई धनवान नहीं है। गरीब ही है बहन तू भी। किन्तु फिर भी मेरे लिए तू कोई परायी नहीं है, इसी लिए तुझ से मैंने यह बात भी कही।" इस प्रकार माता ने मौसी से कहा।

"हां-हां बहन। इसमें क्या बुरी बात है। तू अपने चित्त को बुरा न लगने दे। तेरा सच्चा रोग तो यही है। अभी इन बच्चों को तेरी जरूरत है। यशोदा! घबराएं मत, थोड़ा-सा धैर्य धर!"

"नर्मदे! अब तो जीने की जरा भी इच्छा नहीं है। मेरी सब इच्छाएँ पूर्ण हो चूकी हैं। सारे मनोरथ पूरे हो गये!" माता ने कहा।

"अरी, संध्या-समय ऐसी बात मुँह से नहीं निकालनी चाहिए। कल तेरे लिए नर्म-पतला भात बना कर लाऊंगी। तू खायगी नँ?" इस प्रकार नर्मदा मौसी ने बड़े आग्रह से पूछा।

यह सुन माता ने आँखों में आँसू भर कर कहा "अब तो यही इच्छा है कि भगवान मेरी आँखें बंद कर दे। कितना लज्जामय जीवन है यह!"

"अरे, यह क्या कहती है बहन! तू तो अच्छी हो जायगी फिर तेरे वे अच्छे दिन आएँगे! तेरे श्याम और गजानन नौकरी करेंगे और तुझे सुखी बनाएँगे! क्या गजानन की कोई नौकरी लग गई है?" मौसी ने पूछा।

"हां बहन, पिछले महिने में ही नौकरी मिली है; परन्तु केवल उन्नीस रुपये वेतन है। बम्बई में रह कर वह बेचारा खायेगा क्या और पहनेगा क्या? और यहां हमारे लिए क्या भेजेगा? वह कुछ लड़कों को पढ़ाता है। परसों ही उसने पांच रुपये भेजे हैं। बेचारा पेट काट कर काम करता होगा!"

"श्याम को तेरी तबियत खराब हो जाने की खबर दे दी है क्या?" इस प्रकार मौसी ने पूछा। किन्तु माता ने कहा कि "मैंने उन्हें मना कर दिया कि श्याम को खबर मत देना। वह बेचारा वहां पढ़ रहा होगा। व्यर्थ उसके चित्त में क्यों चिंता उत्पन्न की जाय! और उसके पास यहां आने के लिए पैसे भी तो नहीं होंगे! यहां आने के बाद फिर वापस जाने पर उसके लिए पैसों का प्रबन्ध करना पड़ेगा। पैसे बिना ये लम्बी यात्राएँ कैसे हो सकती हैं? यहां छावनी में पास था; तब तो इच्छा होते ही आ-जा सकता था! किन्तु वह बेचारा विद्याध्ययन के लिए दूर गया है। उसे परमात्मा सुखी रक्खे यही बहुत है। मेरा क्या है?" माता ने कहा।

नर्मदा मौसी चलने लगी तो माता ने कहा "अरी कुंकम तो लगा ले बहन! उधर टांक मे डिबिया रखी है।" मौसी ने कुंकम लेकर अपने कपाल पर लगाया और माता के सिर पर भी। इसके बाद वह चली गई।

"माँ, यह देख मौसी की चिट्ठी आई है। मैंने सारी पढ़ ली। क्या तुझे पढ़ कर सुनाऊं?" यों कह कर पुरुषोत्तम ने मौसी का पत्र पढ़ सुनाया। मौसी के अक्षर बड़े साफ और जमे हुए थे। मौसी आ रही है, यह जान कर माता को प्रसन्नता हुई। इतने ही में इन्दुमति आगई। उससे माता ने कहा "इन्दु, कल सखू आ जायगी। तूने पत्र

लिखा था न ? यह देख उसका उत्तर। अरे! दे तो वह पत्र इन्दु जी-जी को!" इस प्रकार माँ ने पुरुषोत्तम से कहा।

इन्दुमति ने पत्र पढ़ कर कहा "मैं अवश्य उनसे मिलूगी। तुम उनकी बहुत-सी बातें सुना चुकी हो। मैं चाहती थी कि कब उनको देखू।" इतने ही में राधाबाई ने इन्दु को पुकारा। वह उठ खड़ी हुई और बोली, "पुरुषोत्तम, चलो मेरे साथ! हमारे घर 'सांजा' (मसालेदार दलिया) बनाया है।" माता ने भी पुरुषोत्तम से जाने के लिए कहते हुए समझाया "जा बेटा, ये कोई पराये लोग नहीं है"

पुरुषोत्तम के चले जाने पर पिताजी माता के पास आकर कहने लगे "मेरे कारण ही आज तेरी दुर्दशा हो रही है। आज मैं तुझे पूरी तरह खाने-पीने को भी नहीं दे सकता! मैं अभागा हूं। परतु मैं भी तो क्या करूं ? जो कुछ भगवान की इच्छा।"

"अरे, आप यह क्या कहते है। इस तरह यदि आप ही हिम्मत हार जाएँगे; तो बेचारा वह अबोध पुरुषोत्तम क्या करेगा? उसे धैर्य दीजिये। आप भी चित्त में कोई अन्य भावना मत लाइये। आप ही के जीवन-प्राणों पर मैंने सब कुछ किया, सारे सुख भोगे। वैभव का जीवन बिताया। मेरे लिए किस बात की कमी थी ? अब ये कष्ट के दिन आये हैं तो ये भी निकल जाएँगे। इन बच्चों का पुरुषार्थ-वैभव यदि मैं न भी देख सकू तो भी क्या है ? आप तो देखेंगे! मैं आप की आँखों में आ बसूगी नाथ।" माता समझाने लगी।

इस पर पिताजी ने कहा "अरी, तूं इतना क्यों घबराती है! तू भी अच्छी हो जायगी। वह सखू आ कर तुझे अच्छा कर देगी।"

"अब व्यर्थ को झूठी आशा रखने से क्या लाभ है! भीतर से तो सारा वृक्ष खोखला हो गया है। अब तो यह गिरेगा ही। मेरे लिए तो सोने (स्वर्ग) का दिना उगेगा। मैं भरे हाथों सौभाग्यवती होकर जाऊगी। केवल इसी बात का दुःख है कि पीछे से आप की खबर लेने वाला कोई नहीं है। नहीं तो मेरे लिये आज भी किस बात की कमी है! आप की गोद मे मृत्यु आवे; इससे बढ़ कर भाग्य की बात और क्या हो सकती है ? इस सौभाग्य के सम्मुख सारे ही सुख तुच्छ हैं। इस सौभाग्य के आनन्द के

कारन मुझे सारे ही दुःख आनंद-प्रद प्रतीत हो रहे है।" यों कहते-कहते माता ने अपना गर्म हाथ पिताजी के चरणों की ओर बढ़ाया। बोलने के कारण वह थक गई थी। पिताजी ने उसका हाथ बीच में ही थाम लिया।

उसने पिताजी से कहा "पानी! थोड़ासा पानी आप के हाथ से पिलाइये।" पिताजी ने झारी में से थोड़ा-सा पानी पिलाया।

"आप के हाथ से पिया हुआ पानी गंगाजल के समान ही है। वह अमृत-तुल्य है, किम्बहुना उससे भी अधिक मीठा है। बस, अब आज आप मेरे पास ही बैठे रहिये, कहीं जाइये मत! मैं आँखे मून्द कर आप का ध्यान करती हूं।" यों कह कर पिताजी का हाथ अपने हाथ में लिये हुए आँखें बंद कर के माता ध्यान करने लगी। वह दृश्य बड़ा ही पवित्र, रोमांचकारी, प्रेममय और करुणार्द्र था।

इतने ही में राधाबाई आगई; और पिताजी को वहां बैठा देख वापस जाने लगीं। किन्तु उसी क्षण मेरे विनयशील पिता यह कहते हुए बाहर चले गये कि "आओ इन्दुमति की माँ, बैठो," राधाबाई आकर माँ के पास बैठ गई। उन्होंने माता के बालों पर हाथ फिरा कर सामने आये हुए बाल ठीक कर दिये। इसके बाद पूछा "तो क्या तुम्हारी बहन कल आवेगी?"

इस पर माता ने कहा "हां राधाबाई! इन्दुमति ने ही तो पत्र पढ़ा है।"

"मुझ से भी उसी ने कहा। अच्छा है। अपना निजी व्यक्ति पास में रहने से चित्त को संतोष है।" राधाबाई ने उत्तर दिया।

"मेरे लिए तो सभी अपने हैं। वे पास में हैं। तुम्हारा पड़ौस है। इससे अधिक और क्या चाहिए?"

कुछ देर बैठ कर राधाबाई चली गई।

सबेरे मौसी आ रही थी; इस कारण पुरुषोत्तम बहुत ही जल्दी उठ बैठा; और तभी से वह बराबर गाड़ियो की आवाज सुन रहा था। जहाज से उतर कर आने वाले मनुष्यो को लेकर बैलगाड़ियाँ प्रातःकाल ही पालगढ़ आती हैं। अपने दरवाजे पर जैसे ही किसी गाड़ी के रुकने की आवाज सुनाता कि; तात्काल पुरुषोत्तम बाहर जाता और तब तक गाड़ी

आगे बढ जाती । अंत में एक गाडी आकर हमारे दरवाजे के सामने खडी हो गई ।

दादी ने कहा "पुरुषोत्तम, यह तो अपने दरवाजे पर ही ठहरी है।" दादी उस समय चौका लगा रही थी। पुरुषोत्तम दौड कर गया। पिताजी भी बाहर आये। मौसी आ गई थी। पुरुषोत्तम कंडिया उठा कर लाया और पिताजी ट्रंक ले आये। मौसी ने अपना बिस्तर उठाया था। किराया लेकर गाडी वाला चला गया।

"माँ, यह देखें मौसी आ गई! सचमुच ही आ गई, देखु तो!" यों कह कर पुरुषोत्तम ने माँ को जगाया। वह एक स्वप्न देख रही थी।

"आ गई! अच्छा किया! अब मेरा मार्ग साफ हो गया।" यों कहते हुए माता कुछ सावधान और किंचित् अचेत दशा में पडी हुई थी। मौसी आकर माँ के पास बैठ गई। आज कई वर्षों के बाद दोनों बहनें मिलीं थीं। माँ के उस अस्थि-चर्म-मय शरीर को देख कर मौसी के नेत्रों में पानी भर आया।

"जीजी!" मौसी ने माँ को पुकारा। उस आवाज में, उन दो अक्षरों में मौसी का स्नेहपूर्ण उदार अंतःकरण भरा हुआ था।

"आगई सखू! बैठ! मैं तेरी ही बाट देख रही थी। कहती थी देखें कब आती है। परन्तु तू बहुत जल्दी आई। मैं अपने प्राणों को कण्ठ में ही रखे हुई थी। सोच रही थी कि तू आ जाय; तो तेरी गोद में इन बच्चों को सोप कर अपनी जीवन-यात्रा पूरी करू!" इस प्रकार कहते-कहते माता रोने लगी।

मौसी ने कहा "जीजी! यह क्या पागल जैसी बात करती है। अब मैं आगई हूं; तो तू अवश्य अच्छी हो जायगी। थोडी-सी हालत सुधरसे ही मैं तुझे पुरुतोत्तम के साथ अपने घर ले जाऊंगी। अब तो मुझे नौकरी मिल गई है।"

"नहीं, अब कहीं आने-जाने की जरूरत नहीं! अब तो केवल परमात्मा के ही घर जाने दे सखू! इसी कुटिया में ही शरीर छूटने दे। मैंने अत्यंत आग्रह कर के यह मकान बनवाया—यह स्वतंत्र झोंपडा खडा करवाया था! इस लिए अब यहीं, इसी राजभवन में मेरा शरीर छूटे,

यही कामना है। उनकी गोद में, तेरे पास रहते हुए मौत आ जाय, यही अच्छा है। 'माँ मरे, किन्तु मौसी जिये' की कहावत यथार्थ सिद्ध हो। सखू! तेरे न कोई लड़का है न बच्चा। तेरा ससार परमात्मा ने शीघ्र ही समेट लिया। मानो उसने तुझे मेरे इन बच्चों के ही लिए निर्माण न किया हो! इन बच्चों को अब तू ही सम्हालना, तू ही इनकी माँ बनाना!" इस प्रकार माता कह रही थी।

" जीजी, यह तू क्या कह रही है! इस तरह कोई कहता भी है? तुझे अधिक बोलने में कष्ट हो रहा है, इस लिए चुपचाप लेट जा। मैं जरा तेरा सिर सुहलाती हूं।" यों कह कर मौसी ने अपना गर्म कम्बल (ब्लांकेट) माँ को उढा दिया। जीवन-भर में यह पहली ही बार माता के शरीर ने ब्लाकेट का स्पर्श किया था। चीथड़ों और रुई के गूदड़ के सिवाय यह बेचारी कुछ जानती ही नहीं थी।

इसके बाद मौसी माता का सिर सुहलाने लगी। उस समय वहां गंगा-यमुना का पावित्र्य दिखाई देता था। वह उषा और निशा का गंभीर मिलन था।

---

४० "सभी प्रेम से रहो"

श्याम की कहानी आरंभ हो चुकी थी। दूर कुत्ते भौंक रहे थे। गाँव के बाहर कुछ भटकते हुए वडार जाति के लोक ठहरे थे। उन्हीं के ये कुत्ते थे।

सखू मौसी दिनरात मेरी माता की ऐसी सेवा कर रही थी। मानों वह रोगियों की परिचर्या का ज्ञान जन्मजात ही रखती न हो। वह जन्मजात परिचारिका थी। उसने माता के लिए साफ बिछाना बिछाया, और अपने बिस्तर में की चद्दर भी उसने माता के नीचे बिछा दी; तथा सिर के नीचे साफ तकिया रख दिया। एक कटोरी में सूखी राख भर कर थूकने के लिए रख दी। साथ ही उसपर तख्ते का एक टुकड़ा ढक्कन

के रूप में रख दिया। उस कटोरी को मौसी खुद ही साफ करती थी। हर तीसरे दिन मौसी कोठरी के किवाड बन्द कर गर्म पानी में भीगे हुए (टॉवेल) रुमाल की निचोड़ने के बाद धीरे-धीरे माता का शरीर पोंछ देती थी। वह साथ में थर्मामीटर भी लाई थी। उसने दिन में कई बार बुखार भी देख लेती थी। बुखार अधिक बढने पर वह कोलन-वॉटर की पट्टी भिगो कर माता के सिर पर रखती थी। वह माता की कमर के नीचे मोमजामा बिछा कर उसी पर कागज रख देती; और लेटे हुए ही शौच-निवृत्ति कराती थी। इसके बाद उस कागज को हटा कर दूसरा कागज रख देती थी। वह माता की अधिक से अधिक जितनी परिचर्या कर सकती थी, उसमें कोई कसर न पड़ने देती थी। उसने माँ को चावल देना बन्द कर शुद्ध ताजे दूध की बन्दी लगा दी। सुबह जमाया हुआ दही व रातकी बिलोती; और रात का सवेरे। इतने बाद वह उसे छान लेती जिसमें कि मक्खन न रह जाय। इस प्रकार वह छाछ का पानी दोनों वक्त माँ को दिया जाने लगा। आते समय वह मौसम्बी भी लाई थी; अतएव थोडा-थोड़ा उनका रस भी वह माता को पिलाती रहती थी। जीवन-भर में जैसी परिचर्या नई हुई थी, वैसा उत्तम प्रबन्ध मौसी ने दो दिन में शुरू कर दिया। जन्म-भर उसने कष्ट भोगे, परन्तु मरने के पहले मौसी नें उसे पूरा-पूरा आराम पहुँचाया। इसे प्रकार मौसी मानों मूर्तिमान सेवा का रूप धारण कर हार्दिक-भाव से माँ की परिचर्या कर रही थी। यह अत्यंत निरलस और स्वाभाविक-रूप से सब काम करती थी।

माँ ने पूछा "क्योंरे! वह मथी सबेरे ने म्याऊँ-म्याऊँ कर रही है, क्या उसे भात नहीं दिया खाने को?" माँ की उस प्यारी बिल्ली का नाम मथी था। वह इतनी अच्छी बिल्ली थी कि चौका तो दूर, कभी दूध की मटकी में भी मुँह नहीं डालती थी। उसके लिए चुल्लू भर दूध दे देने से संतोष हो जाता था। बड़ी अच्छी बिल्ली थी। इसी लिए माँ बीमारी में उसका ध्यान रखती थी।

मौसी ने कहा "जीजी, मैंने खुद उसके सामने दूध और घी सहित भात रक्खा, परन्तु उसने मुँह तक नहीं लगाया, सूंघ कर ही चली गई। खालिया होगा कोई चूहा; इस लिए नहीं खाती होगी।"

माता ने कहा " नहीं सखू, उस बेचारी के पेट में दुखता होगा, या और कोई बात होगी। वह बेचारी क्या मुँहसे कह सकती है कि मुझे क्या कष्ट है! मूक पशु है बेचारी ! "

माँ का रोग बढ़ता ही जा रहा था। उसके कम होने के कुछ भी चिन्ह नहीं दिखाई देते थे। बम्बई से मेरा बड़ा भाई चार दिन की छुट्टी लेकर माँ से मिलने के लिए आया था। उसकी नई नौकरी थी। छुट्टी मिलती नहीं थी। बड़ी प्रार्थना करने पर चार दिन की छुट्टी मिली थी।

माँ की दशा देख कर उसका जी भर आया। वह रोते हुए कहने लगा " माँ, तेरी यह क्या दुर्गति हो रही है! माँ, तू यहां नित्य चक्की चलाती और शक्ति से बाहर का परिश्रम करती थी; और हम वहां चैन से दोनों वक्त भर पेठ खाते थे; जब कि तुझे एक बार भी भर पेट तो क्या अधूरा भोजन भी नहीं मिलता था। " छोटे पुरुषोत्तम ने उसे सब हाल सुना दिया था। माँ को किस प्रकार कष्ट भोगने पड़े; कैसे जप्ती की डुग्डुगी पिटी, वह सब हाल इसने कह दिया था। दादा का हृदय फटने लगा। फिर भी माता ने कहा " घबराओ मत बच्चों; यह तो संसार का धन्धा चलता ही है। इस शरीर को अच्छा खाने को दिया तो क्या; और बुरा दिया तो क्या? जब तक ईश्वर को यह यंत्र चलाना है, तभी तक यह चलेगा। इस लिए तू दुखी मत हो बेटा! तुम भी तो कहां परदेश में चैन से रहते हो! दिन-भर परिश्रम करना पड़ता है! उस दिन तूने पांच रुपये भेजें तो मैंने अपने को धन्य समझा। उन्नीस रुपयों में से तूने पांच रुपये यहां भेजे, यह देख कर मेरे शरीर पर मूठ भर मांस चढ गया! बेटे की ओर से आये हुए पहले मनीआर्डर को पाकर उन्हें भी बड़ा आनन्द हुआ। अब मुझे कुछ भी चिंता नहीं है। तुम्हें तैयार कर देना मात्र ही मेरा काम था! तुम अच्छे निकले; यही मेरे लिए परम संतोष की बात है। तुम्हें अधिक द्रव्य मिले या न मिले, इसकी मुझे चिंता नहीं, तुम्हारे पास गुणों की संपत्ति है, यही मेरे लिए परम संतोष का विषय है। श्याम औंध में है ही, पुरुषोत्तम को इसकी मौसी तयार कर देगी। तुम परस्पर प्रेमभाव बनाये रखना और एक दूसरे

को छोड मत बैठना। " इस प्रकार मानों माता, सब कुछ समझा बुझा कर जाने की तैयारी कर रही थी।

" माँ ! मैं यहीं रहुगा तेरे पास। ठीक है न माँ ! वह नौकरी कर के भी क्या करना है ? यदि इस अवस्था मे भी माता की सेवा न कर सका, तो ऐसी नौकरी से क्या लाभ ? मुझे नौकरी की जरा भी इच्छा नहीं है। तेरे चरणों की सेवा से बढ़ कर मेरे लिए अपने अफसर की खुशामद नहीं हो सकती। माँ, तेरी सेवा, तेरी चरण-सेवा में ही मेरा कल्याण है। मेरा भाग्य, मेरी मुक्ति और मेरा सर्वस्व सब कुछ तू ही है। माँ, तू जैसी आज्ञा देगी, वही मैं करूगा। मैं इस्तीफा लिख कर साथ लाया हू! उसे भेज दूं न ?" इस प्रकार दादा, भरे हुए कण्ठ से माता के सामने मनोभाव व्यक्त कर रहा था।

माता ने विचार कर के धीरे से कहा "गजू! अभी तो सखू मौसी यहां है! नौकरी पहले तो मिलती नहीं, उसमें भी जब बडी मुश्किल से नौकरी मिली है; तो उसे कायम रख कर तू पांच रुपये महिना यहां भेजता जा! पांच नहीं यदि दो-दो रुपये भी भेजे तो हानि नहीं; किन्तु हर महिने याद रख कर भेजते रहना। उनकी सेवा में ही मेरी सेवा है। मैं अभी इतने ही में नहीं मर जाउगी। उतनी भाग्यशालिनी मैं नहीं हूं। मैं तो इसी प्रकार धीरे-धीरे मरूंगी। यदि फिर कुछ कम-ज्यादा तबियत हुई तो तुझे खबर करवा दुंगी। इसी प्रकार आकार फिर तू मुझ से मिल जाना।

दादा वापस बम्बई जाने के लिए चल दिया। अभागे श्याम की तरह अभागा गजानन भी चल दिया। उसे इस बात की कल्पना तक नहीं थी कि माता का यह अंतिम-दर्शन है। चलते समय जब उसने के चरणों में प्रणाम किया, तो माता ने अपना दुर्बल हाथ उसके सिर और पीठ पर फेर कर मूक भाव से मंगल आशीर्वाद दिया। और कहा "जा, बेटा! मेरी चिंता मत करना। श्याम को पत्र में मेरी अच्छी होने की ही खबर लिखना। उसे व्यर्थ की चिंता न हो जाय। सब लोग आनन्द से रहना, एक दूसरे को अंतर मत देना। "

... भारी अंतःकरण लिये हुए दादा चला गया। कर्तव्य-वश उसे जाना पड़ा। सच है, संसार की गति बड़ी गहन है।

४१ दीप-निर्वाण

"उस नीबू को थोड़ा-सा पानी सींच दो, नहीं तो वह सूख जायगा। और कटहल के उस नये पौधे को भी पानी देना।" इस प्रकार माता सन्निपात की अवस्था में बकवाद कर रही थी। किन्तु उस दशा में भी वह अपने लगाये हुए नए पौधों को ही देख रही थी। बीमार और निर्बल होते हुए भी वह वृक्षों के नीचे नई मिट्टी और खाद आदि डाल कर पानी सींचती रहती थी। साथ ही वह यह भी देख लेती थी कि उनके पत्तों को कीड़े आदि तो नहीं खा रहे हैं! आँगन में माता के हाथ के लगाये हुए कितने ही पौधे थे। मैं दापोली में रहते समय चंदन का 'रोप' ले गया था। और सब पौधे तो सूख गये, परन्तु वह चंदन का पौधा अब भी लहलहा रहा था। क्या प्रेम पूर्वक लगाया जाने और प्रेम से सींचा जाने के कारण ही वह बचा था?

प्रातःकाल का समय था। माँ वात (सन्निपात) में बड़बड़ा रही थी। उसकी बातों में परस्पर संबंध नहीं था। कभी तो वह वृक्षों का पानी पिलाने के लिए कहती; और कभी जप्ती की डुगडुगी पिटने की बात कह कर कानों में उंगली लगाने लगती थी। केवल पुरुषोत्तम ही सोया हुआ था। शेष सभी व्यक्ति माता के आसपास बैठे हुए थे। सबके मुँह उतर गये थे। मलीन हो रहे थे। मानों उस घर में मृत्यु ही आ बैठी थी।

"वह देखो, उस खूंटी पर श्याम बैठा हुआ है। नीचे आ रे, लुच्चे। बचपन का हठ अभी तक नहीं छूटा। इधर मेरे पास आ बेटा! माता से हठ न करे तो और किस से करेगा? किन्तु अब बस कर बेटा! इधर मेरे पास आ!" इस प्रकार माता मुझे याद कर रही थी।

"जीजी! ओ जीजी!" इस प्रकार मौसी माता को पुकार रही थी। उसे होश में लाने का प्रयत्न कर रही थी।

"नर्मदे! मैं तेरा तेल वापस न कर सकी; नाराज न होना बहन! श्याम! जरा इधर आकर तेरा ठण्डा हाथ मेरे सिर पर तो रख बेटा!"

माता के इन शब्दों को सुन सब की आँखें डबडबा आईं। किसी के मुँह से एक शब्द तक न निकल सका। सब लोग स्तब्ध—मौन थे।

"आप की गोद ही मेरी इज्जत-आबरू है। वह डुगडुगी पीट रहे हैं तो पीटने दो। मेरे लिए तो आप के चरण और मस्तक पर कुंकुम रहना ही बहुत है। फिर मेरी इज्जत कौन ले सकता है? कौन-सा साहुकार मेरी इस इज्जत-सौभाग्य को छीन सकता है? मेरी इज्जत क्या वस्त्राभूषण या घर-द्वार या खेती-बारी में है? उनके चरण, उनकी गोद और उनका प्रेम ही मेरा सर्वस्व-सौभाग्य है। लाओ, उनकी गोद में मेरा सिर रख दो।" यों कह कर वात के जोर में माता उठने लगी। वह किसी से सम्हाली न गई। बड़ी कठिनाई से सब ने मिल कर उसे बिस्तर पर लिटाया।

पिताजी ने माता की इच्छानुसार उसका सिर अपनी गोद में रख लिया। उसने माँगा "पानी-पानी, थोड़ा-सा पानी!"

मौसी ने माता के मुँह में चम्मच से पानी डाला। इसके बाद पुकारा "जीजी!" किन्तु माता स्थिर दृष्टि से उसकी ओर देखती रही। इसके बाद "कुछ नहीं, कुछ नहीं" कह कर उसने हाथ हिलाया। फिर कुछ देर माता शांत रही; और तब उसने पूछा "ले लिया मेरा सिर अपनी गोद में!"

पिताजी ने कहा "हां, देख! मैं तेरे पास ही तो बैठा हुआ हूं। अब अधिक बोले मत!"

कुछ देर के बाद वह फिर उसी वात की हालत में कहने लगी "आ, बेटा! तू मुझसे मिलने के लिए आया है? चद्रावती भी आई? आओ, तुम सब इधर बैठ जाओ! अरे, पर श्याम! तू पढ़ना छोड़ कर क्यों आ गया? तेरे पास तो मैं हमेशा ही बनी रहती हू, और तू भी मुझसे दूर नहीं है। फिर भी जब तू आ ही गया है तो आ. बैठ मेरे पास! इस प्रकार रुठे मत श्याम! अब मैं तुझे चक्की चलाने के लिए साथ बैठने को नहीं कहूगी! अब समाप्त हो गया। आ जा श्याम! अरे; नहीं क्या कहते हो, वह देखो, मुझे सामने ही तो अपना श्याम

खड़ा दिखाई देता है! हां, वह श्याम ही है! उसे तुम पहचान नहीं सके, इस लिए क्या; मैं—माता—भी उसे नहीं पहचान सकती ? "

इस तरह बड़ी कठिनाई से वह रात बीती। दिन निकलते ही मौसी ने पुरुषोत्तम से कहा "जा रे, राधाबाई के यहां से हेमगर्भ की मात्रा लाकर रख ले।" हेमगर्भ की मात्रा मनुष्य को अन्तिम क्षण में दी जाती है; इससे दस-पांच मिनट तक मनुष्य के हृदय की धड़कन् और भी बनी रहती है। मौसी को माता के चिन्ह कुछ अच्छे नहीं दिखाई दे रहे थे। एक ही रात में माता की आँखें बहुत गहरी चली गई थीं।

उस दिन सकष्टी-चतुर्थी थी। पिताजी को उपवास था। किन्तु जब से वे अशक्त हो गये, तब से दो-पहर को थोड़ा-सा फलाहार करने लगे थे। माता ने कहा "आज चतुर्थी है नँ ! जाओ स्नान करो और थोड़ा-सा फलाहार कर लो। व्यर्थ मेरी चिंता में अपनी दुर्गति मत कर डालो! जाओ कुछ खा-पी लो।" इस प्रकार थोड़ी-थोड़ी बातें वह बड़े कष्ट के साथ कह रही थी। उसके आग्रह के अनुसार पिताजी उठे और स्नान कर के मंदिर मे गये। उधर से आते समय वे गणेशजी का चरणामृत लाये और वह माता को पिलाया गया।

इसके बाद माँ ने पुरुषोत्तम को अपने पास बुला लिया, और उसके मुँह पर बड़े ही प्रेम से हाथ फिराया एव अत्यन्त क्षीण स्वर में कहा "बेटा अच्छी तरह रहना, निरर्थक हठ मत कर बैठना। तेरे भाई हैं, मौसी है, इनकी आज्ञा में चलना, अच्छी तरह बरतना।" यह सुन पुरुषोत्तम रोने लगा। फिर भी माता उसकी पीठ पर बराबर हाथ फेर रही थी।

कुछ देर बाद माँ ने पूछा "सखू! सब ने खा लिया क्या ?"

मौसी ने कहा "हां, जीजी! सब ने खा-पी लिया।"

"सखू! ये सब तेरे ही हैं! माँ मरे और मौसी जिये। पुरुषोत्तम, श्याम सब तेरे ही हैं। गजानन, चंद्रा भी तेरे ही हैं।" इस प्रकार माता मौसी को सब अन्तिम बातें समझा रही थी।

"हां, जीजी!" मौसी ने कहा "श्याम गरीब स्वभाव का है और चंद्रा, गजू का भी ईश्वर है। सब का आधार वही है।" इस प्रकार

लड़खड़ाते हुए स्वर में रुक रुक कर कह रही थी। बड़ी देर में वह एक-एक शब्द बोलती थी।

सब लोग माँ के आसपास बैठे हुए थे। बूढ़ी दादी की ओर देख कर माँ ने कहा "क्षमा करना काकी! जो कुछ बोल-चाल में भूल हुई हो, उसे विसार देना।" इन शब्दों से दादी भी द्रवित हो उठी। इस प्रकार बड़ी देर के बाद एक एक शब्द रुक-रुक कर माता के मुख से निकल रहा था।

"सखू! नाना (पिता) से कहना कि क्षमा करें। मैं उनकी लड़की ही तो हूं। अपनी बाई-बेटी को क्षमा करें।"

फिर शान्त। इसके बाद बीच-बीच मे माता आँखें फिराने लगती, और कभी आँखे बंद कर लेती। अंत में "श्याम" एक ही शब्द निकला!

मौसी ने कहा "जीजी, आज ही मैं उसे आने के लिए पत्र लिखती हूं!" इसके बाद मौसी ने मेरे पिता से कहा कि "ब्राह्मण को बुला कर गो-प्रदान का संकल्प करवाइये।"

मरते समय गऊ दान करने का विधान है। यदि गाय न हो तो निष्क्रय-रूप से 'गो-प्रदान' का संकल्प छोड़ा जाता है। इसी लिए माता के हाथ से भी 'गो-प्रदान' का संकल्प छुड़वाया गया।

माता से बोला न जा सका। उसकी वाणी बद हो गई। वह केवल आँख खोल कर देखने लगी। पुरुषोत्तम के शरीर पर हाथ फेरते हुए वह बीच में ही ऊपर की ओर उंगली उठाती; और ईश्वर के घर जाने की बात सूचित करने लगती। बहुत देर के बाद वह शरीर की समस्त शक्ति को एकत्रित कर पिताजी से बोली "तुम शरीर को सम्हालना, व्यर्थ कष्ट मत भोगना। मैं सुख से इस गोद में—" आगे नहीं बोला गया।

सब लोग शांत थे। माता का उर्ध्व-श्वास शुरू हो गया! गाँव के वृद्ध वैद्य कृष्णाजी आये। उन्होंने नाड़ी देख कर खिन्न स्वर में कहा "केवल आधी घड़ी शेष है।" इसके बाद वे चले गये। पड़ौस में से राधाबाई और जानकी मौसी भी आ गई थीं। नर्मदा मौसी बैठी हुई थी और इन्दुमति जीजी भी थी।

उस समय वहां स्मशान-शांति छाई हुई थी। माता के जाने में अब किसी को शंका नहीं रह गई थी।

पिताजी बोले "बेचारे श्याम और चंद्रा न मिल पाये। गजू तो मिल गया। इस पर जानकी मौसी ने पूछा "परन्तु उनको भी याद तो किया ही होगा न!"

माता के होट हिलते से दिखाई दिये। कदाचित् उसे कुछ कहना था, या कोई बात बतलानी थी; परन्तु उससे बोला नहीं जाता था। वे होट 'राम' कह रहे थे या 'श्याम?' उसी समय राधाबाई ने हेमगर्भ की मात्रा घिस कर तैयार की; और भीतर खिंचती हुई जीभ पर उसे लगा दिया। क्षण भर के बाद ही माता के मुँह से निकला "सब अच्छी तरह रहना।"

इसके बाद राधाबाई ने उसके कान के पास मुँह ले जाकर जोर से कहा "तुम्हें और कुछ कहना है?" माता ने 'नहीं' का संकेत किया।

घर में मृत्यु की छाया तो एक दिन पहले ही से छा गई थी। वह केवल अंतिम क्षण की प्रतीक्षा कर रही थी। इसके बाद फिर एक बार माता ने सारी शक्ति लगा कर कहा "सब सावधान रहना, ईश्वर रक्षक है।"

इसके बाद अंतिम लक्षण दिखाई देने लगे। जीभ खिंचने लगी। अंतिम समय आ गया। भगवान के घर जाने का समय आ गया। वह मंगल-मुहूर्त आ गया! राधाबाई ने गंगाजल लाकर उसकी तो बूंद मुँह में डाल दीं। तुलसीपत्र रख दिया। बिस्तर से उठा कर माँ को कम्बल पर लिटा दिया गया। ईश्वर के घर विरक्त हो कर जाना पडता है।

कुछ ही क्षण बीते होंगे कि 'राम' शब्द सुनाई दिया। मेरी उस पुण्यमयी जननी के मुख से राम निकल गया। वह हम सब को अथाह सागर में छोड़ कर चली गई। बुलावा आया और वह चल गई। उस बुलावे पर कोई जाने से इन्कार नहीं कर सकता। श्याम की माँ चली गई! पिताजी की पुण्याई चली गई। पुरुषोत्तम के सिर पर का कृपाछत्र उठ गया। श्याम और गजानन के जीवन की स्फूर्तिदात्री देवी प्रेममयी माता चली गयी। चंद्रा का नैहर चला गया। नाना नानी की प्यारी बेटी चली गई! नौकरों की दयामयी माता चली गई! जगत् के जंजाल से छूट कर माता उस जगत्-जननी की गोद में प्रेम की ऊष्णता प्राप्त करने चली गई।

४२ भस्ममयी मूर्ति

माता के पास मैं नहीं था। दूर देश में पढ़ रहा था। माता की सेवा न कर के पढ़ रहा था। किन्तु माता की सेवा की जा सके, इसी उद्देश्य से पढ रहा था। उसी रात को माता ने स्वप्न में आकर मुझ से कहा "क्यौरे ! तू मिलने नहीं आया ? तुझे क्या उन्होंने खबर नहीं दी ? उस दिन जो रुठ कर गया; सो अब तक तेरा रोष नहीं उतरा ? छोटे बच्चों का क्रोध तो शीघ्र ही दूर हो जाता है, फिर तेरा क्यो नहीं हुआ। इधर आ, मेरे पास !" सबेरे उठने पर इस स्वप्न की बात सोच कर मेरा जी व्याकुल हो उठा। मैं सोचने लगा कहीं आज माता बहुत बीमार तो नहीं हो गई ? यदि मेरे पख होते तो उड़ जाता। किन्तु बड़ी दूर की यात्रा है। दो दिन तो वहां पहुँचनें में लग जाते है। रेल, जहाज और बैल-गाड़ी, कितनी लम्बी यात्रा !

मेरा जी अकुला रहा था। क्षणभर के लिए भी चैन नहीं थी। बरावर अच्छी हुई कि घर जाकर माँ से मिल जाऊं ! परन्तु खर्चा ?

वहां मेरी एक नये मित्र से पहचान हुई थी। उसका नाम भी नामदेव ही था। भक्तराज नामदेव का पंढरपूर के पांडुरंग पर जितना प्रेम और जितनी भक्ति थी; उतना ही प्रेम और भक्ति-भाव उस नामदेव का इस श्याम पर था। मानों वह मेरा ही हो गया था, और मैं उसका। "यूयं यूयं वयं वयम्" कह कर हम कितनी ही बार अपना भाव व्यक्त करते थे। वह मेरे मन की बात पूरी सूने बिना ही सब समझ लेता था ! गुरु नानक देव की वाणी में कहा गया है कि:—

"अन बोलत मोरी विरथा जानी। अपना नाम जपाया।"

केवल भगवान का नाम लेने की आवश्यकता है। उसे हमारे दुःखों का तो बिना कहे ही पता है। नामदेव भी मेरे समस्त सुख दुःख जानता था। मेरा जीवनग्रंथ, हृदयग्रंथ वह पढ़ सकता था। मेरी आँखें और मेरी चर्या को वह भलीभांति पहचान सकता था। मानों, हम परस्पर एक दूसरे के रूप ही न बन रहे हो ! मानों, दो शरीरों में एक ही मन, एक ही हृदय था ! अथवा हृदय और मन से हम दोनों जुड़े हुए थे।

मैंने कहा "नामदेव! मेरी घर जाने की इच्छा हो रही है। माता बहुत बीमार जान पड़ती है। सवेरे से बेचैनी बढ़ रही है।"

"तो फिर जाकर मिल क्यों नहीं आता?" उसने कहा।

"मैं माँ को आँखें भर कर देख आउगा, परन्तु खर्च के पैसों का क्या हो?"

"अरे, कल मेरा मनीआर्डर आ गया है नँ? कहीं वह तेरे ही लिए न भेजा गया हो! दस रुपये हैं। तेरा काम तो चल जायगा। जा, माता से मिल कर आ जाना, मेरा भी प्रणाम कहना। उसने अपने इस मित्र नामदेव के लिए आशीर्वाद माँगना! जा!" नामदेव ने कहा।

थोड़ा-सा सामान लेकर मैं चल दिया। स्टेशन तक पहुँचाने के लिए नामदेव साथ में आया। मै गाड़ी में जा बैठा। दोनों नेत्र भर आये।

"पहुँचते ही पत्र भेजना, हो श्याम!" नामदेव ने कहा।

मैंने उत्तर दिया "अवश्य! जाते ही पत्र लिखूगा।"

इस पर उसने कहा "मैं भी तेरे साथ आता, परन्तु पैसे नहीं!"

यह सुन मैंने कहा "अरे, तू तो मेरे साथ है ही।

गाड़ी छूट गई। मेरी नामदेव आँखो से ओझल हो गया। मेरे नेत्रों से सहस्र-धारा में अश्रुगंगा प्रवाहित हो चली। रह-रह कर मेरा हृदय-सागर उमड़ रहा था। गाड़ी की खिड़की से बाहर सिर किये हुए मैं अश्रुसिंचन करता हुआ जा रहा था।

बोरीबदर (विक्टोरिया टर्मिनस—बम्बई) स्टेशन पर उतर कर मैं सीधा जहाज पर चल दिया। क्योंकि यदि गिरगाँव मे भाई से मिलने जाता तो जहाज छूट जाता। मैं जहाज मे जा बैठा। कुछ ही क्षण में वह जहाज लहरों पर नाचने लगा। मेरा हृदय भी शत-शत भावनाओ से उछल रहा था। श्री. रवीन्द्रनाथ ठाकुर की गीतांजलि उस समय मेरे हाथ में थी।

उसमें मैं पढ रहा था "माँ, मेरे अश्रुओं का हार तेरे वक्ष-स्थल पर डोलेगा।" और सममुच ही मै अपनी गरीब माता को और क्या दे सकता था? मेरे पास भी सिवाय आँसुओ के हार के देने योग्य था ही क्या? बीच में ही मैं गीतांजलि बंद कर के उस उमड़ने वाले सागर

की ओर देखने लगता। उस समय सागर के वक्षःस्थल पर सकड़ों तरंग उठ रही थीं। एक लहर से दूसरी लहर उत्पन्न हो रही थी। इधर मेरे हृदय-सागर पर भी शत-शत स्मृतिरूप तरंगें उठ रही थीं। एक स्मृति दूसरी स्मृति को जन्म दे रही थी। माता के सैंकड़ों संस्मरण, अगणित भावनामय प्रसंग मेरे दृष्टि पथ से हो कर जा रहे थे। स्वप्न-सृष्टि में— हां, स्वप्नसृष्टि में ही मैं ध्यानमग्न ऋषि की तरह रम गया, उसमें निमग्न हो गया। माता के स्मृति-सागर में यह श्याम-मत्स्य डूब रहा था, तैर रहा था, नाच रहा था।

बड़ी देर के बाद हर्णें बन्दरगाह का दीपस्तंभ दिखाई देने लगा। जहाज के खलासी चिल्लाने लगे "हर्णें, हर्णें!" वहां उतरने वाले यात्री अपना अपना सामान समेटने लगे। मैंने भी अपनी छोटी सी गठरी बाँध ली। इसके बाद मैं मन में सोचने लगा "अब तो केवल सात-आठ घण्टे की ही देर है, इसके बाद मैं अपनी माता के चरणों का दर्शन करूगा। प्रेम से भरे हुए काली देह की तरह उसके नेत्रों को देखूंगा।"

हर्णें बन्दरगाह आ गया। जहाज के ठहरते ही सैकड़ों नावे यात्रियों को उतारने के लिए आ गईं। उनमें कई यात्री उतर गये। मैं भी नाव में आ बैठा! किनारे पर कोई मेरी ओर देख रहा था; पर उस ओर मेरा ध्यान नहीं था। किन्तु वह व्यक्ति ध्यानपूर्वक मेरी ओर देख रही थी। मुझे देख कर बन्दरगाह पर खड़े हुए किसी के नेत्र डबाडबा रहे थे। भला, वह मूर्ति किस की थी?

नाव के खड़ी होते ही मैं उतर पडा और पानी में हो कर किनारे पर आया। मैं फुर्ती से पैर उठा कर आगे गढ़ ही रहा था कि इतने में कोई मुझे दृष्टिगोचर हुआ।

"मौसी! तू यहां कहां? क्या पूना वापस जा रही है? माँ की तबियत अब ठीक जान पडती है, क्यों?" इस प्रकार मैंने पूछा; और मौसी की गंगा-यमुना ने उसका उत्तर दिया।

मैंने करुण स्वर में पूछा "मौसी! तू बोलती क्यों नहीं?" उसने कहा "श्याम! तेरी माँ, मेरी जीजी भगवान के घर चली गई!"

मैं अपने शोकावेग को सम्हालने मे असमर्थ हो गया! वहां से

जैसे-तैसे हम दोनों धर्मशाला में गये। उस समय किसी से भी बोला नहीं जाता था।

मैंने रोते हुए पूछा "मौसी, मुझे बुलाया क्यों नहीं? मुझे तो रात को स्वप्न दिखाई दिया, इसी लिए मैं वहां से चल दिया! स्वप्न में माता ने मुझे पुकारा था! परन्तु, हाय! अब कहां है वह माँ! वह तो सदैव के लिए बिछुड़ गई! अनंतधाम को चली गई!"

"श्याम! उस दिन तो वह लगातर तेरी ही याद करती रही। तू ही बराबर उसे सामने खड़ा दिखाई देता था। वह कह रही थी कि 'देखो, अभी तक यह हठ नहीं छोड़ता!' श्याम, ऐसा नहीं जान पड़ता था कि जीजी दो ही दिन में चली जायगी। जिस दिन मैंने तुझे बुलवाने की बात सोची, उसी दिन उसने शरीर छोड़ दिया। सब तरह के प्रयत्न किये गये; और उसे कोई कष्ट नहीं होने दिया गया। किन्तु घबराना मत श्याम! अब मैं हूं तुम्हारे लिए! जीजी ने तुम्हें मेरी गोद में सौंप दिया है। मैं तुम्हें माता की याद न आने दूंगी। उसका अभाव अनुभव न होने दूंगी। चुप हो भैया! कबतक रोता रहेगा?" इस प्रकार मौसी ने मुझे समझाया।

"मौसी मेरे कैसे बड़े-बड़े सकल्प थे! माता को सुखी करूंगा, उसे फूल की तरह रखूंगा, इत्यादि बातें मैं मन मे सोचा करता था। किन्तु अब मैं किस के लिए पढ़ू? पढ़-लिख कर भी यदि माँ की सेवा नहीं की जा सकती; और उसके उपयोग मे भी नहीं आ सकता; तो फिर किस लिए पढ़ू?" इस प्रकार मैंने मौसी से पूछा।

इस पर मौसी ने मेरा संकुचित दृष्टिकोण बदलते हुए कहा कि "अब माँ के लिए नहीं अपने भाइयों के लिए, पिता के लिए पढ़, स्वतः अपने लिए पढ़कर तैयार हो, संसार की सेवा के लिए पढ़ लिख कर योग्य बन। जो प्रेमभाव तू माता के चरणों मे अर्पण करने वाला था, उसे अब संसार को अर्पण कर, संसार की दुखी माताओं की सेवा में अपना वह भक्ति-भाव भेट कर।

"अच्छा, परन्तु मौसी, तू वापस जा रही है?"

"श्याम! मुझ से वहां नहीं रहा गया। तू घर जा। कल तीसरा दिन

है। अस्थि-संचयन कल ही है। तू उसका अत्यंत लाडका बेटा रहा है। लिए तू उत्तरक्रिया के समय आ पहुँचा है। वहां से वापस आते समय अस्थि लेते आना; तो उसे गंगा में प्रवाहित कर देंगे।" मौसी ने कहा।

मैंने फिर पूछा "मौसी मैं अब घर में कैसे जा सकूंगा? उस अंधकारमय घर में कैसे प्रवेश करूंगा?"

"उस घर में जो भी तुझे माता का मुखचंद्र नहीं दिखाई देगा; फिर भी पिताजी का उज्ज्वल नक्षत्र-रूप में तो दर्शन होगा ही? तेरी भावना-रूपी तारिका भी तो वहां चमकेगी ही! वहां सर्वथा अंधकार नहीं है। प्रेम का प्रकाश भी है। इस लिए तू घर जा; और पिताजी तथा भाइयों को धैर्य दे। तू बुद्धिमान, विचार-शील और गीतांजलि पढ़ने वाला है।" मौसी ने कहा।

मौसी अब वहां यह बात कौन कहेगा कि "श्याम! तू आ गया अच्छा किया! ठहर! मैं देवता को चढाने के लिए गुड़ ला देती हूं!"

"श्याम; तेरे पास ये प्रेममय स्मृतियां तो हैं? माता के चले जाने पर भी प्रेममयी माता—स्मृति-रूप अमर माता—तो मेरे पास मौजूद ही है। तू जहां जायगा, वहीं वह तेरे साथ रहेगी। चल मैं तेरे लिए गाडी किराये कर दूं।" यों कह कर मौसी ने मेरे लिए गाडी किराये कर दी। इतने ही में मौसी के जाने का जहाज़ दिखाई देने लगा। नाव छूटने को तैयार खडी थीं, मौसी चल दी। माँ का स्थान ग्रहण करने वाली मौसी नाव मे बैठने के लिए चली गई।

मैं बैलगाडी पर सवार हुआ। मुझे माता की याद आने लगी। ऐसा दिखाई देने लगा मानों मेरे जीवन-समुद्र मे सैंकडों लहरों को पार कर माता की वह दिव्य मूर्ति ऊपर उठ रही है। माता के कष्ट और क्लेश मुझे प्रत्यक्ष दिखाई देने लगे! कारुण्य मूर्ति माता! उसका प्रेम और उसकी सेवा मुझे पर्वताकार दीखने लगी।

अंत को मैं घर आ पहुँचा। पहले भी एक बार इसी तरह प्रातः काल मैं घर आया था। उस समय छाछ (मही) बिलौते हुए माता कृष्ण का मधुर गीत गा रही थीं। किन्तु आज घर में वह गीत कहां? अब तो उसके स्थान पर 'हाय-हाय' का क्रंदन था। घर में एक धीमा दीपक

जल रहा था। भीषण शांति छाई हुई थी। मैंने किवाड़ को धकाया; किन्तु भीतर से सांकल तो बंद थी ही नहीं, अतः दरवाजा खुल गया। पिताजी एक टाट पर बैठे हुए थे।

मुझे देखते ही बोले "श्याम, तुझे दो दिन की देर हो गई! बेटा, वह हम सब को छोड़ कर चली गई।"

तब तक पुरुषोत्तम भी जाग पड़ा और 'दादा-दादा' कर के रोने लगा। वह मेरी गर्दन से लिपट गया। उस समय किसी मे भी बोलने की शक्ति नहीं थी।

बूढ़ी दादी ने कहा "श्याम! तुझे तो यह अंत समय तक याद करती रही! उसका तू बहुत प्यारा था बेटा! तू अंत में उसकी उत्तर-क्रिया के समय तो आ ही पहुँचा। रोए मत बेटा! अब अपना वश ही क्या है? तुम्हारे बड़े होने तक तो उसके जीने की आवश्यकता थी ही! परंतु उस (ईश्वर) की इच्छा नहीं थी।"

अस्थि-संचय के लिए मैं नदी पर गया। भट्टजी महाराज साथ में थे ही। नदी-तट पर जहां माता का पुण्य-देह अग्निसात् किया गया था, वहां मैं पहुँचा! वहां माता की भस्ममयी मूर्ति सो रही थी। भस्ममय देह ज्यों की त्यों दिखाई देती थी। हवा के कारण रंचमात्र भी वह देह हिली नहीं थी। मैंने श्रद्धा-पूर्वक उस भस्ममयी मूर्ति को वदन किया। उस समय वहां माता का वह पवित्र देह समस्त पार्थिवता त्याग कर भस्ममय दिखाई दे रहा था; अत्यंत शुद्ध भस्ममय आकार वहां देख पड़ता था। जीवन की तपश्चर्या से उसका शरीर तो पहले ही भस्मी-भूत हो चुका था, भीतर ही भीतर वह जलता रहता था; वह भगवान के शरीर पर लगी हुई भस्म के समान पवित्र हो गया था। और मन से? मन से तो वह पवित्र थी ही।

अंत मे मैंने हाथ लगाया। उस भस्ममयी-मूर्ति को भंग किया। अपने हृदय में अभंग-मूर्ति निर्माण कर उस भस्ममयी मूर्ति को मैंने छिन्न-भिन्न किया इस नश्वर मूर्ति-द्वारा यदि किसी के हृदय में हम अनश्वर मूर्ति निर्माण कर सकते तो कितना अच्छा होता! अस्तु। मैंने माता की अस्थियाँ एकत्रित कीं। मंगलसूत्र मे का मणि भी उसमें मिल गया। उसे सौभाग्य-दायक समझ कर काका साहब ने अपनी पत्नी (काकी) के गले में पहनाने के लिए ले लिया

सब कार्य-विधि समाप्त होने पर स्नान कर के हम घर लौट आये। एक-एक कर के दिन बीतने लगे। पुरुषोत्तम के मुँह से एक-एक नई बात सुनने को मिल रही थी। मानो वह माता की स्मृतियों का गरुड़-पुराण ही मुझे सुना रहा था; और मैं उसे भक्ति-पूर्वक सुन रहा था। पड़ौसिन राधाबाई, इन्दुमति आदि ने भी कई बातें सुनाईं। माता की कष्ट-कथा सुनते-सुनते मेरा जी भर आता।

माता के पिण्डदान का दिन आ पहुँचा। उस दिन मेरे मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि "माता के पिण्डों को कौआ झट् से छूता है या नहीं; उसकी कोई इच्छा तो शेष नहीं रहा गई है? क्योंकि यदि पिण्डों को कौआ स्पर्श न करे; तो ऐसा माना जाता है कि मृत-प्राणी की आत्मा को शांति नहीं मिली। हम लोग नदी पर गये और पिण्ड तैयार किये। सब कार्य यथाविधि समाप्त होने के बाद वे पिण्ड हमने कुश पर रख दिये। किन्तु दैवयोग से उस दिन भी कौआ नदी पर नहीं दिखाई दिया। भट्टजी ने "कॉव कॉव" कर के कौओं को बुलाया। अंत में एक कौआ आता दिखाई दिया। काका ने कहा "देखो वह दूसरा भी आ गया" हमें संतोष हुआ। पिण्ड छोड़ कर हम अलग हट गये। किन्तु कौए आकर पिण्ड के पास बैठ कर भी उसे छूते नहीं थे। अब चिंता हुई कि, क्या किया जाय! वे पिण्ड के आसपास चक्कर तो लगाते, परंतु उसे छूते नहीं थे। मुझे बड़ा दुःख हो रहा था। मैंने कहा "माँ, यदि तेरी इच्छा है तो मैं विवाह करूंगा, बैरागी नहीं बनूगा" फिर भी कौए ने पिण्ड को स्पर्श नहीं किया। तब चचा ने कहा "हम दादा से अन्तर—भेदभाव नहीं रखेंगे! भाभी! हम उनके साथ उसी प्रेमभाव से बरतेंगे।" फिर भी कौए ने उन्हें नहीं छुआ। पिण्ड को उठा कर मैं इधर-उधर भी गया। मेरा जी विकल हो उठा। मैं रूआ-सा हो गया। क्योंकि जब पिण्ड से कौआ स्पर्श नहीं करता तो कुश का कौआ बना कर उसे छुआ देते हैं; परंतु बाद को गाँव में इसकी चर्चा चल पड़ती है। मुझे बहुत बुरा लगा और इस लिए मैंने कहा "पिण्डों को घर ले जाने से संभव है कि वहां कौआ स्पर्श करे; अतः अभी कुश का कौआ मत बनाइये।"

इस प्रकार भारी हृदय से पिण्ड उठा कर हम घर आये; और आँगन के किनारे केल के वृक्ष के पास पिण्ड रख दिये। वहां कितने ही कौए इकट्ठे हो गये, परंतु पिण्डों को किसी ने नहीं छुआ।

अंत में दादी ने बाहर आकर कहा "यशोदे! तू जरा भी चिंता मत कर! पुरुषोत्तम को मैं सम्हालूंगी। उसका सब कुछ मैं ही करूंगी।" दादी के मुँह से इस प्रकार आश्वासन-सूचक शब्द सुनते ही तत्काल कौए ने पिण्ड को छू लिया।

मेरी आँखों में आँसू आ गये। मौसी अकेली ही पहले चली गई थी, इस लिए छोटा पुरुषोत्तम अब घर में दादी के पास रहने को था। वह जरा नटखट था। इस लिए उसकी उपेक्षा होगी, उसे पिताजी क्रुद्ध हो कर मारेंगे, इसी एक बात की माता को चिन्ता थी। धन्य माते! तेरा कितना अटल प्रेम! उस प्रेम का कोई नाप-तौल ही नहीं। वह आकाश से भी अधिक विशाल और समुद्र से भी अधिक गहरा है। ईश्वर कितना प्रेममय हो सकता है, इसकी कल्पना संसार में एकमात्र माता के प्रेम से ही की जा सकती है। संसार को अपने प्रेम की कल्पना कराने के लिए ही इस माता को वह जगन्माता भेजती है।

मित्रो! मेरी माँ चली गई। उसका जीवन समाप्त हो गया, किन्तु उसकी चिन्ता समाप्त नहीं हुई थी। जब तक अपने सब बच्चे सुखी नहीं हो जाते, तब तक माता को सुख नहीं हो सकता। माता की किसी एक भी संतान के नेत्रों से जब तक आँसू टपकते और मुँह से "हाय-हाय" निकलती रहती है, जब तक अन्न-वस्त्र का प्रबंध नहीं होता, और ज्ञान (विद्या बुद्धि) की प्राप्ति नहीं हो जाती, तब तक उसकी चिन्ता दूर नहीं होती।" 'सब भाई परस्पर प्रेम-पूर्वक रहेंगे, एक दूसरे की सहायता करेंगे, ऊंच-नीच का भाव नहीं रखेंगे और एक-दूसरे को बढ़ा कर, उसका पालन-पोषण करेंगे और हँसा-खिला कर सुखी करेंगे' इस बात का जबतक माता को विश्वास नहीं हो जाता; तब तक उसे सुख-शांति नहीं मिल सकती, उसे मोक्ष नहीं मिल सकती; तब तक वह भी रोती ही रहेगी! तब तक उसकी चिंता-रूपी चिता धधकती ही रहेगी।

४३ माता का स्मृति-श्राद्ध

मित्रो ! आज मुझे अंतिम स्मृति सुनाना है । यह स्मृति श्राद्ध आज मैं समाप्त करने वाला हूं । मेरे हृदयाकाश में तो स्मृतियों के अनेक तारे चमक रहे हैं; किन्तु मैंने उनमें से केवल मुख्य-मुख्य नक्षत्रों का ही तुम को दर्शन कराया है । आज बचा हुआ केवल एक मुख्य तारा—शुक्र का तारा—तुम्हें दिखलाना है ।

मेरी माता पर स्त्री-पुरुषों का तो प्रेम-स्नेह था ही; किन्तु पशु-पक्षी भी उससे प्रेम करते थे । श्यामा गाय पर माता का कितना प्रेम था; और गाय का माता पर कितना स्नेह था य० पहले बतलाया जा चुका है । अब केवल बिल्ली की ही कहानी सुनाना शेष है । बीच में एक जगह मैं उसका उल्लेख कर चुका हूं । बिल्ली का नाम मथी था । वह माता की प्यारी बिल्ली थी । हमेशा माँ की थाली के पास बैठ कर भोजन करती थी । दूसरों का परौसा हुआ भात वह नहीं खाती थी । जब माता भोजन करने बैठती, तभी वह आकर पास में बैठ जाती थी ।

मथी हमेशा ही माता के साथ रहती; और उसके आसपास चक्कर लगाती रहथी थी । यहां तक कि माता के शौचादि के लिए जाने या पानी भरने के लिए कुए पर जाते समय भी वह साथ ही रहती थी । माता के पैरों में पूछ की फटकारे देती हुई वह नाचती रहती । इस प्रकार उस बिल्ली की मेरी माता के प्रति अनन्य ममता-माया थी । वह माँ से बहुत हिली हुई थी । ज्यों-ज्यों माता की बीमारी बढती गई, त्यों त्यों मथी ने भी खाना-पीना कम कर दिया । क्योंकि माता के हाथ का परासा हुआ दूध-भात उसे नही मिलता था । दूसरे लोगों ने दूध, दही और घी मिला कर भी उसे भात दिया, परन्तु वह उसमें से दो एक ग्रास खा कर बाहर चली गई । जब कि माता उसे केवल भात (चावल) ही परौसती थी; फिर भी उसमें उसे घी दूध सब कुछ मिल जाता था । किन्तु दूसरों के घी में भी उसे रस-स्वाद का अनुभव नहीं होता था ।

जिस दिन माता का स्वर्गवास हुआ, उस दिन वह बराबर "म्याऊँ,

म्याँऊ " करती रही। मानों उसकी धरोहर को कोई उठा ले गया, उसके घी-दूध की सरिता को किसीने छीन लिया। उस दिन से मथी बिल्ली ने भी अन्न-जल त्याग दिया। जिस कोठरी में माता ने शरीर त्यागा था, वहा दस दिन तक मृतात्मा के लिए नित्य ही दूध-पानी रखा जाता था। किन्तु मथी ने उसे भी छुआ तक नहीं। वह दिन-रात उसी कोठरी में बैठी रहती थी। फिर तो उसने म्याँऊ-म्याँऊ करना भी बंद कर दिया था। उसने अनशन के साथ ही मौन-व्रत भी ले लिया था। इस प्रकार तीसरे दिन ठीक उसी स्थान पर जहां कि माता ने प्राणत्याग किया था, उस बिल्ली ने भी शरीर छोड दिया। मानों वह माता के पीछे-पीछे ही चली गई। माता के प्रेम के बिना जीना उसे विषमय प्रतीत हुआ। हमारे प्रेम की अपेक्षा माता पर उस बिल्ली का प्रेम ही अधिक था। उसकी दशा देख कर हमें अपने प्रेम-भाव के प्रति लज्जा प्रतीत हुई। मैंने मन ही मन कहा "माँ! मैं किस मुँह से कहूं कि मेरा ही तुझ पर अनन्य प्रेम है? वह तो इस बिल्ली के प्रेम के सम्मुख पासग भी नहीं ठहरेगा!"

मित्रो! ऐसी स्नेहमयी मेरी माता थी। संसार में ऐसी माता बडे भाग्य से मिलती है। मेरी माता ने मुझे सब कुछ दिया। मुझसे जो कुछ भी अच्छाई और पवित्रता है, वह सब उसीकी है। वह पुण्यमयी माता तो चली गई, परंतु भारत-माता की सेवा के लिए मेरा निर्माण कर गई। एक जपानी माता ने अपने हृदय में छुरी मारने के पहले अपने लडके नाम के एक चिट्ठी लिख दी थी कि "मेरे कारण तू युद्ध मे नहीं जा रहा है, अर्थात् मेरे मोह मे तू फँस गया है, इस लिए तेरे मार्ग की इस बाधा को मैं खुद ही दूर कर देती हू"। कदाचित् मेरी माता को भी अपनी दिव्यदृष्टि से यही बात दिखाई दी हो कि, श्याम मेरे मोह के चक्कर में पड जायगा और मेरी ही – इस साढ़ेतीन हाथ के शरीर की ही—वह पूजा करता रहेगा, इस लिए वह चलबसी हो! उसने सोचा होगा कि वह अपने अन्य देश-बन्धु-भगिनियों की सेवा से दूर रहेगा; और मातृमोह के कारण वह स्वाधीनता के युद्ध म भाग नहीं ले सकेगा; इस लिए माता ने अपने आप को हटा कर दूर युद्ध लिया हो! या वह यह सोच कर चली गई कि अब समस्त भारतीय माताएँ ही श्याम की माता बनें और उसे ये अनेक माताएँ प्राप्त हों!

किन्तु जाते हुए भी माता मुझे इन अगणित माताओं को देख सकने की दिव्यदृष्टि दे गई। अब तो मैं जहां-तहां अपनी माताओं को ही देखता हूं। उत्तम की माता मेरी माता है; और दत्तू की माता भी मेरी ही माता है। गोविन्द की माता भी मेरी ही माता है और वसंत की माता भी मेरी ही माता है। कृष्ण की माता भी मेरी ही माता है और सुमान की माता भी मेरी ही माता। इस प्रकार जितनी भी माताएँ हैं, वे सब मेरी ही माताएँ हैं। जिस माता ने मुझे यह सब देखने के लिए दिव्यदृष्टि प्रदान की; और मुझे यह दृष्टि प्राप्त कराने के लिए उसने अपना जर्जर देहमय पर्दा भी दूर कर दिया, उस माता की महानता का मैं कहां तक वर्णन करूं ? इस कार्य के लिए यह जीभ असमर्थ है। वह प्रेम, वह कृतज्ञता, वह कर्तव्य-बुद्धि, वह सहनशीलता, वह मधुरता, मेरी प्रत्येक कृति में प्रकट हो; और माता की सेवा करते-करते, इस विराट् और विशाल माता की सेवा करते-करते अपनी अल्प शक्ति के अनुसार, अपने गुणधर्म के अनुसार सेवा करते-करते एक दिन मथी बिल्ली की तरह मेरा जीवन भी सफल हो। मेरी माता का जीवन जैसा सफल हुआ, उसी प्रकार उसके श्याम का भी हो।

— समाप्त —